

तृण संदेश

राजभाषा वार्षिक पत्रिका

अंक 21

वर्ष 2025-26



भाकृअनुष - खरपतवार अनुसंधान निदेशालय
जबलपुर (म.प्र.)

वन्दे मातरम् ।



सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्,
शस्यश्यामलाम् मातरम् । वन्दे मातरम् ॥1॥

शुभ्रज्योत्स्ना पुलकितयामिनीम्,
फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदाम् वरदाम् मातरम् । वन्दे मातरम् ॥2॥

कोटि-कोटि कण्ठ कल-कल निनाद कराले,
कोटि-कोटि भुजैर्धत खरकरवाले,
के बॉले माँ तुमि अबले,
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्,
रिपुदलवारिणीं मातरम् । वन्दे मातरम् ॥3॥

तुमि विद्या तुमि धर्म, तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वम् हि प्राणाः शरीरि, बाहुते तुमि माँ शक्ति,
हृदये तुमि माँ भक्ति, तोमारेई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे ।
वन्दे मातरम् ॥4॥

त्वम् हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी,
कमला कमलदलविहारिणी,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्,
नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम् । वन्दे मातरम् ॥5॥

श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताम् भूषिताम्,
धरणीम् भरणीम् मातरम् । वन्दे मातरम् ॥6॥

तृण संदेश

राजभाषा वार्षिक पत्रिका

अंक-21, वर्ष 2025-26



भाकृअनुप – खरपतवार अनुसंधान निदेशालय

ICAR - Directorate of Weed Research

जबलपुर, मध्य प्रदेश

Jabalpur, Madhya Pradesh

आई.एस.ओ. 9001 : 2015 प्रमाणित

ISO 9001 : 2015 Certified

तृण संदेश

राजभाषा वार्षिक पत्रिका

अंक-21, वर्ष 2025-26

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. जे.एस. मिश्र
निदेशक

प्रधान संपादक

डॉ. पी.के. सिंह
प्रधान वैज्ञानिक

संपादक मण्डल

डॉ. योगिता घरडे
वरिष्ठ वैज्ञानिक

डॉ. चंद्रकांत सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक

डॉ. जीतेन्द्र कुमार सोनी
वैज्ञानिक

डॉ. अर्चना अनोखे
वैज्ञानिक

श्री एम.के. मीणा
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।



सम्पर्क सूत्र

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर, मध्यप्रदेश

फोन : 0761-2353138 फैक्स : 0761-2353129

वेबसाइट : <https://dwr.org.in>

फेसबुक लिंक: <https://www.facebook.com/ICAR-Directorate-of-Weed-Research-101266561775694>

ट्विटर लिंक: <https://twitter.com/Dwrlcar>

यू-ट्यूब लिंक: <https://www.youtube.com/channel/UC9WOjNoMOttJaIWdLfumMnA>

इंस्टाग्राम: <https://www.instagram.com/icardwr/>

लिंकइन: <https://www.linkedin.com/in/icar-directorate-of-weed-research-jabalpur-ab27824131>

ISBN : 978-81-985626-2-3





सत्यमेव जयते

ज्ञानेन्द्र देव त्रिपाठी
GYANENDRA DEV TRIPATHI

अपर सचिव, डेयर एवं सचिव, आई.सी.ए.आर.

ADDITIONAL SECRETARY, DARE

&

SECRETARY, ICAR

भारत सरकार

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय

कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग

कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001

GOVERNMENT OF INDIA

MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS' WELFARE

DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH AND EDUCATION

KRISHI BHAWAN, NEW DELHI - 110001

संदेश



भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका “तृण संदेश” अंक-21 का प्रकाशन न केवल राजभाषा हिंदी के संवर्धन की दिशा में एक सराहनीय पहल है, बल्कि कृषि एवं खरपतवार प्रबंधन से संबंधित वैज्ञानिक ज्ञान को किसानों, कृषि विशेषज्ञों, शोधार्थियों, विद्यार्थियों तथा अन्य हितधारकों तक उनकी अपनी भाषा में पहुँचाने का एक प्रभावी माध्यम भी है। ज्ञान तभी सार्थक होता है जब वह जनसामान्य की समझ में आए और व्यवहार में उतरे; इस दृष्टि से यह पत्रिका अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जिनमें खरपतवारों के कारण होने वाली उपज हानि एक प्रमुख समस्या है। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिक अनुसंधान आधारित तकनीकों, नवाचारों तथा सफल कृषि अनुभवों को सरल, सहज एवं व्यावहारिक भाषा में उपलब्ध कराना समय की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका किसानों को नवीनतम वैज्ञानिक जानकारी प्रदान कर उनकी उत्पादकता बढ़ाने, लागत घटाने तथा टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित करेगी।

यह पत्रिका केवल सूचना का स्रोत नहीं, बल्कि कृषि अनुसंधान और खेत स्तर पर उसके अनुप्रयोग के मध्य एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य करेगी। साथ ही, यह कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नवाचारों के प्रसार तथा ज्ञान-विनिमय की संस्कृति को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान देगी। हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य की उपलब्धता बढ़ाने के माध्यम से यह राजभाषा के प्रचार-प्रसार को भी नई दिशा प्रदान करेगी।

मैं पत्रिका के संपादक मंडल, लेखकों, वैज्ञानिकों तथा इस प्रकाशन से जुड़े सभी सहयोगियों को इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ। मेरी कामना है कि पत्रिका “तृण संदेश” निरंतर प्रगति के नए आयाम स्थापित करे, व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचे तथा कृषि विकास एवं किसान कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान देती रहे।

दिनांक : 17.07.2026

ज्ञानेन्द्र
17/7/2026

(ज्ञानेंद्र डी. त्रिपाठी)



■
भाकृअनुप
ICAR



डॉ. ए.के. नायक

Dr. A.K. Nayak

FNASc, FNAAS, FISSS, FARRW

उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)

Deputy Director General (Natural Resource Management)



संदेश

खरपतवार, फसल उत्पादन एवं संसाधन उपयोग दक्षता को प्रभावित करने वाली प्रमुख चुनौतियों में से एक हैं। इनसे होने वाली उपज हानि को कम करने तथा टिकाऊ कृषि प्रणाली को सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा संचालित अनुसंधान एवं तकनीकी विकास कार्यक्रम किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित इन प्रयासों से प्रभावी खरपतवार प्रबंधन को बढ़ावा मिल रहा है तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि के नए आयाम स्थापित हो रहे हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों की वास्तविक उपयोगिता तभी सुनिश्चित होती है, जब उनसे प्राप्त ज्ञान किसानों, विद्यार्थियों, कृषि वैज्ञानिकों तथा समाज के विभिन्न वर्गों तक सरल, सहज एवं सुबोध भाषा में पहुँचे। हिंदी, देश के व्यापक जनसमूह की भाषा होने के कारण वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारी के प्रसार का एक सशक्त माध्यम है। जनभाषा में वैज्ञानिक विषयों की प्रस्तुति से ज्ञान का दायरा विस्तृत होता है तथा अनुसंधान के लाभ समाज तक अधिक प्रभावी रूप से पहुँचते हैं। यह पत्रिका कृषि एवं खरपतवार प्रबंधन से संबंधित नवीनतम अनुसंधान, तकनीकी उपलब्धियों तथा उपयोगी अनुभवों को हिंदी में प्रस्तुत कर ज्ञान एवं व्यवहार के मध्य एक सुदृढ़ सेतु का कार्य कर रही है। मुझे प्रसन्नता है कि “तृण संदेश” अंक-21 इस उद्देश्य की पूर्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है एवं पूर्ण विश्वास है कि यह अंक भी पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी सिद्ध होगा तथा कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक सोच, नवाचार एवं तकनीकी जागरूकता को प्रोत्साहित करेगा।

मैं “तृण संदेश” अंक-21 के सफल प्रकाशन हेतु संपादक मंडल एवं सभी सहयोगियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ तथा पत्रिका की निरंतर प्रगति, व्यापक लोकप्रियता एवं दीर्घकालीन सफलता की मंगलकामना करता हूँ।

दिनांक: 29.07.2026

(अमरेश कुमार नायक)



■
भाकृअनुप
ICAR



भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH

कृषि भवन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली-110001
Krishi Bhawan, Dr. Rajendra Prasad Road, New Delhi-110001

सुपर्णा दासगुप्ता

निदेशक (तकनीकी सेवा एवं राजभाषा)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग
नई दिल्ली 110001



संदेश

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अंतर्गत खरपतवार प्रबंधन के क्षेत्र में उत्कृष्ट अनुसंधान कार्यों के लिए समर्पित भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका “तृण संदेश” अंक-21 का प्रकाशन अत्यंत सराहनीय है। यह पत्रिका कृषि, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तथा खरपतवार प्रबंधन संबंधी नवीनतम वैज्ञानिक जानकारीयों को सरल, सहज एवं व्यावहारिक भाषा में किसानों, कृषि वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों तथा अन्य हितधारकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम बनेगी।

ज्ञान तभी सार्थक होता है जब वह समाज के अंतिम व्यक्ति तक उसकी अपनी भाषा में पहुँचे। राजभाषा हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का सृजन और प्रसार न केवल ज्ञान के लोकतंत्रीकरण को सशक्त बनाता है, बल्कि किसानों एवं ग्रामीण समुदायों को वैज्ञानिक सोच अपनाने तथा नवीन तकनीकों को व्यवहार में लाने के लिए भी प्रेरित करता है। इस दृष्टि से “तृण संदेश” पत्रिका ज्ञान और व्यवहार के मध्य एक प्रभावी सेतु का कार्य करेगी।

राजभाषा हिंदी के संवर्धन एवं प्रसार के साथ-साथ कृषि विज्ञान की उपयोगी जानकारीयों को जन-जन तक पहुँचाने के इस महत्वपूर्ण प्रयास हेतु, मैं पत्रिका के प्रधान संपादक, संपादक मंडल एवं समस्त सहयोगियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देती हूँ। मेरी कामना है कि “तृण संदेश” निरंतर प्रगति के नए आयाम स्थापित करे तथा किसानों, शोधार्थियों एवं कृषि समुदाय के लिए एक विश्वसनीय ज्ञान-स्रोत के रूप में प्रतिष्ठित हो।

“तृण संदेश” पत्रिका की निरंतर उन्नति, व्यापक लोकप्रियता एवं उज्ज्वल भविष्य हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

दिनांक : 28.07.2026

दासगुप्ता
(सुपर्णा दासगुप्ता)



■
भाकृअनुप
ICAR

निदेशक की कलम से...



भारतीय कृषि में खरपतवार एक मूक शत्रु की भाँति फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं। अनुमान है कि प्रमुख फसलों में खरपतवारों के कारण 20 से 60 प्रतिशत तक उपज हानि हो सकती है। ये न केवल पोषक तत्वों, जल, प्रकाश एवं स्थान के लिए फसलों से प्रतिस्पर्धा करते हैं, बल्कि अनेक कीटों एवं रोगों के आश्रयस्थल भी बनते हैं। बदलती जलवायु, प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव तथा कृषि उत्पादन लागत में वृद्धि के वर्तमान परिदृश्य में वैज्ञानिक एवं एकीकृत खरपतवार प्रबंधन की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा संचालित “संतुलित उर्वरक उपयोग” एवं “खेत बचाओ अभियान” जैसे राष्ट्रीय अभियान टिकाऊ एवं संसाधन-संरक्षण आधारित कृषि को बढ़ावा देने की दिशा में महत्वपूर्ण पहल हैं। इन अभियानों की सफलता में प्रभावी खरपतवार प्रबंधन की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। संतुलित पोषण, मृदा स्वास्थ्य संरक्षण, फसल चक्र, आवरण फसलें तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन जैसी वैज्ञानिक तकनीकें कृषि को अधिक लाभकारी एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाने में सहायक हैं।



“तृण संदेश” का 21वाँ अंक राष्ट्रीय कृषि प्राथमिकताओं एवं खरपतवार प्रबंधन के समकालीन वैज्ञानिक आयामों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। इस अंक में संरक्षण कृषि, मृदा स्वास्थ्य, विभिन्न फसलों में खरपतवार प्रबंधन, प्राकृतिक खेती, शाकनाशी प्रतिरोध, जैविक नियंत्रण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित खरपतवार प्रबंधन, ड्रोन प्रौद्योगिकी तथा जलवायु परिवर्तन जैसे विषयों पर विशेषज्ञों के शोध एवं अनुभवों को समाहित किया गया है। इसके साथ ही कृषि विविधीकरण, मधुमक्खी पालन, पुनर्योजी कृषि, औषधीय एवं बागवानी फसलों, सफल कृषकों के अनुभवों तथा प्रेरक साहित्यिक रचनाओं को भी स्थान दिया गया है, जिससे यह अंक वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक ज्ञान का समृद्ध संकलन बन गया है।

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर किसानों के लिए वैज्ञानिक, किफायती एवं पर्यावरण-अनुकूल खरपतवार प्रबंधन तकनीकों के विकास एवं प्रसार हेतु निरंतर प्रयासरत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि “तृण संदेश” का यह अंक वैज्ञानिकों, कृषि विद्यार्थियों, प्रसार कार्यकर्ताओं, नीति-निर्माताओं एवं कृषक भाइयों-बहनों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगा। मैं इस अंक के सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल एवं सहयोगी साथियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके समर्पित प्रयासों से इसका प्रकाशन संभव हो सका। मुझे आशा है कि यह अंक सतत कृषि, संसाधन संरक्षण एवं प्रभावी खरपतवार प्रबंधन के प्रति जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

सजग किसान, सशक्त कृषि-हमारा संकल्प।


जे.एस. मिश्र
निदेशक

संपादकीय...

“तृण संदेश” का 21वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। यह पत्रिका भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर की गतिविधियों का केवल दर्पण मात्र नहीं, बल्कि देशभर के वैज्ञानिकों, कृषि विशेषज्ञों, शिक्षकों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं अन्य लेखकों के ज्ञान, अनुभवों एवं नवाचारों को साझा करने का एक सशक्त माध्यम है। इस अंक में विभिन्न राज्यों एवं संस्थानों से प्राप्त शोध एवं तकनीकी लेखों, अनुभवों तथा साहित्यिक रचनाओं को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, शाकनाशी प्रतिरोध, उन्नत खरपतवार प्रबंधन, प्राकृतिक खेती तथा टिकाऊ कृषि जैसी चुनौतियाँ कृषि क्षेत्र के समक्ष नई संभावनाएँ एवं दायित्व प्रस्तुत कर रही हैं। इसी संदर्भ में भारत सरकार द्वारा संचालित “संतुलित उर्वरक उपयोग” एवं “खेत बचाओ अभियान” जैसी पहले वैज्ञानिक एवं संसाधन-संरक्षण आधारित कृषि को बढ़ावा दे रही हैं, जिनमें प्रभावी एवं एकीकृत खरपतवार प्रबंधन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस अंक में खरपतवार प्रबंधन एवं सतत कृषि से जुड़े समसामयिक विषयों पर शोध एवं तकनीकी लेखों के साथ साहित्यिक रचनाओं को भी स्थान दिया गया है। हमें विश्वास है कि यह विविधतापूर्ण सामग्री वैज्ञानिकों, कृषि विद्यार्थियों, प्रसार कार्यकर्ताओं एवं कृषकों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी। “तृण संदेश” का उद्देश्य केवल शोध परिणामों का प्रकाशन नहीं, बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान को सरल एवं व्यावहारिक रूप में अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचाना तथा शोध, शिक्षा और कृषि प्रसार के मध्य प्रभावी संवाद स्थापित करना है। राजभाषा हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक जानकारी का प्रसार इस पत्रिका की प्रमुख विशेषता है।

सम्पादक मंडल देशभर से अपने बहुमूल्य शोध, तकनीकी लेख, अनुभव एवं साहित्यिक रचनाएँ भेजने वाले सभी वैज्ञानिकों, लेखकों एवं रचनाकारों तथा समीक्षकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। हमें विश्वास है कि आपके सुझाव एवं प्रतिक्रियाएँ आगामी अंकों को और अधिक उपयोगी एवं समृद्ध बनाने में हमारा मार्गदर्शन करेंगी।

संपादक मण्डल

॥ सरस्वती वंदना ॥

वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे!
वीणावादिनी वर दे!

काट अंध-उर के बंधन स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे!
वर दे, वीणावादिनी वर दे!

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव,
नवल कंठ, नव जलद्-मंद्र रव,
नव नभ के विहग वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनी वर दे!

वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे!
वीणावादिनी वर दे!

ॐ सरस्वती मया दृष्ट्वा, वीणा पुस्तक धारणीम् ।
हंस वाहिनी समायुक्ता, मां विद्या दान करोतु मे ॐ ॥

*Oam Saraswati Mayaa Drishtwa, Veena Pustak Dharnim ।
Hans Vahini Samayuktaa, Maa Vidya Daan Karotu Me Oam ॥*



अनुक्रमणिका

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
खण्ड - क		
1.	समेकित खरपतवार प्रबंधन और संतुलित पोषण से कम करें रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग जे.एस. मिश्र, ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह एवं वी.के. चौधरी	1-7
2.	खरपतवार प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादन में संरक्षित कृषि की उपयोगिता पी.के. सिंह, जमालुद्दीन ए., वी.के. चौधरी एवं योगिता घरडे	8-17
3.	खरपतवार प्रबंधन में महिला किसानों की भूमिका: वर्तमान और भविष्य योगिता घरडे, पी.के. सिंह, प्रमोद कुमार गुप्ता, वी.के. चौधरी, सुरभि होता एवं दाऊद रजा खान	18-22
4.	गेहूँ में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार: उभरती समस्याएँ और प्रबंधन रणनीतियाँ जीतेन्द्र कुमार सोनी, सुरभि होता एवं अमरजीत	23-27
5.	तनाव-सहिष्णु खरपतवार: अत्यधिक अनुकूलन की शारीरिक क्रियाविधि चंद्रकांत सिंह, दसारी श्रीकांत, मनोज कुमार यादव एवं एस. आई. कुवरदादरा	28-31
6.	खरपतवार प्रबंधन में कृषि ड्रोन का महत्व वैभव चौधरी	32-35
7.	आवरण फसलें: मिट्टी उर्वरता बढ़ाने और खरपतवार नियंत्रण का प्रभावी साधन संस्कृति राय, बादल वर्मा एवं वी.के. चौधरी	36-41
8.	प्राकृतिक खेती में समेकित खरपतवार प्रबंधन सुरभि होता, जीतेन्द्र कुमार सोनी, के.के. बर्मन एवं योगिता घरडे	42-45
9.	खरपतवार नियंत्रण की नई क्रांति: रिमोट सेंसिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रोबोटिक्स का एकीकृत उपयोग ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह, वी.के. चौधरी एवं जे.एस. मिश्र	46-56
10.	चुक्का (रुमेक्स वेसिकेरियस एल.): खट्टे स्वाद वाली भूली-बिसरी सेहतमंद पत्तेदार सब्जी एस. आई. कुवरदादरा, दसारी श्रीकांत, दीपक पवार, चंद्रकांत सिंह	57-59
11.	स्थलीय एवं जलीय आक्रामक खरपतवारों के जैविक नियंत्रण कारकों की प्रभावशीलता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव अर्चना अनोखे, दीक्षा एम.जी., मोगली रम्मैया एवं भाग्यश्री एस.एन.	60-64
12.	कृषि पारितंत्र में खरपतवार: लाभकारी कीटों के लिए आश्रयस्थल दीक्षा एम.जी. एवं अर्चना अनोखे	65-66
13.	शाकनाशियों से खरपतवार प्रबंधन शोभा सौंधिया एवं नीलम राजपूत	67-68
14.	आक्रामक जलीय खरपतवार साल्विनिया का जैविक नियंत्रण सुशील कुमार, दीपक पवार, योगिता घरडे, दसारी श्रीकांत, वी.के. चौधरी, एस.आई. कुवरदादरा, मुकेश कुमार मीणा एवं पी.के. सिंह	69-72
15.	खीरे की खेती में ऋतु-वार खरपतवार प्रबंधन नीरज कुमार प्रजापति, संजय कुमार, रजनीश सिंह एवं अवनीश चन्द्र	73-78

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
16.	जलवायु परिवर्तन के युग में खरपतवार नियंत्रण की चुनौती शिवानी उपाध्याय	79-80
17.	दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन मनोज कुमार तरवरिया, उमेश पटेल, मुकेश कुमार मीणा, भारती परमार एवं रोहिताश मीणा	81-83
18.	उड़द की फसल में समन्वित खरपतवार प्रबंधन निशा महान, लोकनाथ सिंह एवं विनोद कुमार पांडेय	84-86
19.	खरपतवार : पशुपालन में कम लागत, अधिक पोषण का स्रोत व प्राकृतिक चारा प्रणाली में भूमिका लालचन्द कुमावत, सी.एम. यादव, अशोक कुमार सामोता, पूजा कुमारी मीना अनिता कुमारी मीणा एवं आँचल करोल	87-88
20.	सतत कृषि हेतु औषधीय एवं सुगंधित पौधों से प्राप्त शाकनाशियों के उपयोग की संभावनाएं एवं चुनौतियां सीमा शर्मा, मोहिंदर कुमार ब्रह्मी, यूर्मिला कुमारी एवं विवेक शर्मा	89-91
21.	जंगली जई (अवेना फ्लुआ)-रबी फसलों में एक उभरती प्रमुख खरपतवार समस्या और इसका वैज्ञानिक प्रबंधन अरुणा मेहता, यूर्मिला कुमारी, गरिमा एवं कशिश वालिया	92-94
22.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) आधारित खरपतवार प्रबंधन: सटीक कृषि की ओर एक क्रांतिकारी कदम सोनाली सिंह, पी.के. मुखर्जी, अनामिका पांडे एवं अमन मलहोत्रा	95-97
23.	गाजरघास: एक अत्यंत हानिकारक खरपतवार-वन्य जीवों पर प्रभाव और इसका प्रबंधन यूर्मिला कुमारी, गरिमा, अरुणा मेहता, कशिश वालिया, मीरा देवी, अंजलि वर्मा एवं सीमा शर्मा	98-100

खण्ड -ख

1.	मधुमक्खियाँ और टिकाऊ कृषि: एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण अनुराग शर्मा, मीरा देवी, अमित विक्रम, आरती शुक्ला, रेनू कपूर, इंद्र देव एवं राजेश्वर सिंह चंदेल	101-105
2.	पुनर्योजी कृषि: मिट्टी की गुणवत्ता बहाल करने और फसल के प्रदर्शन में सुधार का एक मार्ग मीरा देवी, अनुराग शर्मा, अमित विक्रम, आरती शुक्ला, यूर्मिला कुमारी, गरिमा, इंद्र देव एवं राजेश्वर सिंह चंदेल	106-109
3.	सीताफल की कृषि कार्यमाला प्रमोद कुमार गुप्ता, योगिता घरडे एवं अनिष्का गुप्ता	110-117
4.	प्याज की फसल में एकीकृत रोग प्रबंधन प्रमोद कुमार गुप्ता, योगिता घरडे एवं अनिष्का गुप्ता	118-125
5.	भारत में मैकाडामिया नट की आधुनिक खेती शशी कुमार शर्मा एवं पल्लवी ठाकुर	126-131

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
6.	बहुआयामी कृषि एवं कृषिगत उद्यमों पर आधारित सफलता की एक कहानी द्वारका एवं निशा चढ़ार	132-135
7.	स्मार्ट कृषि: भारतीय खेती में एक क्रांति आर. के. कुमावत	136-139
8.	ग्वार की उन्नत खेती मुकेश कुमार मीणा एवं अर्चना अनोखे	140-141
9.	ग्रीन फार्मसी: पर्यावरण संरक्षण एवं सतत स्वास्थ्य की नई दिशा मोनिका धगट एवं संदीप धगट	142-144
10.	आधुनिक कृषि: स्थिरता, नवाचार और समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ता सशक्त कदम हेम चन्द्र चौधरी	145-147
11.	ब्लैक सोल्जर फ्लाई (बीएसएफ) : अपशिष्ट प्रबंधन में उपयोगिता नेहा बघेलकर, हरिओम शर्मा एवं दीक्षा एम.जी.	148-150
12.	रतनजोत (जेट्रोफा कर्कस): परिचय एवं विषाक्तता प्रबंधन द्वारका एवं निशा चढ़ार	151-152
13.	मिर्च में काले थ्रिप्स (थ्रिप्स परविसपिनस) का पर्यावरण अनुकूल प्रबंधन मोगली रम्मेया एवं अर्चना अनोखे	153-154
14.	बीज प्राइमिंग: सब्जियों के बीजों के रोपण मूल्य को बढ़ाने के लिए एक कारगर तकनीक मीनाक्षी ठाकुर	155-156
15.	बदलते जलवायु परिदृश्य में जलवायु-अनुकूल किस्मों का भविष्य आर.एस. उपाध्याय	157
16.	रजनीगंधा की व्यवसायिक उत्पादन तकनीक प्रीति चौहान एवं ओमप्रकाश भारती	158-161
17.	सरसों की उन्नत खेती से आय बढ़ाये आर एस सेंगर, शालिनी गुप्ता एवं वर्षा रानी	162-163
खण्ड - ग		
1.	खरपतवार दोहा एस.आई कुवरदादरा, दसारी श्रीकांत, दीपक पवार एवं चंद्रकांत सिंह	164
2.	निदेशालय महिमा गीत एस.आई कुवरदादरा, नीलम राजपूत एवं पी.के. सिंह	164
3.	वापस लौट रही होगी धरती बलराम गुमास्ता	165
4.	खरपतवार गीत जी.आर. डोंगरे	166
5.	भारत के सूखाग्रस्त (शुष्क) होने के कई दुष्परिणाम पंकज शुक्ला	167-168
6.	वर्ष 2025-26 में निदेशालय की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की गतिविधियां	169-172



खण्ड-क

समेकित खरपतवार प्रबंधन और संतुलित पोषण से कम करें रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग

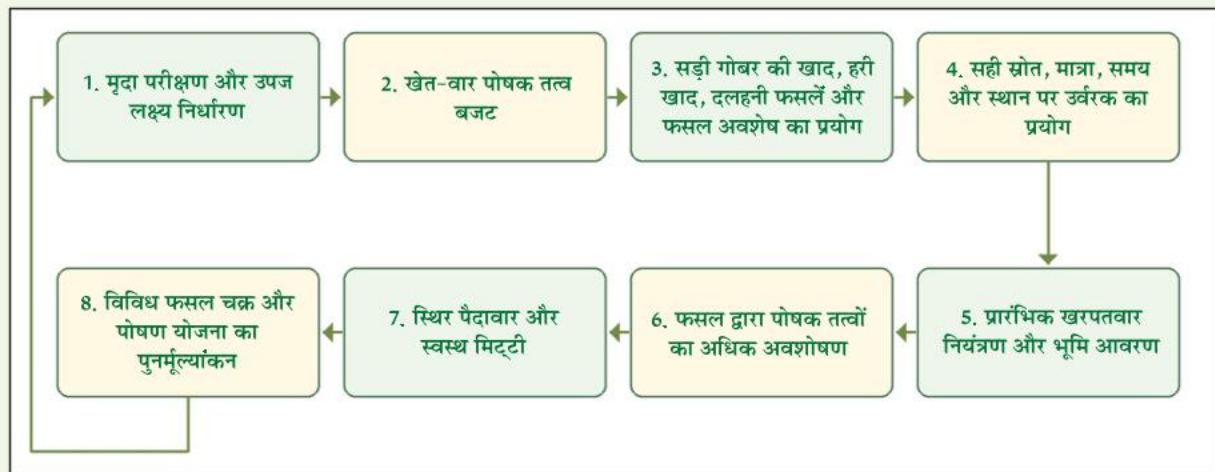
जे.एस. मिश्र, ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह एवं वी.के. चौधरी

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारतीय कृषि के सामने बढ़ती खाद्य आवश्यकता पूरी करने, सीमित जल और भूमि संसाधनों का संरक्षण करने तथा किसानों की आय में सुधार लाने की एक साथ चुनौती है। उन्नत किस्मों, सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों ने उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन केवल अधिक खाद डालना अब टिकाऊ समाधान नहीं है। उर्वरकों की लागत बढ़ने, मिट्टी में जैविक कार्बन घटने, कुछ पोषक तत्वों के असंतुलन और पानी की कमी के कारण हर किलोग्राम पोषक तत्व का अधिक दक्षता से उपयोग आवश्यक हो गया है। इस दक्षता को कम करने वाला एक बड़ा, किंतु अक्सर अनदेखा कारण खरपतवार है। किसान फसल के लिए खाद खरीदता है, पर खेत में उगे खरपतवार भी उसी खाद का लाभ उठाते हैं। भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय से संबद्ध एक संकलित

अध्ययन में दस प्रमुख फसलों में खरपतवारों के कारण 14 से 36 प्रतिशत तक उपज हानि और लगभग 70,000 करोड़ रुपये वार्षिक आर्थिक नुकसान का अनुमान प्रस्तुत किया गया है। खरपतवारों की उपस्थिति और खेत की परिस्थितियों के आधार पर कुछ फसलों में संभावित हानि इससे अधिक भी हो सकती है। अतः रासायनिक उर्वरक घटाने की चर्चा केवल खाद की बोरी कम करने तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। पहले यह समझना होगा कि खेत में उपलब्ध पोषक तत्व कहाँ जा रहे हैं, फसल उन्हें कितनी मात्रा में ग्रहण कर रही है और कौन-सी कृषि क्रियाएँ उनका नुकसान बढ़ा रही हैं। इस लेख में पोषक तत्व क्षय, समेकित खरपतवार प्रबंधन, संतुलित पोषण, फसल चक्र, कृषक आय तथा भविष्य की सटीक तकनीकों को एक संयुक्त व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 1. कम रासायनिक उर्वरक में अच्छी पैदावार का एकीकृत चक्र



पोषक तत्व उपयोग दक्षता और खरपतवारों द्वारा पोषण क्षय

सरल शब्दों में पोषक तत्व उपयोग दक्षता का अर्थ है कि खेत में उपलब्ध या बाहर से दिए गए पोषक तत्वों से फसल कितनी उपज और जैविक उत्पादन प्राप्त करती है। यदि समान मात्रा की खाद से अधिक स्वस्थ उपज मिलती है, तो दक्षता बेहतर मानी जाएगी। दक्षता केवल उर्वरक के प्रकार पर निर्भर नहीं करती। मिट्टी की नमी, जड़ स्वास्थ्य, भूमि की भौतिक एवं रासायनिक गुणवत्ता, फसल की अवस्था, खाद देने का समय, खरपतवार घनत्व और सिंचाई व्यवस्था भी उतनी ही महत्वपूर्ण हैं।

खरपतवार सामान्यतः शुरुआती अवस्था में तेजी से बढ़ते हैं। अनेक प्रजातियों की जड़ें फसल की जड़ों से अधिक फैली या गहरी होती हैं, इसलिए वे मिट्टी की अलग-अलग परतों से नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, कैल्शियम, मैग्नीशियम, जस्ता, लौह और मैंगनीज जैसे तत्व ग्रहण कर सकती हैं। जब खेत में खरपतवारों का नियंत्रण देर से होता है, तब उर्वरक से मिला पोषण खरपतवारों द्वारा अधिक ग्रहण कर लिया जाता है। बाद में खरपतवार निकाल देने पर भी फसल की शुरुआती वृद्धि, जड़ विकास और कल्ले या शाखाएँ बनने का समय वापस नहीं आता।

पोषण क्षय के प्रभाव कई स्तरों पर दिखाई देते हैं। फसल को कम पोषण मिलता है, प्रकाश संश्लेषण और जड़ वृद्धि घटती है, पानी की प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, अतिरिक्त उर्वरक देने की आवश्यकता महसूस होती है और उत्पादन लागत बढ़ती है। कुछ खरपतवार कीटों तथा रोगजनकों के वैकल्पिक पोषक पौधे भी होते हैं, जिससे कीट-रोग प्रकोप का जोखिम बढ़ सकता है। कटाई के समय खरपतवार बीज या हरे भाग उपज में मिलकर गुणवत्ता, भंडारण और बाजार मूल्य को भी प्रभावित कर सकते हैं।

खरपतवार प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इसी अवधि में पौधे जड़, तना, पत्ती, कल्ले या शाखाओं का आधार बनाते हैं। यदि इस समय खरपतवार पोषक तत्व और पानी ले जाएँ, तो बाद में खाद बढ़ाकर भी पूरी क्षति की भरपाई कठिन होती है। हालांकि महत्वपूर्ण खरपतवार-मुक्त अवधि हर फसल, किस्म, बुवाई विधि, मौसम और खरपतवार समूह में अलग हो सकती है, इसलिए स्थानीय कृषि विश्वविद्यालय या कृषि विज्ञान केंद्र की फसलवार सलाह का पालन करना चाहिए।

प्रारंभिक 30-45 दिन क्यों महत्वपूर्ण होते हैं ?

अधिकांश फसलों में बुवाई के बाद शुरुआती 30 से 45 दिन

सारणी 1. खरपतवारों द्वारा प्रमुख फसलों में पोषक तत्वों का अवशोषण (कि.ग्रा./हे.) एवं पैदावार में कमी (%)

फसल	नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटेशियम	पैदावार में कमी (%)
धान (सीधी बोनी)	19-35 (26)	2-15 (7)	15-67 (40)	46-92 (67)
धान (रोपाई)	7-50 (23)	1-16 (6.7)	17-35 (24)	32-58 (42)
मक्का	23-118 (68)	5-30 (14)	28-100 (61)	23-59 (37)
ज्वार	13-58 (33)	3-17 (10)	20-46 (35)	39-47 (41)
बाजरा	13-44 (28)	3-31 (10)	13-40 (25)	31-69 (49)
रागी	19-36 (28)	4-11 (7)	30-37 (34)	47-68 (65)
कोदो	15-18 (17)	6-9 (8)	9-17 (13)	33-50 (46)
गेहूं	26-48 (32)	9-15 (11)	22-55 (35)	28-65 (45)
अरहर	22-35 (28)	4-14 (7)	17-24 (20)	32-45 (39)
मूंग	21-45 (36)	4-6 (5)	20-25 (23)	44-62 (54)
उड़द	20-61 (34)	8-9 (9)	21-52 (36)	48-57 (27)
कपास	17-85 (50)	6-19 (11)	14-89 (41)	36-57 (47)
चना	6-48 (23)	0.5-10 (4)	5-77 (28)	34-77 (62)
मटर	46-49 (48)	17-20 (18)	26-45 (35)	38-44 (44)
मसूर	28-35 (31)	5-6 (5)	19-26 (23)	33-55 (41)
सोयाबीन	7-52 (37)	1-10 (6)	4-20 (19)	50-70 (62)
मूंगफली	6-45 (21)	0.6-7.0 (4)	4-39 (16)	31-53 (44)
सूरजमुखी	14-48 (32)	2-15 (10)	11-54 (33)	24-60 (45)
सरसों	6-42 (19)	0.86-7.0 (4)	6-44 (23)	28-62 (46)
अलसी	7-31 (19)	2-17 (9)	8-24 (16)	43-53 (48)
गन्ना	28-91 (53)	14-27 (19)	47-117 (70)	38-54 (49)
आलू	41-172 (86)	5.8-20.5 (13)	32-172 (83)	41-67 (41)

कोष्ठको में दर्शाए गए मान औसत मान हैं।

सारणी 1 से मिलने वाले प्रमुख संकेत

सारणी 1 में आलू, मक्का, गन्ना और कपास जैसी फसलों में खरपतवारों द्वारा नाइट्रोजन या पोटेशियम के अधिक निष्कासन के उदाहरण दिखाई देते हैं। सीधी बोनी वाली धान, ज्वार, रागी, चना और सोयाबीन में उपज हानि का प्रतिशत भी ऊँचा दर्ज किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर खेत में यही हानि होगी। वास्तविक नुकसान खरपतवार प्रजाति, संख्या, उगने के समय, मिट्टी, वर्षा, सिंचाई, किस्म और नियंत्रण अवधि से बदलता है। फिर भी आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि खरपतवार नियंत्रण केवल खेत की सफाई नहीं, बल्कि पोषक तत्व संरक्षण का उपाय है।

पोषक तत्व निष्कासन और उपज हानि हमेशा एक समान अनुपात में नहीं चलते। कोई खरपतवार कम जैवभार के बावजूद फसल की अत्यंत संवेदनशील अवस्था में संसाधन छीनकर बड़ी उपज हानि कर सकता है, जबकि कुछ खरपतवार देर से उगकर अधिक पोषक तत्व लेकर उपज पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव डाल सकते हैं। इसलिए निर्णय केवल कटाई के समय दिखाई देने वाले खरपतवारों पर नहीं, बल्कि उनके उगने के समय और फसल की महत्वपूर्ण प्रतिस्पर्धा अवधि पर आधारित होना चाहिए।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन क्यों आवश्यक है ?

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन वह रणनीति है जिसमें रोकथाम, निगरानी, सस्य क्रियायें, यांत्रिक नियंत्रण, भूमि आवरण, फसल चक्र, जैविक या पारिस्थितिक उपाय और आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण को समन्वित किया जाता है। इसका उद्देश्य हर समय एक भी खरपतवार न रहने देना नहीं, बल्कि उनकी संख्या और जैवभार को उस स्तर से नीचे रखना है जहाँ संभावित उपज हानि नियंत्रण लागत से अधिक होने लगे। इस अवधारणा को आर्थिक क्षति स्तर से जोड़कर समझा जा सकता है।

समेकित प्रबंधन से खरपतवारों और फसल के बीच पोषक तत्व, जल, प्रकाश और स्थान की प्रतिस्पर्धा घटती है। परिणामस्वरूप जड़ों को बेहतर वातावरण मिलता है, प्रकाश संश्लेषण बढ़ता है और प्रति इकाई उर्वरक से अधिक उत्पादन मिल सकता है। समय पर नियंत्रण से कीटों और रोगजनकों के वैकल्पिक आश्रय कम होते हैं, कटाई साफ होती है तथा अगले वर्षों के लिए खरपतवार बीज बैंक भी घटता है।

केवल एक ही शाकनाशी या एक ही नियंत्रण विधि पर लगातार निर्भरता टिकाऊ नहीं है। इससे कुछ प्रजातियाँ बचती रहती हैं, खरपतवार समूह बदल सकता है और प्रतिरोधी आबादी विकसित होने का जोखिम बढ़ता है। जब फसल चक्र, बुवाई समय, यांत्रिक निराई, मल्ल और अलग क्रिया-विधि वाले अनुमोदित शाकनाशियों को योजनाबद्ध रूप से जोड़ा जाता है, तब नियंत्रण अधिक स्थिर और दीर्घकालीन होता है।

पोषक संरक्षण का मुख्य सिद्धांत

ऊपरी नाइट्रोजन खुराक देने से पहले खेत में सक्रिय खरपतवारों को नियंत्रित करें। अन्यथा खाद का एक भाग फसल की जगह उन्हीं खरपतवारों की तेजी से वृद्धि में लग सकता है।

उर्वरक बचत का सही अर्थ मात्रा को मनमाने ढंग से घटाना नहीं, बल्कि पोषक तत्वों की हानि रोकना और फसल द्वारा ग्रहण बढ़ाना है।

रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग घटाने की वैज्ञानिक रणनीति

रासायनिक उर्वरक घटाने का सुरक्षित रास्ता चरणबद्ध है। पहले खेत में उपलब्ध पोषक तत्वों का आकलन किया जाता है, फिर जैविक और जैविक-स्थिरीकरण स्रोतों का योगदान जोड़ा जाता है, उसके बाद फसल की शेष आवश्यकता के अनुसार रासायनिक उर्वरक दिया जाता है। इस प्रकार फसल को भूखा रखे बिना अनावश्यक या हानि होने वाली मात्रा कम की जा सकती है।

मृदा परीक्षण और खेतवार पोषक बजट

अनुमान से खाद डालने के बजाय प्रतिनिधि मिट्टी नमूना लेकर पीएच, विद्युत चालकता, जैविक कार्बन तथा उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश और आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की जाँच कराएँ। जिस तत्व की मात्रा पर्याप्त है उसकी अनावश्यक खुराक रोकी जा सकती है; जिस तत्व की कमी है उसे पूरा करने से पहले से दिए जा रहे नाइट्रोजन का उपयोग भी बेहतर हो सकता है। एक किसान के अलग-अलग खेतों में मिट्टी, पिछली फसल, अवशेष, सिंचाई और उपज लक्ष्य भिन्न होते हैं, इसलिए सभी खेतों में एक ही मात्रा उचित नहीं होती।

पोषक बजट बनाते समय पिछले मौसम की फसल, खेत में छोड़े गए अवशेष, गोबर खाद या कम्पोस्ट, हरी खाद, दलहनी फसल, सिंचाई जल और मिट्टी की उपलब्धता को ध्यान में रखें। जैविक स्रोतों से मिलने वाले पोषक तत्व धीरे-धीरे उपलब्ध हो सकते हैं, इसलिए उनकी मात्रा और समय को समझे बिना रासायनिक खाद अचानक कम नहीं करनी चाहिए।

सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय और सही स्थान

संतुलित पोषण के चार आधार हैं: सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय और सही स्थान। फसल को केवल नाइट्रोजन नहीं, बल्कि फास्फोरस, पोटैश, सल्फर और कमी वाले सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की पूरी मात्रा एक साथ देने के बजाय फसल की मांग के अनुसार विभाजित खुराकों में देना हानि कम कर सकता है। ऊपरी खुराक से पहले खरपतवार हटे हों, मिट्टी में पर्याप्त नमी हो और भारी वर्षा या जलभराव की संभावना कम हो। फास्फोरस मिट्टी में अपेक्षाकृत कम गतिशील है, इसलिए उपयुक्त फसलों में जड़ क्षेत्र के पास स्थानिक प्रयोग उपयोगी हो सकता है। पोटैश की मात्रा मिट्टी परीक्षण, फसल और अवशेष प्रबंधन के अनुसार तय होनी चाहिए। धान में पत्ती रंग चार्ट, सेंसर या स्थानीय निर्णय सहायता प्रणाली और सूक्ष्म सिंचाई में छोटी फर्टिगेशन खुराकें पोषक मांग को अधिक सटीक बनाने में सहायक कर सकती हैं।

सड़ी जैविक खाद और कम्पोस्ट

अच्छी तरह सड़ी गोबर खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट और बायोगैस स्लरी मिट्टी में जैविक पदार्थ, पोषक तत्व और सूक्ष्मजीवों के लिए ऊर्जा जोड़ती हैं। इनके नियमित उपयोग से मिट्टी की दानेदार संरचना, पानी

धारण क्षमता, वायु संचार और जड़ वातावरण सुधर सकता है। परंतु पोषक तत्वों की मात्रा स्रोत और बनाने की विधि के अनुसार बदलती है; इसलिए इन्हें असीमित पूर्ण उर्वरक न मानें। कच्चे गोबर या अधपके कम्पोस्ट में खरपतवार बीज जीवित रह सकते हैं और खेत में नई समस्या पैदा कर सकते हैं। खाद को पर्याप्त ताप, नमी और समय देकर पूरी तरह पकाएँ, फिर ढककर रखें। जहाँ संभव हो, जैविक खाद की गुणवत्ता या पोषक मात्रा का आकलन कर उसके योगदान को कुल पोषक बजट में जोड़ें।

हरी खाद, दलहन और प्राकृतिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण

धान से पहले ढ़ँचा या सनई, खाली अवधि में लोबिया और फसल चक्र में मूंग, उड़द, चना, मसूर, मटर, अरहर या सोयाबीन का समावेश प्राकृतिक उर्वरता बढ़ाने का प्रभावी उपाय है। दलहनी जड़ों पर राइजोबियम की सक्रिय गांठें वायुमंडलीय नाइट्रोजन को उपयोगी रूप में बदलती हैं। कटाई के बाद जड़ें, गिरी पत्तियाँ और खेत में छोड़ा जैवभार अगली फसल के पोषण और मिट्टी के जैविक पदार्थ में योगदान देते हैं। यह लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि गांठें कितनी सक्रिय थीं और कितना जैवभार खेत में वापस आया। यदि पूरी फसल चारे या अन्य उपयोग के लिए बाहर ले जाई गई, तो उसके साथ पोषक तत्व भी बाहर चले जाते हैं। हरी खाद को कोमल अवस्था में मिट्टी में मिलाने से उसका विघटन तेज होता है। घनी हरी खाद या आवरण फसल खाली जमीन ढककर खरपतवारों को प्रकाश और स्थान से भी वंचित करती है।

जैव उर्वरक: सहायक, पूर्ण विकल्प नहीं

राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्फिरिलम और फास्फेट घुलनशील सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों के स्थिरीकरण या उपलब्धता में सहायता कर सकते हैं। इनके प्रभाव के लिए सही फसल-विशिष्ट कल्चर, पर्याप्त जीवित कोशिकाएँ, उपयुक्त भंडारण और सही बीज या मिट्टी उपचार जरूरी है। समाप्ति तिथि पार उत्पाद, धूप में रखा पैकेट या गलत फसल का कल्चर अपेक्षित लाभ नहीं देगा। जैव उर्वरक पोषण प्रक्रिया के सहयोगी हैं; इन्हें हर परिस्थिति में रासायनिक उर्वरक का पूर्ण विकल्प मानना उचित नहीं है।

फसल अवशेष, मलच, पानी और मृदा दशा

पराली और अन्य अवशेष जलाने के बजाय उन्हें काटकर मलच के रूप में रखें, कम्पोस्ट बनाएँ या उपयुक्त विधि से मिट्टी में मिलाएँ। सतही मलच पानी का वाष्पीकरण कम करता है, वर्षा की बूंदों से मिट्टी की रक्षा करता है और प्रकाश रोककर अनेक छोटे खरपतवारों का अंकुरण दबाता है। अधिक कार्बन वाले अवशेष मिट्टी में मिलाने पर कुछ समय के लिए उपलब्ध नाइट्रोजन सूक्ष्मजीवों में बंध सकती है, इसलिए शुरुआती पोषण और नमी की योजना साथ बनाएँ। रोगग्रस्त अवशेष या जीवित खरपतवार बीज सीधे पूरे खेत में न फैलाएँ। अधिक सिंचाई से पोषक तत्वों का रिसाव, सतही बहाव और जलभराव बढ़ सकता है; बहुत सूखी मिट्टी में खाद घुलकर जड़ों तक नहीं पहुँचती। समतलीकरण, मेड़बंदी, वर्षा जल संचयन और फसल की मांग के अनुसार सिंचाई उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ाते हैं। अम्लीय या क्षारीय मिट्टी में चूना, जिप्सम या अन्य सुधारक

केवल मृदा परीक्षण और विशेषज्ञ सलाह पर दें।

दक्षता बढ़ाने वाले आधुनिक उर्वरक विकल्प

नीम-लेपित यूरिया, धीमी या नियंत्रित गति से पोषक छोड़ने वाले स्रोत, पत्ती आधारित पूरक पोषण, सटीक फर्टिगेशन और नैनो-फॉर्मूलेशन जैसी तकनीकों कुछ परिस्थितियों में उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं। लेकिन संबंधित फसल, मात्रा, अवस्था और प्रयोग विधि के लिए अधिकृत सिफारिश उपलब्ध होना आवश्यक है। इन्हें मृदा परीक्षण आधारित मूल पोषण का स्वतः पूर्ण विकल्प न मानें और प्रचार के आधार पर पूरी मिट्टी वाली खुराक अचानक बंद न करें।

समेकित खरपतवार प्रबंधन की व्यावहारिक विधियाँ

रोकथाम और स्टेल सीडबेड

साफ और प्रमाणित बीज, पूरी तरह सड़ी खाद, साफ सिंचाई नालियाँ तथा कृषि मशीनों की सफाई खरपतवार बीजों का प्रसार रोकती है। मेड़ों, रास्तों और नालियों के खरपतवारों को बीज बनने से पहले काटें। कंबाइन, रीपर या अन्य यंत्र एक खेत से दूसरे खेत में समस्याग्रस्त बीज ले जा सकते हैं, इसलिए उपयोग से पहले और बाद में उनकी सफाई करें। जहाँ बुवाई से पहले समय और नमी उपलब्ध हो, हल्की सिंचाई देकर खरपतवारों की पहली खेप उगाएँ और उथली जुताई या स्वीकृत विधि से नष्ट करके मुख्य फसल बोएँ। इसे स्टेल सीडबेड कहा जाता है। इससे सतह के अनेक खरपतवार बीज मुख्य फसल से पहले ही निकलकर नष्ट हो जाते हैं।

फसल को प्रतिस्पर्धी बनाना

समय पर बुवाई, क्षेत्र के अनुकूल तेजी से प्रारंभिक वृद्धि वाली किस्म, स्वस्थ बीज, समान अंकुरण, उचित बीज दर और सही कतार दूरी फसल को जल्दी भूमि ढकने में मदद करते हैं। कतार बुवाई से यांत्रिक गुड़ाई आसान होती है। बहुत चौड़ी खाली कतारें खरपतवारों को प्रकाश देती हैं, जबकि अत्यधिक बीज दर से फसल के पौधे आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं। मक्का, कपास और अन्य चौड़ी कतार वाली फसलों में उपयुक्त दलहनी अंतरफसल खाली स्थान घटाकर खरपतवार दबा सकती है और अतिरिक्त उपज दे सकती है। साथी फसल का चयन पानी, पोषण, बाजार, अवधि और उपलब्ध यंत्रों के अनुसार करें। गलत साथी फसल मुख्य फसल से प्रतिस्पर्धा बढ़ा सकती है।

समय पर निराई और यांत्रिक नियंत्रण

छोटे खरपतवारों को नियंत्रित करना बड़े और स्थापित खरपतवारों की तुलना में आसान तथा कम खर्चीला होता है। फसल की महत्वपूर्ण प्रतिस्पर्धा अवधि में हाथ की निराई, खुरपी, व्हील हो, कोनो वीडर, पावर वीडर या इंटरकल्टीवेटर का उपयोग परिस्थिति के अनुसार किया जा सकता है। बहुत गहरी गुड़ाई से फसल की जड़ें कट सकती हैं और गहराई में दबे खरपतवार बीज सतह पर आ सकते हैं। खरपतवारों को फूल और बीज बनने से पहले हटाना दीर्घकालीन नियंत्रण की कुंजी है। बहुवर्षीय खरपतवार केवल ऊपर से काटने पर समाप्त नहीं होते, क्योंकि वे

जड़ों, गांठों या भूमिगत तनों से फिर उगते हैं। उनकी सही पहचान, बार-बार निगरानी और अलग रणनीति आवश्यक है।

भूमि आवरण और पारिस्थितिक उपाय

जैविक मल्टच, घनी आवरण फसल और तेजी से भूमि ढकने वाली फसलें मिट्टी की सतह तक प्रकाश कम पहुँचाकर कई खरपतवारों का अंकुरण घटाती हैं। कुछ विशिष्ट खरपतवारों के लिए जैविक नियंत्रण एजेंट उपलब्ध हो सकते हैं, लेकिन उनका उपयोग विशेषज्ञ संस्थान के निर्देशन में ही होना चाहिए। खेत में लाभकारी जैव विविधता बनाए रखना उपयोगी है, पर खरपतवारों को अनियंत्रित छोड़ना जैव विविधता संरक्षण नहीं है।

शाकनाशी का विवेकपूर्ण उपयोग और प्रतिरोध प्रबंधन

शाकनाशी को एकमात्र उपाय न बनाएँ। उत्पाद का चयन

सारणी 2. उर्वरक बचत और खरपतवार नियंत्रण के संयुक्त उपाय

खेत की समस्या	संयुक्त उपाय	मुख्य लाभ	जरूरी सावधानी
हर वर्ष समान मात्रा में एनपीके	मृदा परीक्षण और उपज लक्ष्य के अनुसार खाद	अनावश्यक उर्वरक रुकता है।	प्रतिनिधि नमूना लें।
खरपतवारों के बीच यूरिया देना	पहले खरपतवार नियंत्रण, फिर विभाजित नाइट्रोजन	खाद का अधिक भाग फसल को मिलता है।	भारी वर्षा से ठीक पहले न दें।
मिट्टी में कम जैविक कार्बन	सड़ी खाद, हरी खाद और अवशेष वापसी	संरचना और नमी धारण में सुधार	अधपकी खाद न डालें।
खाली खेत में खरपतवार	आवरण फसल या अल्प अवधि दलहन	खरपतवार और बीज निर्माण घटता है।	अगली फसल का समय सुरक्षित रखें।
चौड़ी कतारों में खाली स्थान	उपयुक्त अंतरफसल, गुड़ाई और मल्टच	प्रतिस्पर्धा घटती है।	सही साथी फसल चुनें।
बार-बार एक ही शाकनाशी	फसल चक्र और नियंत्रण विधियों की विविधता	प्रतिरोध का जोखिम घटता है।	पंजीकृत उत्पाद और लेबल मानें।
खाद पूरे खेत में बिखेरना	जहाँ उपयुक्त हो, जड़ क्षेत्र में स्थानिक प्रयोग	पोषक उपयोग दक्षता बढ़ती है।	बीज से सीधा संपर्क न हो।
फसल अवशेष जलाना	मल्टच, कम्पोस्ट या उचित समावेशन	पोषक पुनर्चक्रण होता है।	रोगग्रस्त अवशेष अलग रखें।

फसल चक्र से प्राकृतिक उर्वरता और खरपतवार नियंत्रण

लगातार एक ही फसल या एक जैसे अनाज आधारित क्रम से समान पोषक मांग, समान जड़ गहराई, समान बुवाई समय और समान खरपतवार समूह बने रहते हैं। कुछ खरपतवार हर वर्ष उसी समय उगकर आसानी से बीज बनाते हैं, जबकि मिट्टी की एक ही परत से बार-बार पोषक तत्व निकाले जाते हैं। विविध फसल चक्र इस दोहरी समस्या को तोड़ता है। एक अच्छे फसल चक्र में अलग परिवारों की फसलें, अलग बुवाई मौसम, अलग जड़ गहराई, दलहन या हरी खाद, पर्याप्त भूमि आवरण और अवशेष वापसी शामिल होनी चाहिए। अनाज के बाद दलहन, गहरी जड़ वाली फसल के बाद उथली जड़ वाली फसल, खरीफ के बाद

फसल, खरपतवार प्रजाति, खरपतवार की अवस्था, मिट्टी, नमी और पंजीकृत लेबल के अनुसार करें। अनुशासित मात्रा से कम देने पर अधूरा नियंत्रण और प्रतिरोध चयन का जोखिम बढ़ सकता है; अधिक मात्रा फसल, अगली फसल, मिट्टी और पर्यावरण को नुकसान पहुँचा सकती है। छिड़काव में सही नोजल, साफ पानी, समान चाल, सुरक्षा उपकरण और हवा की दिशा का ध्यान रखें। अलग उत्पादों को मनमाने ढंग से न मिलाएँ। लगातार एक ही क्रिया-विधि के स्थान पर फसल चक्र, हाथ या यांत्रिक निराई, मल्टच और अनुमोदित अलग क्रिया-विधियों को योजनाबद्ध रूप से अपनाएँ। छिड़काव के बाद बचे खरपतवारों को बीज बनने से पहले निकालना प्रतिरोध रोकने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

अलग खरपतवार समूह वाली रबी फसल और खाली अवधि में आवरण फसल जोड़ने से संसाधनों का उपयोग अधिक संतुलित होता है। बुवाई समय और भूमि तैयारी बदलने से किसी एक खरपतवार को हर वर्ष समान अनुकूल परिस्थिति नहीं मिलती। दलहन के कारण प्राकृतिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण बढ़ता है, पर प्राकृतिक उर्वरता को असीमित स्रोत नहीं मानना चाहिए। दाना, भूसा, चारा या पूरा जैवभार खेत से बाहर जाने पर पोषक तत्व भी बाहर जाते हैं। इसलिए जड़ों और कुछ अवशेषों को खेत में रहने देना, गोबर या कम्पोस्ट लौटाना और समय-समय पर मिट्टी परीक्षण करना आवश्यक है। फसल चक्र का लक्ष्य पोषक तत्वों की चोरी छिपाना नहीं, बल्कि जैविक पुनर्चक्रण और बाहरी पोषण के बीच संतुलन बनाना है।

सारणी 3. उदाहरणात्मक फसल चक्र और उनके संभावित लाभ

वर्तमान फसल चक्र/स्थिति	अधिक विविध विकल्प का उदाहरण	मिट्टी और खरपतवार प्रबंधन के लिए संभावित लाभ
धान-गेहूँ	धान-गेहूँ-ग्रीष्म मूंग अथवा क्षेत्रानुसार धान-चना/मसूर	दलहनी योगदान और खरपतवार चक्र में बाधा
मक्का-गेहूँ	मक्का+दलहन-चना अथवा मक्का-सरसों-ग्रीष्म मूंग	जड़ों और अवशेषों में विविधता
बाजरा-गेहूँ	बाजरा-चना, ग्वार-गेहूँ या बाजरा+लोबिया	कम पानी वाली दलहन और भूमि आवरण
सोयाबीन-गेहूँ	सोयाबीन-गेहूँ-ग्रीष्म मूंग, जहाँ संसाधन उपलब्ध हों	खाली अवधि कम और जैव पदार्थ अधिक
कपास-गेहूँ	कपास+मूंग/उड़द के बाद चना या स्थानीय रबी फसल	चौड़ी कतारों का उपयोग और आय में विविधता
फसल के बाद खेत खाली	ढेंचा, सनई, लोबिया या अल्प अवधि दलहन	खरपतवारों का बीज बनना कम
एक ही सब्जी परिवार	फल, पत्ती, जड़ और दलहनी सब्जियों का क्रम	पोषक मांग, रोग और खरपतवार में विविधता

फसल उत्पादकता और कृषक आय पर प्रभाव

प्रभावी खरपतवार नियंत्रण से फसल को उपलब्ध पोषक तत्वों, पानी और प्रकाश का अधिक भाग मिलता है। विभिन्न अध्ययनों के संकलन में फसल और खरपतवार की स्थिति के अनुसार समेकित प्रबंधन से 10 से 40 प्रतिशत तक अतिरिक्त उपज की संभावना बताई गई है। यह कोई निश्चित वादा नहीं है; वास्तविक लाभ खरपतवार दबाव, नियंत्रण समय, लागत, मौसम और फसल प्रबंधन पर निर्भर करेगा। फिर भी यह स्पष्ट है कि खेत में खरीदा गया उर्वरक खरपतवारों की बजाय फसल को मिले तो निवेश का प्रतिफल बेहतर होता है। कृषक आय पर प्रभाव केवल उपज बढ़ने से नहीं आता। समय पर नियंत्रण से बार-बार निराई या बचाव छिड़काव की जरूरत घट सकती है, कटाई और मड़ाई आसान होती है, दाने या बीज की सफाई और गुणवत्ता सुधरती है तथा बाजार में कटौती कम हो सकती है। विविध फसल चक्र अतिरिक्त उत्पाद, चारा और आय के स्रोत देता है, जबकि मिट्टी की बेहतर जलधारण क्षमता सूखे या अनियमित वर्षा वाले मौसम में जोखिम कम कर सकती है।

नई पद्धति का लाभ जानने के लिए केवल प्रति हेक्टेयर उपज न देखें। कुल उर्वरक मात्रा, खरपतवार नियंत्रण खर्च, मजदूरी, सिंचाई, मशीन लागत, उपज की गुणवत्ता, भूसा या चारे का मूल्य और शुद्ध लाभ दर्ज करें। कई बार उर्वरक की मात्रा थोड़ी ही घटती है, पर समय और स्थान सुधारने से समान खाद पर अधिक उपज मिलती है; यह भी उपयोग दक्षता में वास्तविक सुधार है।

वर्तमान चुनौतियाँ और भविष्य की सटीक तकनीकें

भारत विश्व के सबसे बड़े उर्वरक उपभोक्ताओं में से एक है। देश की कुल उर्वरक आवश्यकता का एक बड़ा हिस्सा आयात के माध्यम से पूरा किया जाता है। वर्ष 2025-26 में भारत ने लगभग 28.2 मिलियन टन उर्वरकों का आयात किया, जिसमें 11.2 मिलियन टन यूरिया तथा 6.4 मिलियन टन डीएपी (DAP) शामिल थे। वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों के कारण जहाँ एक ओर आने वाले दिनों में उर्वरकों की उपलब्धता में कमी की संभावनाएं बन रही हैं, वहीं दूसरी ओर इनके दामों में भी बढ़ोत्तरी की भी

आशंका है। इन परिस्थितियों से निजात पाने के लिए एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) को बढ़ावा दिया जाए। जिसमें जैव उर्वरकों, नैनो यूरिया एवं कार्बनिक स्रोतों का उपयोग बढ़ाया जाए एवं मृदा स्वास्थ्य कार्ड आधारित उर्वरक उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए। साथ ही साथ उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ाने वाली तकनीकों (नीम-लेपित यूरिया, प्रिंसीजन न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट आदि) को अपनाया जाए।

कृषि श्रमिकों की कमी, मजदूरी में वृद्धि, खरपतवारनाशी प्रतिरोध, जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा और उत्पादन लागत बढ़ने से खरपतवार तथा पोषक प्रबंधन अधिक जटिल हो रहा है। संरक्षण कृषि में कम जुताई से मिट्टी और नमी संरक्षण का लाभ मिलता है, पर खरपतवार समूह बदल सकता है; इसलिए अवशेष प्रबंधन, फसल चक्र और शाकनाशी प्रतिरोध की निगरानी साथ करनी होगी। ड्रोन आधारित छिड़काव, कैमरा या सेंसर से खरपतवार पहचान, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, रोबोटिक निराई, स्थान-विशिष्ट स्पॉट स्प्रे और प्रिंसीजन न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट भविष्य में इनपुट बचत के महत्वपूर्ण साधन बन सकते हैं। इन तकनीकों का लाभ तब अधिक होगा जब वे पूरे खेत पर समान छिड़काव के बजाय खरपतवार वाले स्थान या पोषक कमी वाले हिस्से को पहचानें। छोटे किसानों के लिए कस्टम हायरिंग, सहकारी सेवा या साझा मशीन केंद्र उपयोगी हो सकते हैं। आर्थिक व्यवहार्यता, प्रशिक्षण, अधिकृत प्रोटोकॉल और छिड़काव सुरक्षा का पालन आवश्यक है।

खेत स्तर पर चरणबद्ध कार्ययोजना

पहले वर्ष पूरे खेत में उर्वरक अचानक कम न करें। खेत को दो समान प्रबंधन पट्टियों में बाँटें। एक पट्टी में वर्तमान पद्धति और दूसरी में मृदा परीक्षण आधारित संतुलित पोषण, समय पर खरपतवार नियंत्रण, विभाजित नाइट्रोजन और उपलब्ध जैविक स्रोत अपनाएँ। दोनों में किस्म, बीज दर, बुवाई तारीख और सिंचाई समान रखें। खाद, मजदूरी, खरपतवार घनत्व, उपज और लागत दर्ज करें। इससे अपने खेत का वास्तविक प्रमाण मिलेगा। दूसरे वर्ष गोबर, कम्पोस्ट, फसल अवशेष, हरी खाद या दलहन को पोषक बजट में व्यवस्थित रूप से जोड़ें और पिछले वर्ष के परिणाम के आधार पर रासायनिक खाद समायोजित करें। तीसरे वर्ष फसल चक्र में

विविधता, आवरण फसल, बेहतर मशीन या सटीक तकनीक जोड़कर शुद्ध लाभ और मिट्टी की दशा की समीक्षा करें। यह क्रमिक दृष्टिकोण उत्पादन

जोखिम कम करता है और किसान को बिना अनुमान के सुरक्षित निर्णय लेने देता है।

सारणी 4. एक फसल मौसम में पोषण और खरपतवार प्रबंधन की संयुक्त कार्यसूची

फसल अवस्था	पोषण संबंधी कार्य	खरपतवार संबंधी कार्य	क्या दर्ज करें
बुवाई से पहले	मृदा परीक्षण, खाद और अवशेष का बजट	खरपतवार पहचान, साफ बीज, बासी बीजशैया	प्रमुख प्रजाति और पिछली समस्या
बुवाई के समय	आधार खाद सही स्थान पर, बीज से सुरक्षित दूरी	उचित बीज दर, कतार दूरी और समान अंकुरण	खाद की वास्तविक मात्रा
0-15 दिन	नमी और अंकुरण की निगरानी	पहली खरपतवार खेप और आवश्यकता आधारित प्रारंभिक नियंत्रण	खरपतवार संख्या/वर्ग मीटर
15-45 दिन	फसल मांग के अनुसार विभाजित पोषण	महत्वपूर्ण अवधि में निराई, गुड़ाई या अनुमोदित नियंत्रण	फसल और खरपतवार जैवभार
ऊपरी खुराक से पहले	नमी, वर्षा और फसल रंग/वृद्धि देखकर निर्णय	सक्रिय खरपतवार पहले हटाएँ	खुराक की तारीख और कारण
कटाई से पहले	अनावश्यक देर की नाइट्रोजन से बचें	बचे खरपतवार बीज बनने से पहले हटाएँ	उपज की सफाई और गुणवत्ता
कटाई के बाद	अवशेष वापसी या कम्पोस्ट योजना	मेड़, नाली और मशीनों की सफाई	उपज, लागत, शुद्ध लाभ, अगला चक्र

नाइट्रोजन की ऊपरी खुराक से पहले चार प्रश्न

1. क्या खेत से सक्रिय खरपतवार हटा दिए गए हैं ?
2. क्या मिट्टी में पर्याप्त नमी है ?
3. क्या भारी वर्षा या जलभराव की संभावना है ?
4. क्या फसल को वास्तव में इसी समय नाइट्रोजन चाहिए ?

हर मौसम में कम से कम पाँच संकेत दर्ज करें: प्रयुक्त रासायनिक उर्वरक की मात्रा, जैविक स्रोत, खरपतवार घनत्व या प्रमुख प्रजातियाँ, उपज और शुद्ध लाभ। दो से तीन वर्षों में मिट्टी का जैविक कार्बन, पीएच और उपलब्ध पोषक तत्व भी पुनः जाँचें। इस रिकॉर्ड से पता चलेगा कि उर्वरक बचत वास्तविक है या केवल एक मौसम की अनुकूल वर्षा का परिणाम।

आवश्यक सावधानियाँ

रासायनिक उर्वरक तभी कम करें जब उसकी जगह विश्वसनीय पोषक स्रोत, बेहतर उपयोग दक्षता या मिट्टी में पर्याप्त उपलब्धता हो। सभी खेतों में एक साथ आधी खाद कर देना वैज्ञानिक सलाह नहीं है। उपज के साथ पोषक तत्व खेत से बाहर जाते हैं; उनकी पूर्ति जैविक पुनर्चक्रण, दलहनी स्थिरीकरण या आवश्यकता आधारित बाहरी स्रोत से करनी होगी। पके बीज, जड़ गांठ या भूमिगत तने वाले खरपतवारों को सीधे मलच में न डालें। शाकनाशी, सूक्ष्म पोषक तत्व, चूना, जिप्सम, नैनो-फॉर्म्युलेशन और जैव उत्पादों की मात्रा फसल, मिट्टी और पंजीकृत लेबल के अनुसार तय

करें। स्थानीय खरपतवार पहचान, उत्पाद पंजीकरण और फसलवार महत्वपूर्ण अवधि के लिए कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विश्वविद्यालय या अधिकृत विशेषज्ञ से परामर्श लें।

अच्छी पैदावार के लिए पौधों को पर्याप्त पोषण देना जरूरी है, पर इसका अर्थ अधिक यूरिया, डीएपी या एनपीके डालना नहीं है। बिना मृदा परीक्षण, असंतुलित मात्रा, गलत समय और गलत स्थान पर दिया गया उर्वरक पूरी तरह फसल के काम नहीं आता। उसका कुछ भाग पौधों की जड़ों की पहुँच से नीचे जा सकता है, कुछ गैस के रूप में नष्ट होता है और एक महत्वपूर्ण भाग खेत में मौजूद खरपतवार ग्रहण कर लेते हैं। तेज वृद्धि और विकसित जड़ तंत्र के कारण खरपतवार नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैश, सल्फर तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ पानी, प्रकाश और स्थान के लिए भी फसल से प्रतिस्पर्धा करते हैं। इस समस्या का समाधान रासायनिक उर्वरकों को अचानक बंद करना नहीं, बल्कि मृदा परीक्षण, पोषक बजट, सही स्रोत-मात्रा-समय-स्थान, सड़ी जैविक खाद, हरी खाद, दलहनी फसलें, जैव उर्वरक, फसल अवशेष, नियंत्रित सिंचाई और समय पर खरपतवार प्रबंधन को एक साथ अपनाना है। विविध फसल चक्र खरपतवारों का जीवन चक्र तोड़ता है, मिट्टी में जैविक पदार्थ बढ़ाता है और प्राकृतिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण को प्रोत्साहित करता है। इस समेकित पद्धति से प्रति इकाई उर्वरक अधिक उपज मिल सकती है, उत्पादन लागत और पोषक हानि घट सकती है तथा मिट्टी की उर्वरता लंबे समय तक सुरक्षित रखी जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य एवं फसल उत्पादन में संरक्षित कृषि की उपयोगिता

पी.के. सिंह, जमालुद्दीन ए., वी.के. चौधरी एवं योगिता घरडे

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारतीय कृषि एक नये युग की तरफ अग्रसर है। आज हमारा देश, वैज्ञानिकों के उत्तरोत्तर नये अनुसंधान, कृषकों की मेहनत एवं उन्नत तकनीक के अंगीकरण तथा सरकार के सफल प्रयासों से फसलों की पैदावार में आत्मनिर्भर हो सका है। देश की बढ़ती जनसंख्या एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों में सघन कृषि प्रणालियों द्वारा आज हमारा कुल अनाज उत्पादन 2025-26 में 376.56 मिलियन टन (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार) है, लेकिन प्राकृतिक संसाधनों के निरंतर दोहन एवं असन्तुलित रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से हमारे देश की मृदा उर्वरता निरंतर कम होती जा रही है। उत्पादकता में वृद्धि के लिए किसान गहन जुताई आधारित कृषि प्रणाली को अपनाता है जबकि गहन जुताई एवं सघन खेती प्रणाली द्वारा मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन तथा मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है (तालिका-1)। इसके साथ-साथ आज पूरा विश्व बढ़ते तापमान को पृथ्वी के लिए जटिल समस्या के रूप में देख रहा है।

इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आईपीसीसी) का मानना है कि 2052 तक वैश्विक तापमान में 0.5 से 1.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होगी, जबकि 2100 तक यह अनुमानित वृद्धि 1.4 से 4.4 डिग्री सेल्सियस के बीच हो जाएगी। अध्ययन बताते हैं कि हर साल लगभग 10-11 गीगाटन (Gt.) कार्बन हमारे वायुमण्डल में छोड़ा जा रहा है। बढ़ती जनसंख्या के कारण भोजन की मांग में भी वृद्धि हुई है इसमें प्राकृतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, जंगल आदि पर दबाव पड़ रहा है। जलवायु में परिवर्तन का सीधा प्रभाव खेती पर पड़ेगा क्योंकि तापमान, वर्षा आदि में बदलाव आने से मृदा की उर्वरता में कमी, रोग, खरपतवार एवं कीटों के अत्यधिक प्रभाव से कृषि उत्पादन में प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके साथ-साथ जलवायु परिवर्तन से मानवीय स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव होगा। जलवायु परिवर्तन एवं मृदा के स्वास्थ्य में सुधार के लिए आज पूरा विश्व संरक्षित कृषि को एक बेहतर विकल्प मानते हुए उसकी तरफ एक आशा भरी नजर से देख रहा है। क्योंकि संरक्षित कृषि आधुनिक युग की खेती में एक अच्छे विकल्प के रूप में उभरा है। जिसकी मदद से पर्यावरण की विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फसल उत्पादन संभव है।

इस विधि में जमीन की जुताई के बिना बीज एवं खाद को शून्य जुताई यन्त्रों (हैप्पीसीडर) द्वारा मिट्टी में उचित गहराई में चीरा लगाकर दबा दिया जाता है। एक समय था जब फसल के उत्पादन में पानी, रासायनिक उर्वरकों एवं ऊर्जा का अधिक प्रयोग करने की अहम भूमिका हुआ करती थी। लेकिन अब समय और सोच में बदलाव के साथ आज कृषि के विकास के साथ-साथ इन बातों का भी प्रमुखता से ध्यान रखा जा

रहा है कि इनका उपयोग कम करें जिससे लागत में कमी होने के साथ प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरणीय पारिस्थितिकी पर भी इसका कम से कम प्रभाव पड़े। हालांकि पारम्परिक अवधारणा यह बनी हुई थी कि खेतों को जितना अधिक जोता जायेगा पैदावार में भी उतनी ही वृद्धि होगी, लेकिन संरक्षित कृषि प्रणाली का सिद्धांत इस धारणा के बिल्कुल विपरीत है। इस प्रणाली में फसल की कटाई के पश्चात् बिना जुताई किए पूर्व फसल अवशेषों के साथ दूसरी फसल बो दी जाती है। जिसमें नई फसल की बुवाई के लिए संरक्षित कृषि यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रणाली में न केवल श्रम की बचत होती है बल्कि इसमें खेतों की बार-बार जुताई में होने वाले खर्च, ऊर्जा के साथ-साथ समय की भी बचत होती है।

तालिका 1. भारत में मृदा क्षरण की स्थिति

मृदा क्षरण के प्रकार	क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)
पानी द्वारा मृदा क्षरण	94
वायु द्वारा मृदा क्षरण	09
अम्लीकरण द्वारा मृदा क्षरण	16
बाढ़ द्वारा मृदा क्षरण	14
लवणता/खारापन द्वारा मृदा क्षरण	06
अन्य विभिन्न कारकों द्वारा मृदा क्षरण	07
कुल अपक्षय क्षेत्र	146

स्रोत : भट्टाचार्य एवं अन्य (2015)

दक्षिण एशिया के गंगा के मैदानी भाग में मुख्य रूप से चार देश भारत, पाकिस्तान, नेपाल व बांग्लादेश आते हैं। जिसमें लगभग 3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल शून्य जुताई के अंतर्गत है। इस क्षेत्र के अंतर्गत मुख्य रूप से धान आधारित फसल प्रणाली अपनाई जाती है। जबकि धान की खेती के लिए मिट्टी की कई बार जुताई के बाद खेत की मचाई करते हैं तथा गेहूँ की सीधी या शून्य जुताई विधि से बुवाई करते हैं (धान में जुताई करने के कारण दक्षिण एशिया का विश्व में कोई स्थान नहीं आता है।)

संरक्षित कृषि की विश्व एवं भारत में प्रगति

संरक्षित खेती विश्व के कटिबंधीय, उपोष्ण कटिबंधीय एवं शीतोष्ण क्षेत्रों के वर्षा आधारित एवं सिंचित पारिस्थितिकी क्षेत्रों में अधिक ध्यान आकर्षित कर रही है। वर्तमान में विश्व में 180.44 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल (तालिका 2) पर संरक्षित खेती की जा रही है। मुख्य रूप

से संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, अर्जेंटीना, कनाडा, आस्ट्रेलिया, चीन और रूस में संरक्षित खेती के क्षेत्र में लगातार प्रगति हुई जो दुनिया की कृषि योग्य भूमि क्षेत्र के 11 प्रतिशत से अधिक भाग पर फैला हुआ है। भारत में संरक्षित खेती अनुसंधान कार्य की शुरुआत तो 1970-80 के दशक में हो गई थी परंतु उपयुक्त यंत्रों की अनुपलब्धता एवं अन्य प्रबंधन की समस्या के कारण अभी भी संरक्षित खेती भारत में सतही अवस्था में है। भारत के गंगा के मैदानों या उत्तर पश्चिमी इलाकों में पिछले 16-17 वर्षों से संरक्षित खेती में काम किया जा रहा है और अब तक लगभग 2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र इसके अंतर्गत आ चुका है। एशिया महाद्वीप के अंतर्गत 3 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र है जिसका ज्यादातर क्षेत्र धान-गेहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत है। हालांकि इस तकनीक का भारत में लगभग 10 मिलियन हेक्टेयर संभावित क्षेत्र का अनुमान है, परंतु अभी सिर्फ 20 प्रतिशत ही हासिल कर पाये हैं।

भारत में वर्षा आधारित पारिस्थितिकी तंत्र वाले क्षेत्रों में पशुओं के प्रति इकाई क्षेत्र/जमीन पर दबाव अधिक होने के कारण वहां पर मृदा की सतह ढकने के लिए फसल अवशेष पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होते। जबकि दूसरी तरफ भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान की पुआल/फसल अवशेष पशुओं द्वारा नहीं खाये जाने के कारण इसको मिट्टी की सतह पर मल्लिचंग के रूप में उपयोग किया जा रहा है तथा गेहूँ की सीधी बुआई जीरो सीड ड्रिल के द्वारा धान के फसल अवशेषों में करा दी जाती है। सामान्यतया यह पाया गया है कि संरक्षित खेती के तीनों सिद्धांतों के पूर्ण रूप से लागू नहीं होने के कारण फसल उत्पादकता में पारंपरिक खेती की तुलना में कहीं कम कहीं अधिक एवं कहीं पर समतुल्य उपज प्राप्त हो रही है।

तालिका 2. संरक्षित कृषि को अपनाने वाले प्रमुख देशों की सूची

क्र.	देश	क्षेत्रफल (मिलियन हैक्टेयर)
1.	संयुक्त राज्य अमेरिका	43.20
2.	ब्राजील	32.00
3.	अर्जेंटीना	31.03
4.	कनाडा	19.94
5.	ऑस्ट्रेलिया	22.30
6.	चीन	9.00
7.	रूस	5.00
8.	पेराग्वे	3.00
9.	कजाकिस्तान	2.50
10.	भारत	2.00
11.	उरूग्वे	1.26
12.	स्पेन	0.90
13.	यूक्रेन	0.70

14.	बोलीविया	2.00
15.	इटली	0.29
16.	दक्षिणी अफ्रीका	0.44
17.	अन्य	4.88
	कुल	180.44

संरक्षित कृषि है क्या ?

संरक्षित कृषि से तात्पर्य प्राकृतिक संसाधनों के ऐसे तकनीकी प्रबंधन से है जिसके द्वारा अधिकतम फसल उत्पादन के स्तर को बनाये रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा स्वास्थ्य, मृदा जल एवं पर्यावरणीय संतुलन भी बना रहे ताकि वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ भावी पीढ़ी के लिए भी अपने से बेहतर वातावरणीय पारिस्थितिकी सुनिश्चित की जा सके।

संरक्षित कृषि में खेतों की बिना जुताई किए फसलों की बुवाई की जाती है। इस तकनीकी में जहां बीज एवं खाद की बुवाई करनी होती है, उस जगह की मिट्टी को न्यूनतम छेड़-छाड़ किये केवल एक निश्चित गहराई का चिरा लगाया जाता है जिसमें बीज एवं खाद को डाला जा सके। इसमें दो कतारों के बीच की जगह बिना जुते रह जाती है।

संरक्षित कृषि के सिद्धांत

संरक्षित कृषि मुख्य रूप से तीन सिद्धांतों पर क्रमशः आधारित है जैसे न्यूनतम जुताई, मृदा सतह पर फसल अवशेषों का आवरण एवं फसल चक्र का विविधकरण इत्यादि।

1. न्यूनतम जुताई - न्यूनतम जुताई से अभिप्राय है कि संरक्षित खेती में यांत्रिक-भूपरिष्करण प्रक्रियाओं को उसे अधिकतम सीमा तक कम किया जाए जिससे मिट्टी में ठीक प्रकार से बीज रोपण हो सके एवं जो उचित अंकुरण के लिए आवश्यक हो और जिससे संतोषजनक ढंग से फसल स्थापना हो जाए। न्यूनतम जुताई के लिए मिट्टी में बीज एवं खाद उर्वरक डालने हेतु विशेष प्रकार के यंत्रों से जुताई की जाती है और सामान्यतया दो लाईनों के बीच की जगह में छेड़-छाड़ नहीं किया जाता है। पुराने जमाने में जुताई से पोषक तत्वों एवं खनिज पदार्थों के कारण मृदा उर्वरता में वृद्धि हुई है परंतु लम्बे समय से अनावश्यक एवं निरंतर जुताई करने से मृदा संरचना एवं मृदा उर्वरता में गिरावट आई है। अधिक जुताई के कारण मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का ऑक्सीकरण बढ़ जाता है जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी हो जाती है। जबकि कार्बनिक पदार्थ फसलों को पोषक तत्व प्रदान करने का मुख्य अवयव है तथा मृदा संरचना के स्थिरीकरण में सहायक होता है एवं लाभदायक जीवाणु की संख्या में वृद्धि करता है। न्यूनतम जुताई से मृदा में जैविक प्रक्रिया को नुकसान नहीं होता तथा साथ ही स्थायी मृदा संरचना का निर्माण होता है जिससे विभिन्न प्रकार के रंध्रावकाश बनते हैं जिसमें मृदा में जल एवं वायु का संचार बढ़ता है इस प्रक्रिया को जैविकीय भूपरिष्करण (Biotillage) भी कहते हैं।

2. स्थायी रूप से मृदा सतह पर फसल अवशेष बनाये रखना - यह संरक्षित खेती का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है। संरक्षित खेती में न्यूनतम जुताई के कारण फसल अवशेष भूमि की सतह पर बने रहते हैं इस प्रकार भूमि सतह पर फसल अवशेषों का आवरण या परत जमा हो जाती है। इस आवरण के कारण मृदा अधिक वर्षा, धूप इत्यादि हानिकारक प्रभावों से बच जाती है तथा साथ ही मृदा क्षरण भी कम होता है एवं मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म जीव भी हानिकारक प्रभावों से बचे रहते हैं। मृदा में फसल अवशेष प्रबंधन के कारण मृदा का सूक्ष्म वातावरण भी जीवाणु, शैवाल, कवकों एवं लाभदायक केंचुओं के अनुकूल बना रहता है जिससे सूक्ष्मजीवों को नियमित भोजन मिलता रहता है और उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी भी होती रहती है और वे फसल अवशेषों का विघटन करते रहते हैं जिससे ह्यूमस तैयार हो जाती है और परिणाम स्वरूप मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक स्थिति में सुधार होता रहता है। फसल अवशेषों के स्थायी आवरण से मृदा गुणवत्ता में सुधार होता है साथ ही ये मृदा के भीतर एवं फसल सतह पर तापमान में होने वाले परिवर्तन को भी सामान्य बनाये रखते हैं और इस तरह जलवायु परिवर्तन में भी फसल अवशेष प्रबंधन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।



शून्य जुताई में गोहूँ



शून्य जुताई में मटर



शून्य जुताई में सरसों

संरक्षित एवं पारम्परिक कृषि/खेती में भिन्नता

वर्तमान में संरक्षित खेती एक आवश्यकता हो गई है क्योंकि यह तकनीकी प्रबंधन की वह पद्धति है जिसके माध्यम से उपलब्ध संसाधनों के उचित समावेश एवं समन्वयन द्वारा टिकाऊ फसल उत्पादन का लक्ष्य रखा

जाता है। जबकि पारम्परिक खेती में अधिक उत्पादन के लिए अधिक जुताई व बिना संतुलन के बाहरी एवं आंतरिक संसाधनों का अधिक उपयोग कर उपज प्राप्त की जाती है। तालिका-3 में पारम्परिक एवं संरक्षित खेती में मुख्य भिन्नताएँ दर्शायी गई हैं।

तालिका 3. पारम्परिक एवं संरक्षित खेती में मुख्य भिन्नताएं

क्र.सं.	पारम्परिक खेती	संरक्षित खेती
1.	पारंपरिक खेती के लिए मृदा की अधिक जुताई के साथ विज्ञान एवं तकनीकी द्वारा फसल उत्पादन लिया जाता है।	न्यूनतम जुताई के साथ फसल उत्पादन के लिए प्राकृतिक प्रक्रिया के साथ कम से कम हस्तक्षेप किया जाता है।
2.	अत्यधिक यांत्रिक जुताई के कारण मिट्टी कटाव की समस्या रहती है।	शून्य या न्यूनतम जुताई के कारण जैव विविधता बनी रहती है (जैविक जुताई)।
3.	वायु एवं जल क्षरण की अधिक संभावना रहती है।	वायु एवं जल क्षरण की संभावना कम रहती है।
4.	फसल अवशेष जलाने के कारण कार्बनिक पदार्थ में कमी हो जाती है।	फसल अवशेष आवरण के कारण कार्बनिक पदार्थ की अधिकता रहती है।

5.	पानी का समावेश कम होता है ।	पानी का समावेश अधिक होता है।
6.	हरी खाद का उपयोग किया जाता है।	फसल अवशेष का आवरण तथा भूरी खाद (ब्राउन मेन्योर) का उपयोग।
7.	अधिक जुताई से खरपतवार मर जाते हैं परंतु अधिक मात्रा में बीज अंकुरण होने की संभावना रहती है।	प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों का प्रकोप रहता है परंतु समय के साथ उचित खरपतवार प्रबंधन से ये नष्ट हो जाते हैं।
8.	यांत्रिक जुताई की वजह से भूमि/मृदा सघनता में बढ़ोत्तरी हो जाती है।	नियंत्रित मशीनों के उपयोग से मृदा सघनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।
9.	एक फसली चक्र एवं फसल चक्र में कम विविधता	फसल विविधिकरण एवं फसल चक्र की अधिकता
10.	शारीरिक क्षमता (मजदूरी) पर भारी निर्भरता एवं फसल क्रियाओं में अनिश्चितता	समयबद्धता के साथ कृषि क्रियाएं एवं यांत्रिक संचालन
11.	प्रतिकूल समय में फसल उत्पादकता में अधिक नुकसान की संभावना बनी रहती है।	प्रतिकूल समय में अधिक लचीलापन एवं फसल उत्पादकता में कम नुकसान
12.	लंबे समय में फसल उत्पादकता घट जाती है।	लंबे समय में फसल उत्पादकता बढ़ती है।

संरक्षित कृषि हेतु प्रक्षेत्र का समतलीकरण

प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण संबंधी विभिन्न तकनीकी के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए अन्यथा बुवाई में अनेक प्रकार की कठिनाइयां होती हैं। वास्तव में यह कहा जाये कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का लाभ खेत के समतल होने पर निर्भर करता है। लेजर भूमि समतलीकरण विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण (लेजर लेवलर) द्वारा खेत की मिट्टी को समतल किया जाता है। समतल खेत में फसल की बुवाई करने पर समान रूप से अंकुरण होता है तथा पानी की बचत होने के साथ ही फसलों द्वारा पोषक तत्वों का समुचित उपयोग किया जाता है जिससे फसल की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

संरक्षित कृषि एवं फसल अवशेष प्रबंधन

खाद्यान्न में मुख्य रूप से धान एवं गेहूँ की फसलें आती हैं। उच्च उत्पादन देने वाली किस्मों में दाने और फसल अवशेष का अनुपात 2:3 होता है। भारत में लगभग 500 मिलियन मीट्रिक टन फसल अवशेष का उत्पादन होता है। आजकल फसलों की कटाई हार्वेस्टर से की जाती है जिससे किसान फसल अवशेषों को एकत्रित न करते हुए जलाकर नष्ट कर देते हैं। जिससे फसल अवशेष तो नष्ट होते ही हैं साथ में मृदा उर्वरता का भी हास होता है। यदि इसको जलाने के बजाय मिट्टी में मिला दिया जाये तो यह मृदा एवं फसलों के लिए बहुत ही लाभदायक होता है। फसल अवशेषों में औसतन 40 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ, 0.5 प्रतिशत नत्रजन, 0.1 प्रतिशत स्फुर और 1.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। इस प्रकार एक टन फसल अवशेष में लगभग 400 किग्रा कार्बन, 5 किग्रा. नत्रजन, 1 किग्रा. स्फुर और 15 किग्रा. पोटाश होता है। और 1 टन फसल अवशेष से लगभग 11 किलो ग्राम यूरिया, 10 किलो सिंगल सुपर फास्फेट, 25 किला म्यूरेंट आफ

पोटाश के बराबर (नत्रजन, स्फुर और पोटाश) और पर्याप्त मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे जिंक, कॉपर, आयरन और मैंगनीज प्राप्त होते हैं। यह जल में घुलनशील पोषक तत्व का बेहतरीन स्रोत है। संरक्षित खेती में मशीनीकरण से फसल अवशेषों को काटकर खेत में ऊपर सतह पर फैला दिया जाता है। ताकि प्रतिकूल (कम/अधिक) तापमान के कारण मिट्टी का ताप अनुकूल बना रहे। फसल अवशेषों को जलाने का नुकसान है कि इससे ऊर्जा और पोषक तत्वों (कार्बन, नत्रजन, स्फुर और पोटाश) की बर्बादी होती है और साथ ही वायु प्रदूषण होता है। अभी हाल ही में दिल्ली में वातावरण प्रदूषण का एक बड़ा कारण पंजाब, हरियाणा के किसानों द्वारा पूर्व फसल अवशेष (पराली) को जलाना था जिस पर सरकार एवं न्याय पालिका ने भी गंभीर चिंता जताई। खेत में फसल अवशेष डालने से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को ऊर्जा प्राप्त होती है और वे मृदा में पोषक तत्वों को उपलब्ध बनाए रखने में मदद करते हैं और मृदा की संरचना को सुधारते हैं। साथ ही इससे मिट्टी में जैव पदार्थों की मात्रा भी सुधरती है।

संरक्षित कृषि का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव एवं अन्य महत्व

साधारणतया मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा गुणों को एक दूसरे के पूरक शब्द के रूप में जाना जाता है। डोरन और पारकीन के अनुसार मृदा स्वास्थ्य से तात्पर्य मृदा की वह क्षमता है जो पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर, मृदा उपयोग की सीमाओं व पर्यावरणीय गुणवत्ता के साथ ही, फसलों की उत्पादकता को बनाये रखती है। जिससे फसलों के साथ-साथ जीव-जंतुओं के स्वास्थ्य को उत्तम बनाया जा सके। जलवायु परिवर्तन की स्थिति में किसी प्रक्षेत्र में फसलों, वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप फसल प्रणालियों का प्रबंधन एवं नई तकनीकियों के अनुसार खेती करना आज के समय की जरूरत बन गयी है। संरक्षित कृषि में मृदा के स्वास्थ्य तथा उसकी उत्पादन क्षमता बनाये रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है

कि मिट्टी की सतह पर फसलों के अवशेषों का स्थायी आवरण रखा जाए। इस आवरण से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक क्रियाशीलता बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि होती है और फसलों को समुचित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध होते हैं। मृदा में कार्बनिक पदार्थों की अधिक मात्रा से मृदा के भीतर भौतिक गुणों जैसे-मृदा संरचना, मृदा जल धारण क्षमता, मृदा स्थूल घनत्व, मृदा समुच्चय, जल पारगम्यता दर, मृदा गाढ़ता, उर्वरक उपयोग दक्षता एवं पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता को बढ़ावा मिलता है। जिससे फसलों के जड़ वाले क्षेत्र में पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक होने से मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। संरक्षित खेती के अंतर्गत किसानों के मित्र जीव केंचुओं की संख्या में भी सकारात्मक वृद्धि होती है। फसलों की जड़ों एवं केंचुओं द्वारा मिट्टी

में बनाये हुए छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात बना रहता है। जिससे फसलों की जड़ों का वृद्धि एवं विकास सुचारू रूप से होता है। मृदा से पोषक तत्वों की उपलब्धता मृदा अभिक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। संरक्षित खेती में मृदा अभिक्रिया में सुधार होने से पोषक तत्वों की उपलब्धता के साथ फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती है। संरक्षित खेती में मृदा की जैव विविधता, जैविक क्रियाशीलता एवं पर्यावरणीय गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है। इस विधि द्वारा मृदा में कार्बन संचय करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। उपरोक्त परिणामों से हम यह कह सकते हैं कि संरक्षित कृषि द्वारा मृदा स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरणीय पारिस्थितिकी में भी सुधार होता है, जिससे मानव स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।



लेजर लैंड लेवलर से भूमि समतलीकरण



शून्य जुताई (जीरो-टिलेज) मशीन से बुआई



हैप्पी सीडर से बुआई

संरक्षित खेती में खरपतवार प्रबंधन का महत्व

संरक्षित खेती में खरपतवार प्रबंधन एक प्रमुख चुनौती है। इसके बावजूद इस पर बहुत अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। जिससे फसल उत्पादन में व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। खरपतवार प्रबंधन एक

महत्वपूर्ण विषय है जिसमें प्रबंधन संबंधी विभिन्न आयामों को अपनाना आवश्यक है। जिसके साथ-साथ संरक्षित खेती में खरपतवारनाशियों का विशेष योगदान है जिसे अपनाकर खरपतवार द्वारा होने वाले नुकसान को बहुत हद तक कम किया जा सकता है। सामान्य खेती का संरक्षित खेती

प्रणाली से तुलना करने पर यह पाया गया है कि संरक्षित खेती में खरपतवारनाशियों का अधिक उपयोग होता है। जिसका मुख्य कारण अन्य खरपतवार प्रबंधन का अभाव है। सामान्यतः संरक्षित खेती अपनाने के शुरूआती दिनों में खरपतवारों का अधिक प्रभाव फसल उत्पादन में होता है। लेकिन शुरूआत से ही खरपतवारों का कुशल प्रबंधन कर इससे होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं। कम या शून्य जुताई भी खरपतवार हेतु विपरीत स्थिति स्थापित कर खरपतवार के अंकुरण एवं स्थापना को कम करता है। जबकि सामान्य खेती में जुताई करने पर खेत की तह में उपस्थित बीज सतह पर आ जाते हैं एवं वर्षण क्रिया के द्वारा सुसुप्त बीज भी सक्रिय हो जाते हैं। जुताई आक्सीजन के विनिमय को बढ़ाता है तथा कार्बन डाई ऑक्साइड को उत्सर्जित करता है, तापमान को अंकुरण हेतु अधिक अनुकूल बनाता है एवं नाइट्रेट के स्तर को बढ़ाता है जिससे सुसुप्त खरपतवार के बीजों की सुसुप्तावस्था समाप्त होती है एवं अनुकूल वातावरण मिलने पर अंकुरित होकर फसल के साथ विभिन्न संसाधनों हेतु प्रतिस्पर्धा कर उत्पादन को कम करते हैं।

जुताई करने पर खरपतवार के बीज प्रकाश के सम्पर्क में आते हैं जिससे बहुत सारे बीज जिन्हें अंकुरण हेतु प्रकाश की आवश्यकता होती है। सक्रिय होकर अधिक संख्या में अंकुरित एवं स्थापित होते हैं।

फसल अवशेष एवं खरपतवार प्रबंधन

संरक्षित खेती में फसल का लगभग 30 प्रतिशत अवशेष खेतों में छोड़ना अनिवार्य है। इससे लगभग 52 प्रतिशत तक अपवाह में कमी तथा 82 प्रतिशत तक मृदा क्षरण में कमी पाई गई है। उचित अवशेष प्रबंधन से मृदा कार्बन में वृद्धि तथा मृदा के सूक्ष्म वातावरण में परिवर्तन कर खरपतवार हेतु विपरीत वातावरण बनता है। जिससे इनका अंकुरण तथा स्थापना प्रभावित होता है। फसल अवशेष की उपस्थिति में कुछ खरपतवार के बीजों को प्रकाश अनुपलब्ध होता है तथा कुछ बीज मिट्टी के सम्पर्क में नहीं आ पाते जिससे इन बीजों का अंकुरण तथा स्थापना प्रभावित होता है। साथ ही साथ फसलों के अवशेष विभिन्न प्रकार के परभक्षी को आमंत्रित करते हैं तथा मित्र कीट, चिड़िया, केंचुआ, चूहा, कैराबिड बीटल एवं झिंगुर आदि की विविधता को बढ़ावा देता है। जो सतह पर उपस्थित खरपतवारों के बीज को नष्ट कर देते हैं। जिससे खरपतवारों की प्रति इकाई संख्या में गुणात्मक कमी पाई जाती है।

फसल चक्र एवं खरपतवार प्रबंधन

फसलों को अदल बदल कर लगाने से एक ही प्रकार के खरपतवार की स्थापना में कमी आती है। साथ ही साथ पूरे वर्ष भर फसल रहने से फसल आच्छादन एवं एलीलोपैथिक प्रभाव के कारण बहुत सारे खरपतवारों के बीज अंकुरित नहीं होते एवं धीरे-धीरे अपनी सक्रियता खो देते हैं एवं अन्ततः सड़ जाते हैं। अतः फसलों को इस क्रम में लगाया जावे जिससे खरपतवार के बीज भंडार में कमी आये। फसल चक्र में अलग अलग प्रजाति/कुल के फसल की विविधता के साथ लगाने पर अलग प्रकार के सूक्ष्मजीव खेतों में पनपते हैं, जो खरपतवार के बीजों को नष्ट कर

देते हैं। अलग-अलग फसलों को लगाने से उनकी पोषक तत्वों एवं जल मांग भिन्न होती है तथा उनके जड़ अलग-अलग गहराई तक प्रवेश कर अपनी आवश्यकता पूर्ति करते हैं एवं सूक्ष्मजीवों को गहराई तक पनपने में मदद करते हैं जिससे कुछ समय पश्चात् खरपतवार के बीज अपनी सक्रियता खो देते हैं। इस तरह से खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

इन सबके बावजूद यदि खरपतवार उगते हैं, तो आवश्यकतानुसार उचित खरपतवारनाशियों का उपयोग कर उनके प्रभाव को कम किया जा सकता है। फसलवार, कुछ प्रमुख खरपतवारनाशी तथा उनका उपयोग समय निम्नलिखित हैं-

1. धान- पेंडीमेथेलीन 1.0 किग्रा/हे. 0-3 दिन के भीतर या पाइरेजोसल्फ्यूरान 20 ग्रा/हे. 0-3 दिन के भीतर। फ्लोरपाइराक्सीफेन बेंजाइल + सहाइलोफॉप ब्यूटाइल 150 ग्रा./हे. 20 दिन के बाद अथवा बिसपायरीबेक सोडियम-25 ग्रा/हे. 17-20 दिनों के पश्चात अथवा पेनाक्सूलम-22.5 ग्रा/हे. 17-20 दिनों के पश्चात अथवा फिनोक्साप्रॉप+इथाक्सीसल्फ्यूरॉन - 60 ग्रा+18 ग्रा/हे. 25 दिनों के पश्चात।
2. मक्का - ऐट्राजिन - 1.0 किग्रा/हे. 0-3 दिन के भीतर अथवा टेम्बोट्रियोन 120 ग्रा/हे.+ऐट्राजिन - 500 ग्रा/हे. या टोप्रामिजोन - 25 ग्रा/हे.+ऐट्राजिन - 500 ग्रा/हे. बुवाई के 20-25 दिन के अन्दर।
3. सोयाबीन- पेंडीमेथालिन 30% + इमेजेथापायर 2% ईसी 900+60 ग्रा/हे. अथवा सल्फेट्राजोन 28% + क्लोमाजोन 30% डब्ल्यूपी 350+375 ग्रा/हे. का प्रयोग बुवाई के 0-3 दिन पर। अथवा सोडियम-एसिफ्लोरफेन 16.5% + क्लोडिनाफॉप प्रोपार्जिल 8% 245 ग्रा/हे. या इमेजेथापायर 35% + इमाजामोक्स 35% डब्ल्यूपी 70 ग्रा/हे. या क्विजालोफॉप इथाइल 10% + क्लोरिमुरॉन-इथाइल 25%, 37.5 + 9 ग्रा/हे. या फोमेसेफेन 12% + क्विजालोफॉप इथाइल 3% एससी 225 ग्रा/हे. का प्रयोग अंकुरण के 20-25 दिन पर।
4. गेहूँ- क्लोडिनोफॉप + मेटसल्फ्यूरॉन - 60+4 ग्रा/हे. अथवा मिसोसल्फ्यूरॉन + आयोडोसल्फ्यूरॉन - 12+2.4 ग्रा/हे. अथवा सल्फोसल्फ्यूरॉन + मेटसल्फ्यूरॉन 30+2 ग्रा/हे. अथवा कार्फेन्ट्राजोन + सल्फोसल्फ्यूरॉन 20+25 ग्रा/हे. 25-30 दिनों पर।
5. मूँग/उड़द- पेंडीमेथेलीन 1000 ग्रा/हे. 0-3 दिनों के भीतर या पेंडीमेथेलीन + इमेजेथापायर 900 ग्रा/हे. 0-3 दिनों के भीतर। क्लोडिनोफॉप + एसिफ्लोरफेन 245 ग्रा/हे. इमेजेथापायर - 100 ग्रा/हे. अथवा प्रोपाक्वूजाफॉप + इमेजेथापायर 125 ग्रा/हे. अंकुरण के 18-22 दिनों पर।

1. संरक्षित कृषि का मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रभाव

(क) मिट्टी का स्थूल घनत्व - आमतौर पर संरक्षित जुताई प्रणालियों

में पारम्परिक जुताईयों की अपेक्षा मृदा का स्थूल घनत्व अधिक होता है। स्थूल घनत्व से तात्पर्य मृदा का एक निश्चित आयतन में मिट्टी के भार से है। अधिक स्थूल घनत्व होने से मृदा में रन्ध्रावकाश कम हो जाता है जिससे पौधों की जड़ों का विकास कम होता है और परिणामस्वरूप फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परंतु लगातार कई वर्षों तक संरक्षित कृषि के सिद्धांतों

को अपनाने से मृदा के ऊपरी परत पर कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से एक कार्बनिक परत बन जाती है तथा शून्य जुताई की परिस्थिति में पारम्परिक जुताई की तुलना में फसलों की जड़ों द्वारा एक बेहतर चैनल बन जाता है परिणामस्वरूप मृदा में पानी का अंतः स्यंदन बढ़ने के साथ-साथ मृदा का स्थूल घनत्व भी कम होने लगता है (तालिका 4)।

तालिका 4. संरक्षित जुताई प्रणाली का मृदा स्थूल घनत्व पर प्रभाव

जुताई प्रणाली	स्थूल घनत्व (ग्राम/सेमी ³)				
	0-10 सेमी	10-20 सेमी	20-30 सेमी	30-40 सेमी	40-50 सेमी
पारम्परिक जुताई	1.52 ^अ	1.54 ^अ	1.56 ^अ	1.58 ^अ	1.60 ^अ
कम जुताई	1.50 ^अ	1.52 ^अ	1.54 ^अ	1.56 ^अ	1.58 ^अ
शून्य जुताई	1.48 ^अ	1.50 ^अ	1.52 ^अ	1.54 ^अ	1.56 ^अ

स्रोत : परिहार एवं अन्य (2020)

(ख) **मृदा तापमान** - बीजों के जमाव से लेकर पौधों में वृद्धि एवं विकास के लिए अनुकूलतम तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मौसम परिवर्तन की स्थिति में संरक्षित कृषि की महत्ता और भी बढ़ जाती है। मिट्टी की सतह के ऊपर फसलों के अवशेष ताप विनिमय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संरक्षित कृषि प्रणाली में मृदा के ऊपरी सतह का तापमान सुबह के समय पारम्परिक जुताई वाले खेत की तुलना में अधिक होता है एवं दोपहर के समय सतही तापमान कम पाया जाता है जो कि वाष्पीकरण द्वारा मृदा से होने वाली पानी के नुकसान को कम करता है। सर्दियों के मौसम में, जब रात का तापमान काफी कम हो जाता है तो ऐसी परिस्थितियों में संरक्षित जुताई प्रणाली में सतही तापमान अधिक होता है। यह प्रभाव मृदा के ऊपर उपस्थित फसल अवशेषों द्वारा तापमान के प्रवाह को कम करने के कारण होता है।

(ग) **मृदा की जल धारण क्षमता**- मृदा की जल धारण क्षमता का तात्पर्य उस मृदा जल से है जो एक निश्चित मैट्रिक सक्सन पर उपस्थित रहता है। यह गुण मृदा में उपस्थित रन्ध्रों की संख्या, रन्ध्रों के आकार तथा कणों के विशिष्ट सतह क्षेत्र द्वारा निर्धारित होती है। विभिन्न वैज्ञानिक शोध परिणामों में यह पाया गया कि मृदा जुताई की आवृत्ति कम करने से मृदा समुच्चय में वृद्धि के साथ-साथ कुल रन्ध्र विकास में भी वृद्धि होती है। संरक्षित कृषि में मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन में वृद्धि के साथ, सूक्ष्म रन्ध्रों व अंतर समुच्चय रन्ध्रों में वृद्धि से मृदा की जल धारण क्षमता में भी वृद्धि होती है। विभिन्न शोध परिणाम दर्शाते हैं कि मृदा पर फसलों के अवशेषों से मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन के साथ-साथ मृदा जीवों की क्रियाशीलता में भी वृद्धि होती है।

(घ) **मृदा द्रव चालित प्रवाहिता**- यह पानी की उस मात्रा को दर्शाता है जिसमें एक निश्चित आयतन के प्रति इकाई क्षेत्र से एक निश्चित समय में पानी का प्रवाह कितना होता है। संरक्षित कृषि द्वारा मृदा समुच्चय, सूक्ष्म रन्ध्रावकाश तथा सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। मिट्टी में रन्ध्रों की संख्या व आयतन में वृद्धि होने का मृदा द्रव चालित प्रवाहिता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ङ) **अन्तः स्यंदन दर** - अन्तः स्यंदन से तात्पर्य मिट्टी में इकाई क्षेत्रफल में एक इकाई समय में पानी के प्रवेश से है। यह मिट्टी के उपरी सतह की विशेषताओं तथा द्रव चालित प्रवाहिता पर निर्भर करती है। साधारणतया संरक्षित जुताई में अन्तः स्यंदन दर में वृद्धि होती है। पारम्परिक जुताई प्रणाली में मिट्टी की प्राकृतिक समुच्चयों का विच्छेदन होने के साथ-साथ मृदा कार्बनिक कार्बन का भी हास हो जाता है। परिणामस्वरूप मृदा में कुल रन्ध्रों की संख्या में कमी आ जाती है जिससे पानी मिट्टी की ऊपरी सतह से बहकर व्यर्थ चला जाता है। विभिन्न वैज्ञानिक परिणाम यह बताते हैं कि संरक्षित जुताई जैसे शून्य जुताई, कम जुताई में पारम्परिक जुताई की तुलना में अन्तः स्यंदन दर अधिक होता है।

(च) **मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन**- मृदा के भौतिक गुणों के परिपेक्ष्य में बात की जाये तो मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। लंबे समय तक संरक्षित जुताई तकनीक के प्रयोग से मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन की मात्रा में वृद्धि होती है। यह वृद्धि प्रायः संरक्षित जुताई प्रणाली में कम तापमान एवं अधिकतम मृदा जल के प्रभाव के कारण मृदा कार्बन के कम उत्सर्जन द्वारा होती है।

मृदा कार्बन में वृद्धि प्रायः मृदा की उपरी सतह 0-10 सेमी में अधिक पाई जाती है। चूँकि संरक्षित कृषि के सिद्धांतों के अनुसार शून्य जुताई, फसलों के अवशेषों द्वारा मृदा आच्छादन तथा फसल चक्र प्रणाली का समन्वित प्रयोग है। मृदा कार्बन में वृद्धि से मृदा समुच्चय का विकास, जल धारण क्षमता में वृद्धि, आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि तथा मृदा के जैविक जीवन में सकारात्मक प्रभावों के साथ-साथ फसल उत्पादकता में प्रभावी वृद्धि होती है। पारंपरिक जुताई प्रणाली द्वारा मृदा कार्बन व नाइट्रोजन की बहुत हानि होती है। गर्मियों के मौसम में मिट्टी की गहरी जुताई से मृदा कार्बन का कार्बन डाई ऑक्साइड के रूप में

वातावरण में उत्सर्जित होने के साथ-साथ मृदा नत्रजन गैस के रूप में वातावरण में चली जाती है जिससे मृदा उर्वरता धीरे-धीरे कम होने लगती है। जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों के मद्देनजर आज कार्बन उत्सर्जन एक चुनौतीपूर्ण स्थिति है। आज पूरा विश्व संरक्षित कृषि के माध्यम से इसके समाधान की तरफ आशातीत नजरों से देख रहा है। अनेक वैज्ञानिक मतों के अनुसार संरक्षित कृषि तकनीकों के उचित प्रबंधन द्वारा प्रथम एक दशक में मृदा में लगभग 1.8 टन प्रति हेक्टेयर कार्बन डाई ऑक्साइड का स्थिरीकरण किया जा सकता है (तालिका-5)।

तालिका 5. संरक्षित जुताई प्रणाली का मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन के स्तर पर प्रभाव

जुताई प्रणाली	आर्गेनिक कार्बन (ग्राम/किग्रा)		
	0-15 सेमी.	15-30 सेमी.	30-45 सेमी.
पारंपरिक जुताई	5.11 ^ब	4.53 ^ब	3.97 ^अ
कम जुताई	6.18 ^अ	5.24 ^अ	4.11 ^अ
शून्य जुताई	6.05 ^अ	5.32 ^अ	4.20 ^अ

स्रोत : परिहार एवं अन्य (2020)

2. संरक्षित कृषि का मिट्टी के रासायनिक गुणों पर प्रभाव-

पौधों को पोषक तत्वों की उपलब्धता मृदा आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन द्वारा निर्धारित होती है। इसलिए मृदा कार्बन को मृदा उर्वरता की कुन्जी कहा जाता है। मृदा की जुताई, अवशेष प्रबंधन व फसल चक्रों का मृदा में पोषक तत्वों के वितरण, परिवर्तन व उपलब्धता में संरक्षित कृषि का अहम स्थान है।

(क) मृदा पीएच- मृदा अभिक्रिया का अभिप्राय मृदा विलयन की अम्लता, क्षारीयता एवं उदासीनता से है। संरक्षित कृषि प्रणाली में मृदा सतह पर कार्बनिक पदार्थों का विघटन, विभिन्न प्रकार के अम्लीय उर्वरकों का प्रयोग एवं मृदा सूक्ष्म जीवों की सक्रियता से मृदा के ऊपरी परत में निचली परतों की तुलना में हाइड्रोजन आयन्स की सक्रियता बढ़ जाती है जिसके परिणामस्वरूप मृदा का ऊपरी परत अम्लीय हो जाती है।

(ख) उपलब्ध नत्रजन- पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए नत्रजन प्रमुख पोषक तत्व है। मृदा नत्रजन की उपलब्धता मृदा कार्बन पर निर्भर करती है। अर्थात् मृदा में आर्गेनिक/जैविकीय कार्बन की मात्रा अधिक होने से पौधों को नत्रजन की उपलब्धता भी अधिक होती है। साधारणतया यह देखा गया है कि शून्य जुताई प्रणाली में नत्रजन की उपलब्धता कम होती है क्योंकि मृदा के ऊपरी सतह पर फसलों के अवशेषों के कारण नत्रजन खनिजीकरण की अपेक्षा स्थिरीकरण प्रक्रिया अधिक होती है। विभिन्न वैज्ञानिकों का मत यह है कि संरक्षित जुताई में नत्रजन स्थिरीकरण कुछ वर्षों तक होता है तथा यह प्रक्रिया नत्रजन के होने वाले नुकसान को बहुत कम कर

देती है एवं लंबी अवधि में पौधों को उपलब्ध होता है। कुछ वैज्ञानिकों का यह मानना है कि संरक्षित कृषि में ज्यादा नत्रजन स्थिरीकरण मृदा में नत्रजन के स्तर को बढ़ाता है जो लंबे समय के उपरांत नत्रजन उर्वरक की मांग को कम करने के साथ-साथ कार्बनिक खनिज नत्रजन अंश की मात्रा में वृद्धि करता है।

(ग) स्फुर की उपलब्धता- पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए स्फुर, नत्रजन के बाद दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। भारतीय मृदाओं में स्फुर की काफी कमी होने के साथ मृदा में इसकी विलेयता बहुत कम होती है जिससे यह पौधों को कम प्राप्त होता है। अध्ययनों के परिणाम दर्शाते हैं कि पारंपरिक जुताई की तुलना में शून्य जुताई प्रणाली में उपलब्ध स्फुर अधिक पाया जाता है जो कि सम्भवतः कम जुताई का परिणाम हो सकता है जिससे मृदा में स्फुर का स्थिरीकरण कम होता है। मृदा के उपरी परत में इसकी घुलनशीलता अधिक होने से पौधों के विकास के लिए अच्छा है जबकि घुलनशीलता बढ़ने से यह पानी के साथ घुलकर नदी एवं तालाबों को प्रदूषित करता है। इसमाइल एवं अन्य के प्रयोग द्वारा यह बताया गया है कि 20 वर्ष तक संरक्षित जुताई प्रणाली अपनाने से मृदा की उपरी परत (0-5 सेमी.) में 42 प्रतिशत घुलनशील स्फुर पारंपरिक जुताई की तुलना में अधिक पाया गया। लगातार शून्य जुताई प्रणाली अपनाने से मृदा की उपरी सतह पर अन्य जुताइयों की तुलना में स्फुर का नवीनीकरण ज्यादा होता है।

अनेक मृदा वैज्ञानिकों का यह मानना है कि स्फुर उर्वरक को मृदा की सतह पर न देकर उसे गहराई में डालने से पौधों के लिए

उपलब्धता में वृद्धि होने के साथ-साथ उर्वरक हानि से भी बचा जा सकता है। जब मृदा के सतह पर फसलों के अवशेष को छोड़ा जाता है तो ऐसी स्थिति में मृदा नमी ज्यादा रहती है। ऐसा प्रायः नमी वाले क्षेत्रों में अधिक देखा जाता है। इन परिस्थितियों में स्फुर का निचली सतह में प्रतिस्थापन अति आवश्यक हो जाता है।

(घ) **पोटाश की उपलब्धता**- पोटाश, नत्रजन व स्फुर के बाद तीसरा मुख्य पोषक तत्व है। जो फसलों के जीवन चक्र को पूरा करने के लिए अहम स्थान रखता है। संरक्षित खेती विधि से फसलों में पोटाश की उपलब्धता में वृद्धि के साथ-साथ मिट्टी में संचय भी होता है। गोवर्ट एवं अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार संरक्षित जुताई में सतह एवं अधो-सतह में पोटाश की उपलब्धता लगभग 1.5 गुना तक बढ़ जाती है। पारंपरिक जुताई या मृदा की अधिक जुताई से मृदा में पोटाश की उपलब्धता में कमी आती है। अनेक वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणाम यह दर्शाते हैं कि संरक्षित कृषि तकनीकी में पोटेशियम तत्व की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

(ङ) **सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता**- सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों, मानव जीवन एवं पशुओं के लिए बहुत आवश्यक होते हैं। पौधे इनको बहुत कम मात्रा में ग्रहण करते हैं लेकिन ये पौधों एवं जीवों में होने वाले विभिन्न प्रकार के जैव-रासायनिक क्रियाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। साधारणतया यह देखा गया है कि संरक्षित जुताई तकनीक में पारंपरिक जुताइयों की तुलना में सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता अधिक पायी जाती है। यह वृद्धि शायद फसल अवशेषों के विघटन से संभव है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना यह है कि मिट्टी की उपरी सतह पर यह जस्ता की उपलब्धता पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। वैज्ञानिक परिणाम यह दर्शाते हैं कि मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं घुलनशीलता में भी वृद्धि होती है।

3. संरक्षित कृषि एवं मृदा जैव विविधता-

पिछले कुछ दशकों से, कृषि क्षेत्र में निर्धारित उर्वरक, बीज अनुशांसा एवं विभिन्न प्रकार के प्रबंधन विधियों के समुचित प्रयोग के बाद भी उत्पादकता में निरंतर कमी देखी जा रही है। पारंपरिक खेती प्रणाली में इस गिरावट के पीछे असंतुलित उर्वरक प्रयोग, सघन कृषि प्रणाली, सघन जुताई के साथ-साथ मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों में कमी के होने से मृदा स्वास्थ्य भी प्रभावित हो रहा है। मृदा के स्वास्थ्य को स्थिर रखने व फसल उत्पादकता को बनाये रखने के लिए संरक्षित कृषि एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में सामने आया है। मृदा में जैव विविधता बनाये रखने या मृदा सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता बढ़ाने के लिए संरक्षित कृषि तकनीक बड़े स्तर पर किसानों के बीच ले जाने से संभव होगा। मृदा उर्वरता एवं मृदा पारिस्थितिकी तंत्र को सुदृढ़ बनाने व उर्वरता में वृद्धि करने के लिए मृदा जैव विविधता में संतुलन होना महत्वपूर्ण कारक है। उपरोक्त परिस्थितियों से बचने के लिए आज पूरा विश्व टिकाऊ खेती के लिए संरक्षित कृषि तकनीक को अपना रहा है।

फसल अवशेष मृदा के ऊपर आवरण के रूप में रक्षात्मक आवरण बना लेता है जिससे सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता एवं संख्या में काफी वृद्धि होती है। वैज्ञानिक परिणाम यह बताते हैं कि शून्य जुताई प्रणाली में पारंपरिक जुताई की तुलना में 50 प्रतिशत से ज्यादा सूक्ष्म जीवों की संख्या पाई गई। सिमिट के वैज्ञानिकों के परिणाम यह बताते हैं कि मृदा के उपरी सतह पर कार्बनिक पदार्थों के अवशेष बिछाने से सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं उनकी क्रियाशीलता के साथ ही मृदा में जैविक कार्बन व अति उपलब्ध कार्बन की मात्रा में भी वृद्धि होती है।

संरक्षित कृषि में मृदा के उपरी सतह पर निचली परत की तुलना में मृदा जीवों की क्रियाशीलता अधिक होती है। अर्थात् यह गहराई बढ़ने के साथ-साथ इनकी क्रियाशीलता कम हो जाती है। इस प्रणाली में छोटे जीव केंचुआ, चींटियाँ, मोल्स आदि की संख्या में भी वृद्धि होती है। मिट्टी में केंचुओं की संख्या में वृद्धि अच्छे मृदा स्वास्थ्य का सूचक माना जाता है। विभिन्न परिणामों में पाया गया कि संरक्षित कृषि में केंचुओं की संख्या अन्य प्रणालियों की अपेक्षा अधिक होती है। उपरोक्त परिणाम यह बताते हैं कि संरक्षित कृषि मृदा जैव विविधता एवं पर्यावरण के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य को भी बेहतर बनाता है।

संरक्षित कृषि के विशेष लाभ-

1. संरक्षित कृषि में पारंपरिक खेती की तुलना में 25-30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व श्रम की बचत होती है। साधारणतया संरक्षित खेती में प्रति हैक्टेयर प्रति मौसम 5000 रुपये तक की बचत होती है।
2. मृदा के उपर फसल अवशेषों के स्थायी आवरण होने से मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है।
3. मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि से मिट्टी के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है।
4. संरक्षित कृषि प्रणाली में पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधन दोनों का संरक्षण होता है।
5. फसल अवशेषों के उचित प्रबंधन के लिए कृषि यंत्रों के अभाव के कारण किसान अवशेषों को जला देते हैं जिससे वायुमण्डल में जहरीली गैसें जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, सल्फर डाई ऑक्साइड एवं नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। जबकि संरक्षित कृषि प्रणाली को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।
6. मृदा सतह पर फसल अवशेष की परत होने से काफी हद तक खरपतवार के जमाव को नियंत्रित किया जा सकता है।
7. संरक्षित खेती को अपनाकर मृदा क्षरण को काफी हद तक कम किया जा सकता है।
8. संरक्षित खेती करने पर सूक्ष्मजीवों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि होती है।
9. वर्षा आधारित क्षेत्रों में संरक्षित खेती अपनाकर काफी हद तक नमी को संरक्षित किया जा सकता है जो कि सूखा जैसी परिस्थितियों में फसलों के लिए जीवन रक्षक साबित होती है।

10. संरक्षित कृषि में मृदा तापमान पारंपरिक जुताई की तुलना में कम रहता है जिससे नमी बनी रहती है एवं फसलों की जड़ों का विकास उत्तम होता है।

संरक्षित कृषि को अपनाने में प्रमुख बाधाएँ

संरक्षित खेती के कई प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभ होने के बावजूद भी किसानों को संरक्षित खेती की क्षमता एवं संभावित लाभों के बारे में समझाना थोड़ा मुश्किल है। संरक्षित खेती में मुख्य रूप से जीरो टिलेज (शून्य भुपरिष्करण) तकनीकी को अपनाने में किसानों की पुरानी परम्परागत मानसिकता एक बड़ा मुद्दा है। संरक्षित खेती को अपनाने एवं प्रसार में आने वाली प्रमुख बाधाएँ इस प्रकार हैं।

1. प्रशिक्षित एवं कुशल मानव संसाधन की कमी।
2. उपयुक्त एवं कम कीमत वाले कृषि यंत्रों के अभाव में फसल अवशेष की उपस्थिति में बुआई मुख्य समस्या है। क्योंकि हर किसान “हैप्पीसीडर” एवं उसे चलाने के लिए ज्यादा अश्व शक्ति वाले (55 HP) ट्रैक्टर जैसे कृषि मशीनरी खरीदने में सक्षम नहीं है। साथ ही साथ हर जगह यह किराये पर भी समय पर उपलब्ध नहीं है।
3. वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल अवशेषों का पशुओं के चारे एवं ईंधन के रूप में व्यापक उपयोग।
4. बिना जुताई के खरपतवार प्रबंधन एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए महंगे खरपतवारनाशी का प्रयोग थोड़ा मुश्किल है।
5. कृषकों की कृषि के प्रति परम्परागत सोच जो खेत की तैयारी के लिए ज्यादा से ज्यादा जुताई के लिये प्रेरित करती है।
6. स्थानबद्ध कीट-पतंगों की संख्या की घनता।
7. कृषि-प्रबंधन एवं तकनीकी ज्ञान की कमी।
8. संरक्षित कृषि के प्रचार-प्रसार में संबंधित विभागों की उदासीनता।

संरक्षित कृषि के प्रति भविष्य में दृष्टिकोण

संरक्षित खेती कोई रामबाण नहीं है जो परम्परागत खेती से जुड़ी

सभी समस्याओं का समाधान एक झटके में ही कर दे, परंतु निश्चित रूप से संरक्षित खेती एक फसल उत्पादन के लिए एक नया प्रतिमान या पहलू जरूर है जो फसल उत्पादन एवं पर्यावरण की दृष्टि से बहुत लाभदायक साबित हो सकती है यदि इसके तीनों सिद्धांतों को समुचित तौर पर अपनाया जायें। मृदा स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए काफी अनुसंधान हो चुका है, परंतु संरक्षित खेती पर आधारित तकनीकियों के बारे में लम्बी अवधि के अनुसंधान की जरूरत है जिसमें फसल उत्पादकता, पोषक तत्वों एवं खरपतवारों की गतिशीलता का पता लगाया जा सके। न्यूनतम यांत्रिकीय जुताई, फसल अवशेषों का स्थायी आवरण, फसल चक्र विविधिकरण, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन एवं समन्वित खरपतवार प्रबंधन इत्यादि संरक्षित खेती के प्रमुख अवयव हैं। इनके आपसी प्रभाव की जानकारी अभी कम है अतः इस पर अनुसंधान करके इनके आपसी प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने की जरूरत है। क्योंकि इन अवयवों का आपस में सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव भी हो सकता है। भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर विगत 14 वर्षों (वर्ष 2012) से निदेशालय एवं कृषकों के प्रक्षेत्र पर काफी सफल रूप से संरक्षित कृषि के विभिन्न पहलुओं पर शोध एवं प्रसार/प्रदर्शन का कार्य कर रहा है तथा वर्ष 2015 से निदेशालय में CRP on CA प्रोजेक्ट के माध्यम से भी शोध का कार्य सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है जिसका व्यापक प्रचार-प्रसार विभिन्न माध्यमों से समय-समय पर कृषकों, राज्य कृषि विभाग एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों को किया जा रहा है।

निष्कर्ष-

उपरोक्त सभी परिणामों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि संरक्षित खेती, पारम्परिक खेती की तुलना में पूर्णतया भिन्न है। इस प्रणाली में किसानों का समय एवं श्रम की बचत के साथ आर्थिक लाभ अधिक होता है। संरक्षित कृषि में मृदा उर्वरता बनी रहने के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है जो कि फसल उत्पादकता की चाबी है। अतः हम कह सकते हैं कि इस प्रणाली को किसान अपनाकर मृदा उर्वरता को बनाये रखते हुए, पर्यावरण एवं जैव विविधता की अनुकूलतम परिस्थितियों को प्राप्त करने के साथ-साथ आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

किसी भाषा की उन्नति का पता उसमें प्रकाशित हुई पुस्तकों की संख्या तथा उनके विषय के महत्व से जाना जा सकता है।

- गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

सरलता, बोधगम्यता और शैली की दृष्टि से विश्व की भाषाओं में हिन्दी महानतम स्थान रखती है।

- अमरनाथ झा

खरपतवार प्रबंधन में महिला किसानों की भूमिका: वर्तमान और भविष्य

योगिता घरडे¹, पी.के. सिंह¹, प्रमोद कुमार गुप्ता², वी.के. चौधरी¹, सुरभि होता¹ एवं दाउद रजा खान¹

¹भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

²जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

कृषि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। आर्थिक सर्वेक्षण 2024-25 के अनुसार, भारत के कृषि क्षेत्र ने हाल के वर्षों में लगातार विकास बनाए रखा है। इस लगातार बेहतर प्रदर्शन का श्रेय मुख्य रूप से उन विभिन्न उपायों को जाता है जिनका उद्देश्य उत्पादकता बढ़ाना, फसलों में विविधता को बढ़ावा देना और किसानों की आय में सुधार करना है। इसके अलावा, अगर हम कृषि में महिलाओं के योगदान की बात करें तो उन्होंने उत्पादन विकास में ऐतिहासिक रूप से एक अहम भूमिका निभाई है। सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय के पीएलएफएस सर्वेक्षण (2023-24) के आँकड़े बताते हैं कि कृषि ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार का प्राथमिक स्रोत है, इस क्षेत्र में 76.9% ग्रामीण महिलाएँ कार्यरत हैं, जबकि ग्रामीण पुरुषों के मामले में यह आँकड़ा 49.4% है। 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में काम करने वाली कुल महिलाओं में से 65 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं।

खरपतवार, फसलों की पैदावार में आने वाली सबसे गंभीर जैविक

बाधाओं में से एक हैं। खरपतवार, फसलों के साथ धूप, पानी, पोषक तत्वों और स्थान जैसे जरूरी संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। वे कीड़ों और बीमारी फैलाने वाले रोगाणुओं के लिए भी आश्रयस्थल का कार्य करते हैं, जो फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा, खरपतवार प्राकृतिक आवासों को परिवर्तित कर उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं, जिससे वहाँ के मूल पेड़-पौधों और जानवरों की प्रजातियों के लिए खतरा पैदा हो जाता है। परिणामस्वरूप, फसलों की पैदावार में सबसे ज्यादा कमी खरपतवारों की वजह से ही होती है। शोधों से पता चला है कि खरपतवारों के कारण कृषि उत्पादन में होने वाला वार्षिक नुकसान काफी अधिक है। एक अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि इस समस्या के कारण भारत के अठारह राज्यों की दस प्रमुख फसलों में लगभग 11 अरब अमेरिकी डॉलर का वार्षिक आर्थिक नुकसान होता है। अगर हम खरपतवार प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी की बात करें तो वे प्राचीन समय से ही हाथ से निदाई करने और अन्य कृषि कार्यों के माध्यम से खरपतवार प्रबंधन में सक्रिय रूप से शामिल हैं। खरपतवार प्रबंधन के कुछ प्रमुख तरीके नीचे दिए गए हैं:



1. **निवारक उपाय:** खरपतवार नियंत्रण के निवारक उपायों में वे रणनीतियाँ शामिल हैं जिन्हें खरपतवारों के समस्याग्रस्त होने से पहले ही उनके प्रवेश, स्थापित होने और फैलने को रोकने के लिए तैयार किया जाता है। नियंत्रण विधियों के विपरीत, निवारक उपाय भविष्य में होने वाले खरपतवारों के प्रकोप को कम करने और लम्बे समय के प्रबंधन खर्चों को घटाने पर केंद्रित होते हैं। ये विधियाँ सतत कृषि और एकीकृत खरपतवार प्रबंधन प्रणालियों में सहायता करती हैं। महत्वपूर्ण निवारक विधियों में शामिल हैं: स्वच्छ और प्रमाणित रोपण सामग्री का उपयोग; कृषि उपकरणों,

सिंचाई प्रणालियों और परिवहन वाहनों की साफ-सफाई; उचित कम्पोस्टिंग और खाद प्रबंधन; खेत की सीमाओं और किनारों का प्रबंधन; फसल चक्र और प्रतिस्पर्धी फसल प्रणालीय संगरोध और विनियामक उपाय; निगरानी और शीघ्र पहचान आदि।

2. **सस्य विधियाँ:** सस्य खरपतवार नियंत्रण से तात्पर्य उन कृषि पद्धतियों से है जो फसल के वातावरण में बदलाव करके फसल की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाती हैं और खरपतवारों के विकास को रोकती हैं। यांत्रिक या रासायनिक तरीकों के विपरीत, सस्य विधियों का उद्देश्य ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करना होता है जो

खरपतवारों की तुलना में फसल के लिए अधिक अनुकूल हों, जिससे खरपतवारों के जमने, बढ़ने और प्रजनन की प्रक्रिया कम हो जाती है। ये रणनीतियाँ सतत कृषि और एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन विधियों में फसल चक्र; फसल की किस्म का चयन; बुवाई का उचित समय; फसल आवरण और मल्ल; फसल के बीच की दूरी और सघनता; जुताई की पद्धतियाँ; पोषक तत्व और उर्वरक प्रबंधन; जल प्रबंधन; अंतरा-फसलीकरण आदि शामिल हैं।

3. **यांत्रिक विधियाँ:** यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण विधियों में मानवीय श्रम या मशीनों का उपयोग करके खरपतवारों को भौतिक

रूप से हटाना या नष्ट करना शामिल है। ये विधियाँ खरपतवारों को सीधे नुकसान पहुँचाती हैं उन्हें जड़ से उखाड़ देती हैं, उनकी वृद्धि को बाधित करती हैं, या बीजों के उत्पादन को रोकती हैं। यांत्रिक विधियाँ खरपतवार प्रबंधन के सबसे पुराने रूपों में से हैं और ये सतत कृषि तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के अनिवार्य घटकों में से एक हैं, विशेष रूप से कम-इनपुट और जैविक कृषि पद्धतियों में इनमें से कुछ विधियाँ हैं: हाथ से खरपतवार निकालना, कुदाल चलाना, जुताई, यांत्रिक खेती, आग से खरपतवार नष्ट करना और तापीय खरपतवार नियंत्रण आदि।



चित्र 1: यांत्रिक विधि में प्रयुक्त होने वाले छोटे उपकरण

4. **रासायनिक विधियाँ:** खरपतवारों की रासायनिक नियंत्रण विधि में खरपतवारों की आबादी को रोकने, दबाने या कम करने के लिए खरपतवारनाशी रसायनों का उपयोग होता है। आधुनिक कृषि में इन तरीकों को व्यापक रूप से अपनाया जाता है, क्योंकि ये कुशल होते हैं, इनका असर तेजी से होता है, और ये बड़े पैमाने पर की जाने वाली खेती के लिए उपयुक्त होते हैं। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन में रासायनिक नियंत्रण की अहम भूमिका होती है-विशेष रूप से उन स्थितियों में, जहाँ मजदूरों की कमी, खेतों का बड़ा आकार, या खरपतवारों का अत्यधिक प्रकोप होने के कारण अन्य तरीके कम व्यावहारिक होते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए रासायनिक तरीकों का उपयोग करने के अनेक लाभ हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

- खरपतवारों का तेजी से और प्रभावी ढंग से नियंत्रण
- बड़े पैमाने पर खेती के लिए किफायती
- श्रम की आवश्यकता को कम करता है
- बारहमासी और नियंत्रित करने में कठिन खरपतवारों के विरुद्ध प्रभावी
- संरक्षण और जीरो-टिलेज प्रणालियों के लिये उपयुक्त।

हालाँकि, खरपतवारनाशी रसायनों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई, जैसे:

- खरपतवारनाशी प्रतिरोधी खरपतवार प्रजातियों का विकास

- पर्यावरणीय संदूषण (मृदा और जल प्रदूषण)
 - अनुचित रख-रखाव के कारण संभावित स्वास्थ्य जोखिम
 - मृदा में खरपतवारनाशी अवशेषों का बने रहना
 - गैर-लक्षित जीवों पर नकारात्मक प्रभाव।
5. **जैविक विधियाँ:** जैविक खरपतवार नियंत्रण में खरपतवारों को नष्ट करने, कम करने या नियंत्रित करने के लिए जीवों का उपयोग शामिल होता है। इन जीवों में कीड़े, रोगजनक या प्रतिस्पर्धी पौधे शामिल हो सकते हैं, जो स्वाभाविक रूप से खरपतवारों के विकास को सीमित करते हैं। जैविक नियंत्रण, एकीकृत खरपतवार प्रबंधन का एक पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ उपाय है, विशेष रूप से आक्रामक और बारहमासी खरपतवारों के प्रबंधन के लिए। अन्य तरीकों की तुलना में जैविक खरपतवार नियंत्रण के कई फायदे हैं। इनमें शामिल हैं:

- पर्यावरण के लिए सुरक्षित और टिकाऊ
- रासायनिक खरपतवारनाशी पर निर्भरता कम करता है।
- दीर्घकालिक और स्वतः जारी रहने वाला नियंत्रण तरीका
- समय के साथ लागत-प्रभावी
- मिट्टी और जल प्रदूषण न्यूनतम

हालाँकि, इन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि:-

- रासायनिक नियंत्रण की तुलना में धीमी गति से काम करता है।

- इसकी प्रभावशीलता पर्यावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित होती है
- यदि ठीक से परीक्षण न किया जाए, तो गैर-लक्षित प्रभावों का जोखिम रहता है।
- इसके लिए व्यापक अनुसंधान और निगरानी की आवश्यकता होती है।
- खरपतवारों के तत्काल नियंत्रण के लिए उपयुक्त नहीं है।



चित्र 3. फसलीय एवं गैर-फसलीय क्षेत्रों में जैविक विधि से खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी

प्राचीन समय से ही हमारे देश में महिलाएँ फसल उत्पादन में काफी योगदान देती आ रही हैं। वे अक्सर बुवाई, रोपाई, निराई, कटाई और कटाई के बाद के कार्यों में शामिल होती हैं। इन कार्यों में, निराई एक महत्वपूर्ण और बार-बार किया जाने वाला कार्य है, और यह सबसे अधिक

श्रम-साध्य और समय लेने वाले कार्यों में से एक है। इस प्रकार, प्राचीन काल से ही, खेती करने वाली महिलाएँ खेत के अधिकांश कार्यों में सक्रिय रूप से शामिल रही हैं, जिसमें हाथों से निराई और अंतर-फसलीय पद्धतियों के माध्यम से खरपतवार प्रबंधन भी शामिल है।





चित्र 2. कृषि के विभिन्न कार्यों में महिलाओं का योगदान

विभिन्न समय अंतराल में खरपतवार प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी पर नीचे चर्चा की गई है:

प्रारंभिक ऋषि युग

खेती की शुरुआत लगभग 10,000-12,000 साल पहले नवपाषाण काल के दौरान हुई थी। शोध से मिले साक्ष्यों से पता चलता है कि फसलों को उगाने की शुरुआती प्रक्रिया में महिलाओं ने शायद अहम भूमिका निभाई थी, खासकर उन समुदायों में जो अपनी गुजर-बसर के लिए खेती पर निर्भर थे। जैसे-जैसे इंसानी समाज शिकार और भोजन इकट्ठा करने से हटकर एक जगह टिककर खेती करने की ओर बढ़ा, उगाई गई फसलों को पोषक तत्वों, पानी, रोशनी और जगह के लिए होने वाली प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए खरपतवारों को नियंत्रित करना और भी ज्यादा जरूरी हो गया।

प्राचीन समय में, खेती के औजार बहुत ही साधारण होते थे और उनमें काफी शारीरिक मेहनत लगती थी। खरपतवार नियंत्रण सरल और श्रम-साध्य तरीकों से किया जाता था, जैसे कि अवांछित पौधों को हाथ से उखाड़ना, खुदाई करने वाली छड़ियों या लकड़ी के कुदाल का उपयोग करना, आदिम औजारों से मिट्टी की हल्की जुताई करना, और चावल उगाने वाले शुरुआती क्षेत्रों में, खरपतवारों की बढ़त को रोकने के लिए खेतों में पानी भर देना।

एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के कई पारंपरिक समाजों में, घरों के आस-पास उगाई जाने वाली खाद्य फसलों की देखभाल की मुख्य जिम्मेदारी महिलाओं की होती थी। इन फसलों को अच्छी तरह से विकसित होने और संतोषजनक पैदावार सुनिश्चित करने के लिए, पूरे फसल-काल के दौरान कड़ी निगरानी और बार-बार खरपतवार हटाने की जरूरत पड़ती थी।

पारंपरिक खेती के तरीकों में, काम के बँटवारे में अक्सर लिंग-आधारित भूमिकाएँ साफ तौर पर दिखाई देती थीं। आम तौर पर, पुरुष ऐसे काम संभालते थे जिनमें काफी शारीरिक ताकत की जरूरत होती थी-जैसे कि खेतों की सफाई करना, जमीन जोतना और सिंचाई के इंतजाम

करना। दूसरी तरफ, महिलाएँ अक्सर ऐसे काम करती थीं जो काफी मेहनत वाले होने के साथ-साथ बार-बार दोहराए जाने वाले भी होते थे-जैसे कि बीज साफ करना, रोपा लगाना और खरपतवार निकालना।

धीरे-धीरे खरपतवार निकालना महिलाओं का काम माना जाने लगा, क्योंकि इसमें बारीकी से ध्यान देने, सटीकता और लगातार निगरानी की जरूरत होती थी। छोटे स्तर की खेती में-खासकर वर्षा-आधारित प्रणालियों में-सही समय पर खरपतवार हटाना बहुत जरूरी था, क्योंकि इसमें देरी होने से फसल की पैदावार काफी कम हो सकती थी।

महिलाओं ने खरपतवार की विभिन्न प्रजातियों के बारे में भी व्यापक पारंपरिक ज्ञान विकसित किया। वे यह पहचान करने में सक्षम थीं कि कौन से पौधे हानिकारक हैं और कौन से लाभदायक, जिनसे उन्हें पौधों के औषधीय महत्व, उनका पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग, खाने योग्य पत्तियाँ या बीज आदि के विषय में प्रचुर ज्ञान था। इसके बावजूद, इस विशेषज्ञता को शायद ही कभी औपचारिक रूप से दर्ज किया गया, और यह मुख्य रूप से स्थानीय समुदायों के भीतर मौखिक परंपराओं के माध्यम से ही संरक्षित रही।

हरित क्रांति के दौरान तकनीकी बदलाव

1960 के दशक की शुरुआत, जिसे अक्सर 'हरित क्रांति' के नाम से जाना जाता है, अपने साथ गेहूँ और चावल की बेहतर तथा अधिक पैदावार देने वाली किस्में लेकर आया। इसके साथ ही, रासायनिक उर्वरकों का अधिक उपयोग, सिंचाई प्रणालियों का विस्तार, कृषि मशीनरी और खरपतवारनाशी रसायनों का इस्तेमाल भी बढ़ा। इन सभी कारणों ने मिलकर कृषि क्षेत्रों में खरपतवारों को नियंत्रित करने के तरीके में भारी बदलाव ला दिया। इस दौरान, भारत जैसे विकासशील देशों में

- जमीन के मालिकाना हक और पूंजी निवेश पर पुरुषों का नियंत्रण था।
- विस्तार सेवाओं तक पहुंच पर पुरुषों का वर्चस्व था।
- वित्तीय निर्णयों पर महिलाओं का नियंत्रण सीमित था।

हालांकि, खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी के बढ़ते इस्तेमाल ने खरपतवार प्रबंधन के तरीकों को बदल दिया है। अब छिड़काव

का काम मुख्य रूप से पुरुष करते हैं, जिससे खरपतवार प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी कम हो गई है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन और महिलाओं की भूमिका

जैसे-जैसे खरपतवारनाशी दवाओं पर निर्भरता बढ़ी, खरपतवार प्रबंधन के कामों में महिला किसानों की भागीदारी धीरे-धीरे कम हो गई। हालाँकि, हाल ही में टिकाऊ और एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के तरीकों की ओर एक बड़ा बदलाव आया है, जिसमें यांत्रिक, सस्य, जैविक और तकनीकी तरीकों का प्रयोग शामिल है। यह बदलाव एक बार फिर खरपतवार प्रबंधन के कामों में महिलाओं की ज्यादा भागीदारी के लिए संभावनाएं बना रहा है। महिलाओं का पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के सिद्धांतों से काफी मेल खाता है। इंटरक्रॉपिंग, मल्लिचंग और फसल विविधीकरण में उनका अनुभव पारिस्थितिक तरीके से खरपतवार को रोकने में मदद करता है।

खाद्य और कृषि संगठन जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठन, उत्पादकता और स्थिरता को बढ़ाने के लिए जेंडर-रिस्पॉन्सिव (लिंग-संवेदनशील) कृषि विकास पर जोर देते हैं। इसी तरह, इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट उन कार्यक्रमों का समर्थन करता है जिनका उद्देश्य प्रशिक्षण, वित्तीय समावेशन और तकनीक तक पहुँच के जरिए ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना है।



महिलाओं के अनुकूल औजारों और मशीनों, जैसे हल्के वीडर और आसानी से इस्तेमाल होने वाले उपकरणों के विकास ने निंदाई में लगने वाली मेहनत काफी कम की है और काम करने की क्षमता बढ़ाई है, जिससे महिलाएँ खरपतवार नियंत्रण के काम ज्यादा बेहतर ढंग से कर पा रही हैं।

इसके अलावा, सटीक खेती की तकनीकों-जैसे आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस वाली मशीनरी, ड्रोन, रोबोटिक्स और सेंसर-आधारित खरपतवार पहचान सिस्टम के आने से महिला किसानों के लिए तकनीक-आधारित खेती में शामिल होने के नए अवसर पैदा हुए हैं। केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारी पहलें ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने और उनकी क्षमता बढ़ाने पर ज्यादा जोर दे रही हैं। “ड्रोन दीदी” जैसी पहलों का उद्देश्य महिलाओं को फसल की निगरानी और सटीक खरपतवार प्रबंधन के लिए ड्रोन चलाने का प्रशिक्षण देना है, जिससे खेती में उनकी तकनीकी कुशलता और नेतृत्व की भूमिका बेहतर हो सके।



चित्र 5. खरपतवार प्रबंधन के क्षेत्र में शामिल नवीन तकनीकियाँ

इस संदर्भ में, भारत में खरपतवार प्रबंधन का भविष्य टिकाऊ तरीकों और आधुनिक तकनीकों से तय होने की संभावना है, जिसमें महिला किसान मुख्य भूमिका निभाएंगी। महिलाओं की प्रशिक्षण, उपकरणों और

संस्थागत सहायता तक पहुँच को मजबूत करने से न केवल खरपतवार प्रबंधन की दक्षता बेहतर होगी, बल्कि इससे लैंगिक समानता, पर्यावरणीय स्थिरता और मजबूत कृषि प्रणालियों को भी बढ़ावा मिलेगा।



हिन्दी हमारे देश और भाषा की प्रभावशाली विरासत है।

- माखनलाल चतुर्वेदी

गेहूँ में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार: उभरती समस्याएँ और प्रबंधन रणनीतियाँ

जीतेन्द्र कुमार सोनी¹, सुरभि होता¹ एवं अमरजीत²

¹भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

²क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, बावल (हरियाणा)

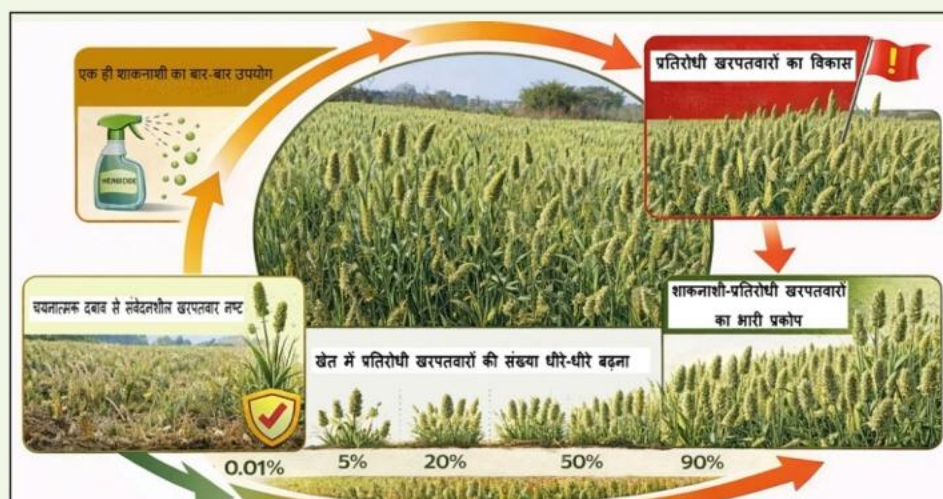
परिचय

गेहूँ विश्व की प्रमुख अनाज फसलों में से एक है और मुख्य खाद्य स्रोत है। भारत में भी इसका खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 2024-25 में लगभग 32.8 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की गई है। गेहूँ की उत्पादकता पर कई जैविक और अजैविक कारकों का प्रभाव पड़ता है, जिनमें खरपतवार एक प्रमुख जैविक समस्या है। खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, नमी, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे गेहूँ की उपज में लगभग 15-40 प्रतिशत तक हानि हो सकती है, और अधिक प्रकोप की स्थिति में यह 50 प्रतिशत से अधिक भी हो सकती है। पारंपरिक रूप से खरपतवार नियंत्रण के लिए हाथ से निराई-गुड़ाई तथा कृषि पद्धतियों का उपयोग किया जाता था, लेकिन ये तरीके श्रमसाध्य और कुछ घास कुल के खरपतवारों के लिए कम प्रभावी होते हैं। इसलिए पिछले चार दशकों में शाकनाशियों का उपयोग अधिक बढ़ गया है क्योंकि ये तेज, प्रभावी और किफायती नियंत्रण प्रदान करते हैं। हालाँकि समान क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों के लगातार उपयोग से कई खरपतवारों में शाकनाशी प्रतिरोध विकसित हो गया है, जो

विशेष रूप से भारत के इंडो-गंगीय मैदानों की धान-गेहूँ फसल प्रणाली में गेहूँ उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती बनता जा रहा है।

शाकनाशी प्रतिरोध : अवधारणा और तंत्र

शाकनाशी प्रतिरोध से तात्पर्य खरपतवारों की उस वंशानुगत क्षमता से है, जिसके कारण वे शाकनाशी की उस मात्रा को सहन कर लेते हैं जो सामान्यतः खरपतवारों की साधारण आबादी को नष्ट कर देती है। सरल शब्दों में, शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार वे होते हैं जिनका नियंत्रण उन शाकनाशियों से नहीं हो पाता जो पहले प्रभावी हुआ करते थे। प्रतिरोध का विकास मुख्यतः एक ही प्रकार की क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों के लगातार और बार-बार उपयोग के कारण होता है। जब कई वर्षों तक एक ही शाकनाशी का बार-बार प्रयोग किया जाता है, तो संवेदनशील पौधे नष्ट हो जाते हैं, जबकि प्राकृतिक रूप से मौजूद कुछ प्रतिरोधी पौधे जीवित रह जाते हैं। ये जीवित पौधे आगे बीज उत्पन्न करते हैं और प्रतिरोध का गुण अपनी अगली पीढ़ी में स्थानांतरित कर देते हैं। परिणामस्वरूप समय के साथ खेतों में प्रतिरोधी खरपतवारों की संख्या बढ़ती जाती है और वे प्रमुख रूप से फैलने लगते हैं।



चित्र 1: चयन दबाव के कारण शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार का विकास

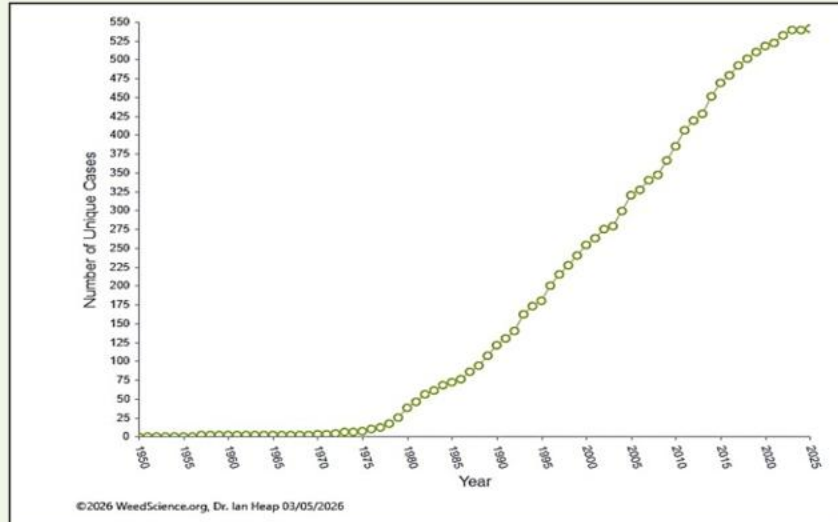
शाकनाशी प्रतिरोध के तंत्र

शाकनाशी प्रतिरोध कई प्रकार की शारीरिक तथा जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित हो सकता है। सबसे सामान्य तंत्रों में से एक लक्ष्य-स्थल प्रतिरोध है, जिसमें उस एंजाइम में परिवर्तन या

उत्परिवर्तन हो जाता है जिस पर शाकनाशी प्रभाव डालता है। इस परिवर्तन के कारण शाकनाशी एंजाइम से सही प्रकार से जुड़ नहीं पाता और उसका प्रभाव कम हो जाता है। दूसरा महत्वपूर्ण तंत्र, उन्नत चयापचयी अपघटन है, जिसमें प्रतिरोधी खरपतवार शाकनाशी को उसके लक्ष्य-स्थल तक पहुँचने

से पहले ही तोड़ देते हैं या निष्क्रिय कर देते हैं। कुछ खरपतवारों में शाकनाशी का अवशोषण कम होना या पौधे के भीतर उसका संचरण सीमित होना भी देखा जाता है, जिससे शाकनाशी पूरे पौधे में नहीं फैल पाता। कुछ स्थितियों में शाकनाशी पौधे के ऊतकों में ऐसे स्थानों पर एकत्र हो जाता है जहाँ वह अपने लक्ष्य-स्थल तक नहीं पहुँच पाता। वर्तमान में

विश्व स्तर पर शाकनाशी प्रतिरोध के 541 विशिष्ट उदाहरण (प्रजातिष्ट क्रिया-स्थल) दर्ज किए जा चुके हैं, जिनमें कुल 273 प्रजातियाँ शामिल हैं। शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों की सूचना 75 देशों में 102 फसलों में प्राप्त हुई है।



चित्र 2: समय के साथ विश्वभर में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार मामलों में वृद्धि

गेहूँ में प्रमुख शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार: गेहूँ की कृषि प्रणाली में कई खरपतवार प्रजातियों ने सामान्य रूप से उपयोग किए जाने वाले शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोध विकसित कर लिया है। गेहूँ में प्रमुख शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों में *फैलारिस माइनर* (गुल्ली डंडा), *एविना लुडोविसियाना* (जंगली जई), *रुमेक्स डेन्टेटस* (जंगली पालक), *पोलीपोगोन मोनस्पेलिएन्सिस* (पोलीपोगोन घास) तथा *चिनोपोडियम एल्बम* (बथुआ) प्रमुख हैं। इनमें से *फैलारिस माइनर* उत्तर-पश्चिमी

भारत के गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों में सबसे अधिक समस्या पैदा करने वाला खरपतवार माना जाता है। *फैलारिस माइनर* की समस्या इसलिए भी अधिक गंभीर है क्योंकि इसकी प्रारम्भिक वृद्धि अवस्था में इसकी आकृति गेहूँ के पौधों से बहुत मिलती-जुलती होती है, जिससे इसे हाथ से निकालना कठिन हो जाता है। यह खरपतवार अत्यधिक प्रतिस्पर्धी होता है और यदि इसकी संख्या अधिक हो तो यह गेहूँ की उपज को काफी कम कर सकता है।



चित्र 3: गेहूँ के खेत में शाकनाशी-प्रतिरोधी *फैलारिस माइनर* का प्रकोप

भारत में गेहूँ में शाकनाशी प्रतिरोध का इतिहास: भारत में गेहूँ में शाकनाशी प्रतिरोध की समस्या की शुरुआत आइसोप्रोट्यूरोन-प्रतिरोधी *फैलारिस माइनर* के विकास से हुई। आइसोप्रोट्यूरोन शाकनाशी का उपयोग 1970 के दशक के अंत में शुरू हुआ और इसकी प्रभावशीलता के कारण किसान लगभग दो दशकों तक मुख्य रूप से इसी पर निर्भर रहे। 1990 के दशक की शुरुआत में हरियाणा में *फैलारिस माइनर* में आइसोप्रोट्यूरोन के प्रति प्रतिरोध का पहला मामला सामने आया। एक ही शाकनाशी का लगातार उपयोग, गलत छिड़काव विधियाँ और कम मात्रा का प्रयोग प्रतिरोध के विकास के प्रमुख कारण बने। इस समस्या से निपटने के लिए बाद में क्लोडिनाफॉप, सल्फोसल्फ्यूरोन, ट्रांक्लोक्सीडिम और फेनोक्साप्रॉप जैसे वैकल्पिक शाकनाशी अपनाए गए। प्रारंभ में ये प्रभावी रहे, लेकिन समय के साथ इनके बार-बार उपयोग से इनके प्रति भी प्रतिरोध विकसित होने लगा।

शाकनाशी प्रतिरोध की वर्तमान स्थिति: वर्तमान में भारत के कई क्षेत्रों, विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की धान-गेहूँ फसल प्रणाली में गेहूँ में शाकनाशी प्रतिरोध की समस्या व्यापक हो चुकी है। इंडो-गंगा के मैदानों में लाखों हेक्टेयर क्षेत्र में गुल्ली डंडा का प्रकोप देखा जा रहा है। इस खरपतवार की मध्यम संख्या भी गेहूँ की उपज में उल्लेखनीय कमी ला सकती है, जबकि अधिक प्रकोप की स्थिति में फसल को गंभीर नुकसान हो सकता है। इसके साथ ही शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों के कारण खेती की लागत भी बढ़ जाती है, क्योंकि प्रभावी नियंत्रण के लिए किसानों को अधिक या कई प्रकार के शाकनाशियों का उपयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त गेहूँ में कुछ अन्य खरपतवारों जैसे जंगली जई, जंगली पालक, पॉलीपोगोन घास तथा बथुआ में भी विभिन्न शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोध की घटनाएँ दर्ज की गई हैं।



गुल्ली डंडा



जंगली जई



जंगली पालक



बथुआ

चित्र 4: शाकनाशी-प्रतिरोध विकसित कर चुके प्रमुख खरपतवार

शाकनाशी प्रतिरोध के कारण और प्रभाव: गेहूँ की कृषि प्रणाली में शाकनाशी प्रतिरोध के विकास के कई प्रमुख कारण हैं। इनमें एक ही क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों का लंबे समय तक लगातार उपयोग, फसल चक्र का अभाव तथा धान-गेहूँ प्रणाली में लगातार खेती प्रमुख हैं। इसके अलावा शाकनाशी का गलत उपयोग जैसे देर से छिड़काव, अनुशंसित मात्रा से कम मात्रा का प्रयोग तथा केवल रासायनिक नियंत्रण पर अत्यधिक निर्भरता भी प्रतिरोधी खरपतवारों के विकास को बढ़ावा देती है। शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार फसल की उपज और लाभ को कम करते हैं तथा खेती की लागत बढ़ा देते हैं। कई बार अधिक मात्रा में शाकनाशी उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण और स्वास्थ्य संबंधी जोखिम भी बढ़ सकते हैं। इसलिए शाकनाशी प्रतिरोध कृषि की दीर्घकालीन स्थिरता के लिए एक गंभीर चुनौती है और इसके नियंत्रण के लिए समेकित खरपतवार प्रबंधन रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है।

गेहूँ में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों का प्रबंधन

उपयुक्त शाकनाशियों का उपयोग: गेहूँ की फसल में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों के प्रबंधन के लिए उपयुक्त शाकनाशियों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। गेहूँ के खेतों में घास कुल तथा चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए विभिन्न चयनात्मक शाकनाशी उपलब्ध हैं। इन शाकनाशियों का प्रयोग अनुशंसित मात्रा तथा उचित समय पर करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण संभव होता है तथा प्रतिरोध के विकास को भी कम किया जा सकता है। गेहूँ की फसल में विभिन्न प्रकार के खरपतवारों के नियंत्रण के लिए अनुशंसित चयनात्मक शाकनाशियों का विवरण तालिका में दिया गया है।

तालिका 1: गोहूँ के खेत में खरपतवार नियंत्रण हेतु अनुशंसित शाकनाशी

शाकनाशी	मात्रा (ग्राम सक्रिय घटक प्रति हे.)	प्रयोग का समय
घास कुल के खरपतवारों के लिए		
क्लोडिनाफॉप	60	25-30 दिन बाद
पिनाक्सडेन	40-50	25-30 दिन बाद
फेनाक्सप्रॉप	100-120	25-30 दिन बाद
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिए		
2,4 डी	400-600	30-35 दिन बाद
मेटसल्फ्यूरॉन	4	25-30 दिन बाद
मेटसल्फ्यूरॉन+कारफेंट्राजोन	4+20	30-35 दिन बाद
कारफेंट्राजोन	20	25-30 दिन बाद
घास कुल तथा चौड़ी पत्ती दोनों प्रकार के खरपतवारों के लिए		
आइसोप्रोटूरॉन	750-1000	20-30 दिन बाद
मेट्रिब्यूजिन	175-210	30-35 दिन बाद
पेंडिमेथालिन	1000	बुवाई के 0-3 दिन के भीतर
सल्फोसल्फ्यूरॉन	25	25-30 दिन बाद
सल्फोसल्फ्यूरॉन+मेटसल्फ्यूरॉन	30+2	25-30 दिन बाद
मेसोसल्फ्यूरॉन+आयोडोसल्फ्यूरॉन	12+2.4	25-30 दिन बाद
क्लोडिनाफॉप+मेटसल्फ्यूरॉन	60+4	30-35 दिन बाद
क्लोडिनाफॉप+मेट्रिब्यूजिन	60+105	25-35 दिन बाद
क्लोडिनाफॉप+मेट्रिब्यूजिन	60+210	30-35 दिन बाद
मेट्रिब्यूजिन+फेनाक्सप्रॉप	100+175	30-35 दिन बाद
पायरोक्सासल्फोन	125-150	बुवाई के 0-3 के भीतर
एक्लोनिफेन+डिफ्लुफेनिकेन +फ्लुफेनासेट	738+123+82	बुवाई के 0-3 के भीतर
पयरोक्सासल्फोन+फ्लुमिऑक्साजिन	625+125 से 750+150	25-35 दिन बाद

शाकनाशी परिवर्तन तथा मिश्रण: एक ही शाकनाशी अथवा समान क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों का लगातार उपयोग करने से फैंलेरिस माइनर जैसे खरपतवारों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए आवश्यक है कि विभिन्न क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों का वर्ष-दर-वर्ष परिवर्तन करके उपयोग किया जाए। शाकनाशियों के टैंक-मिश्रण या तैयार मिश्रण (रेडी-मिक्स) का प्रयोग करने से मिश्रित खरपतवार समूह का अधिक प्रभावी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, उगने से पहले उपयोग किए जाने वाले शाकनाशियों के बाद उगने के बाद प्रयोग किए जाने वाले शाकनाशियों का उपयोग करने से खरपतवार नियंत्रण बेहतर होता है तथा खरपतवारों पर चयन दबाव भी कम हो जाता है।

एलीलोपैथिक फसलें और पौधों के अर्क: कुछ फसलें प्राकृतिक रसायन छोड़ती हैं जिन्हें एलीलोकेमिकल्स कहा जाता है। ये रसायन खरपतवारों के अंकुरण और वृद्धि को दबा सकते हैं। ज्वार, सूरजमुखी,

धान और मक्का जैसी फसलों के बारे में बताया गया है कि ये गोहूँ के खेतों में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों की संख्या को कम कर सकती हैं। इन फसलों के अवशेष, मलच या इनके पौधों के अर्क का उपयोग करने से खरपतवारों की वृद्धि कम होती है और खेत में खरपतवार का दबाव घटता है।

तापीय (थर्मल) खरपतवार प्रबंधन: तापीय विधियों में गर्मी का उपयोग करके खरपतवारों को नियंत्रित किया जाता है। कुछ परिस्थितियों में यह विधि उपयोगी होती है। फ्लेम वीडिंग, मृदा सौर्यकरण, गर्म पानी या भाप उपचार तथा माइक्रोवेव ऊर्जा जैसी तकनीकें खरपतवार के ऊतकों को नुकसान पहुँचाकर उनके बीजों की जीवित रहने की क्षमता को कम कर देती हैं। गर्मियों के महीनों में किया गया मृदा सौर्यकरण मिट्टी में मौजूद समस्या पैदा करने वाले खरपतवारों के बीज भंडार को प्रभावी रूप से कम कर सकता है।

सूक्ष्मजीव आधारित शाकनाशी: सूक्ष्मजीवों के माध्यम से जैविक नियंत्रण, शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों के प्रबंधन का एक प्रभावी और संभावनापूर्ण तरीका माना जाता है। कुछ जीवाणु (बैक्टीरिया) और कवक (फफूंद) ऐसे जैविक पदार्थ उत्पन्न करते हैं जो खरपतवारों के बीजों के अंकुरण तथा उनकी वृद्धि को रोकते हैं। बैसिलस, स्यूडोमोनास तथा ड्रेक्सलेरा प्रजाति के सूक्ष्मजीवों में खरपतवारों के विरुद्ध शाकनाशी जैसा प्रभाव पाया गया है। ये सूक्ष्मजीव प्राकृतिक और पर्यावरण के लिए सुरक्षित माने जाते हैं। इसलिए भविष्य में ये खरपतवार प्रबंधन के लिए एक उपयोगी जैविक साधन बन सकते हैं।

आणविक और जैव प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण: जैव प्रौद्योगिकी में हाल की प्रगति ने खरपतवार प्रबंधन के नए अवसर खोले हैं। शाकनाशी-सहिष्णु गेहूँ की किस्मों का विकास और खरपतवारों में शाकनाशी प्रतिरोध के आनुवंशिक तंत्र को समझना बेहतर प्रबंधन रणनीतियाँ बनाने में मदद कर सकता है। आधुनिक जीन संपादन तकनीकें भी फसलों की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने और लंबे समय में खरपतवार समस्या को कम करने में सहायक हो सकती हैं।

कृषि एवं सस्य विधियाँ: उचित कृषि पद्धतियों को अपनाकर गेहूँ में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों का प्रबंधन काफी हद तक किया जा सकता है। किसानों को साफ और प्रमाणित बीजों का उपयोग करना चाहिए, कृषि यंत्रों को साफ रखना चाहिए और खरपतवारों के फैलाव को रोकने के लिए फसल चक्र अपनाना चाहिए। समय पर गेहूँ की बुवाई, अधिक बीज दर, कम पंक्ति दूरी तथा प्रतिस्पर्धी किस्मों का उपयोग खरपतवारों की वृद्धि को दबा सकता है। इसके अलावा फसल अवशेष प्रबंधन, मल्लिचंग, स्टेल् सीडबेड तकनीक तथा बीज बनने से पहले समय पर हाथ से निराई-गुड़ाई करने से मिट्टी में खरपतवार बीज भंडार को कम करने में मदद मिलती है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन: गेहूँ में शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों के प्रभावी और टिकाऊ प्रबंधन के लिए एकीकृत दृष्टिकोण आवश्यक है। निवारक, सस्य, यांत्रिक, जैविक और रासायनिक विधियों के संयोजन से खरपतवारों का प्रकोप कम किया जा सकता है और प्रतिरोध के विकास को धीमा किया जा सकता है। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाने से बेहतर खरपतवार नियंत्रण, अधिक गेहूँ उत्पादन और दीर्घकालीन टिकाऊ गेहूँ आधारित फसल प्रणाली सुनिश्चित होती है।

भविष्य की संभावनाएँ: भविष्य में टिकाऊ खरपतवार प्रबंधन के लिए उन्नत तकनीकों और नई रणनीतियों का उपयोग आवश्यक होगा। रिमोट सेंसिंग और ड्रोन जैसी प्रिंसीपल एग्रीकल्चर तकनीकें खरपतवारों की प्रारंभिक पहचान और स्थान-विशिष्ट शाकनाशी उपयोग में सहायक हो सकती हैं। इसके साथ ही प्रतिस्पर्धी तथा शाकनाशी-सहिष्णु फसल किस्मों का विकास और किसानों में सही शाकनाशी उपयोग तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के प्रति जागरूकता बढ़ाना प्रतिरोध के प्रसार को रोकने के लिए महत्वपूर्ण होगा।

निष्कर्ष: शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार आधुनिक कृषि में गेहूँ उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती बन गए हैं। इंडो-गंगा के मैदानी क्षेत्र में फैलेरिस माइनर के प्रतिरोधी रूपों की व्यापक उपस्थिति यह दर्शाती है कि रासायनिक खरपतवार नियंत्रण पर अत्यधिक निर्भरता जोखिमपूर्ण हो सकती है। इन खरपतवारों के टिकाऊ और प्रभावी प्रबंधन के लिए एक समग्र (समेकित) दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें सस्य, यांत्रिक तथा रासायनिक विधियों का संयोजन शामिल हो। विभिन्न क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों का क्रमिक उपयोग (रोटेशन), उन्नत कृषि पद्धतियों को अपनाना तथा समेकित खरपतवार प्रबंधन का उपयोग प्रतिरोध के विकास को धीमा करने और भविष्य में गेहूँ के टिकाऊ उत्पादन को सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होगा।



**है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी।
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।**

- मैथिलीशरण गुप्त

**कैसे निज सोए भाग को कोई सकता है जगा,
जो निज भाषा-अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा।**

- हरिऔध

तनाव-सहिष्णु खरपतवार: अत्यधिक अनुकूलन की शारीरिक क्रियाविधि

चंद्रकांत सिंह, दसारी श्रीकांत, मनोज कुमार यादव एवं एस. आई. कुवरदादरा

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

वैश्विक जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, तापमान में निरंतर वृद्धि, मृदा लवणीयता का विस्तार तथा औद्योगिक प्रदूषण के कारण कृषि पारितंत्र तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। इस परिदृश्य में जहाँ उच्च उत्पादक किस्में अधिकतर अनुकूल परिस्थितियों के लिए विकसित की गई थीं, वहीं वर्तमान प्रतिकूल पर्यावरणीय दशाओं में उनकी संवेदनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी है। इसके विपरीत, अनेक खरपतवार प्रजातियाँ – जिन्हें पारंपरिक रूप से केवल प्रतिस्पर्धी या अवांछनीय पौधे माना जाता था अत्यधिक अनुकूलन क्षमता प्रदर्शित कर रही हैं। उदाहरणस्वरूप, जंगली चौलाई (*अमरान्थस स्पिनोसस*); सांवा (*ईकनोक्लोआ कोलोना*); गाजर घास (*पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस*); नागरमोथा (*साइपरस रोटंडस*) तथा जंगली ज्वार (*सोरगम हेलेपेंस*) जैसी

प्रजातियाँ बहु-आयामी तनावों में भी न केवल जीवित रहती हैं, बल्कि तीव्र वृद्धि एवं उच्च बीज उत्पादन के माध्यम से कृषि पारितंत्र में प्रभुत्व स्थापित कर लेती हैं। इनकी सफलता का मूल कारण उनकी बहु-स्तरीय अनुकूलन रणनीतियाँ हैं, जो संरचनात्मक, शारीरिक, जैव-रासायनिक, आणविक तथा पारिस्थितिक स्तरों पर कार्य करती हैं।

तनाव-सहिष्णु खरपतवारों का अध्ययन केवल नियंत्रण रणनीतियों तक सीमित नहीं है; बल्कि यह समझना भी आवश्यक है कि वे किन जैविक तंत्रों के माध्यम से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफल होते हैं। यह ज्ञान जलवायु-स्मार्ट कृषि, सहिष्णु फसल किस्मों के विकास तथा सतत खरपतवार प्रबंधन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तालिका 1: प्रमुख तनाव-सहिष्णु खरपतवार एवं उनके अनुकूलन तंत्र

सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	प्रमुख तनाव	प्रमुख अनुकूलन तंत्र
गाजर घास	<i>पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस</i>	सूखा, ताप, प्रकाश तनाव	रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज (ROS) नियंत्रण, एंटीऑक्सीडेंट उच्च सक्रियता, उच्च जल उपयोग दक्षता
कटीली चौलाई	<i>अमरान्थस स्पिनोसस</i>	सूखा, लवणता, उच्च ताप	C ₄ प्रकाश संश्लेषण, बेहतर जल उपयोग दक्षता (WUE), प्रोलिन तथा ऑस्मोलाइट संचय, गतिशील जैव-रासायनिक तंत्र
सांवा	<i>ईकनोक्लोआ क्रूसगेली</i>	जलभराव, ताप	C ₄ मार्ग, तीव्र वृद्धि, संसाधन प्रतिस्पर्धा, उच्च पोषक अवशोषण
नागरमोथा	<i>साइपरस रोटंडस</i>	सूखा, ताप	भूमिगत कंद/पुनर्जनन, गहरी जड़ें, पोषक दोहन दक्षता
बथुआ	<i>चीनोपोडियम एल्बम</i>	सूखा, लवणता	पोषक दक्षता, रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज (ROS) प्रतिक्रिया, उच्च जैवभार नियंत्रण
हिरनखुरी	<i>कॉन्वोलवुलस आर्वेन्सिस</i>	सूखा, लवणता	विस्तृत जड़ प्रणाली, अश्वस्मोटिक समायोजन, आयन संतुलन
लूनिया	<i>पोर्टुलाका ओलेरासिया</i>	लवणता, सूखा	CAM/C ₄ प्लास्टिसिटी, उच्च जल उपयोग दक्षता (WUE)
गुल्लीडंडा	<i>फैलारिस माइनर</i>	शीत, नाइट्रोजन अधिकता	तीव्र अंकुरण, नाइट्रोजन उपयोग दक्षता
जंगली ज्वार	<i>सोरगम हेलेपेंस</i>	सूखा, ताप	राइजोम प्रणाली, गहरी जड़ संरचना
कंचरा	<i>कॉमेलिना बेंगालेंसिस</i>	आर्द्रता, छाया	द्वैध बीज उत्पादन (भूमिगत एवं सतही), तीव्र पुनर्जनन
जंगली घास	<i>लेप्टोक्लोआ चिनेन्सिस</i>	जलभराव	एरेनकाइमा विकास, तीव्र वृद्धि
पंचफूली	<i>लैटाना कैमारा</i>	सूखा, पोषक कमी	एलिलोपैथी, गहरी जड़ प्रणाली

1. अजैविक तनाव की प्रकृति एवं कोशिकीय स्तर पर प्रारंभिक प्रतिक्रिया

अजैविक तनाव, वे पर्यावरणीय कारक हैं जो पौधे की सामान्य शारीरिक एवं चयापचयी क्रियाओं को बाधित करते हैं। सूखा, उच्च तापमान, लवणीयता, जलभराव, पोषक तत्वों की कमी या अधिकता तथा भारी धातु विषाक्तता इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन तनावों का प्रथम प्रभाव कोशिका स्तर पर परिलक्षित होता है। जब पौधा सूखे या लवणीयता का सामना करता है, तब बाह्य जल विभव घट जाता है, जिससे कोशिका के भीतर से जल का निष्कासन होता है। इसके परिणामस्वरूप कोशिकीय दाब में कमी आती है और कोशिकीय विस्तार रुक जाता है। उच्च तापमान की दशा में प्रोटीन विकृतीकरण, झिल्ली की तरलता में परिवर्तन तथा एंजाइमों की संरचनात्मक अस्थिरता देखी जाती है। भारी धातु तनाव में धातु आयन कोशिकीय प्रोटीनों से जुड़कर उनकी क्रियाशीलता को बाधित करते हैं और रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज का स्तर बढ़ाते हैं।

सामान्य फसल पौधों में यह प्रभाव तीव्रता से प्रकाश संश्लेषण में कमी, पर्णहरित अपघटन, जड़ वृद्धि अवरोध तथा प्रजनन चरण में असफलता के रूप में प्रकट होता है। इसके विपरीत, तनाव-सहिष्णु खरपतवारों में प्रारंभिक संकेत-प्रणाली शीघ्र सक्रिय हो जाती है। हार्मोनल स्तर पर विशेष रूप से एब्सिसिक एसिड (एबीए) की वृद्धि रंध्रों के त्वरित बंद होने, जड़ वृद्धि के पुनर्निर्देशन तथा तनाव-संबंधी जीनों की अभिव्यक्ति को नियंत्रित करती है।

2. प्रकाश संश्लेषणीय अनुकूलन: C₄ प्रणाली और कार्बन दक्षता

प्रकाश संश्लेषण पौध वृद्धि का मूल आधार है और अधिकांश प्रमुख फसलें C₃ मार्ग अपनाती हैं, जिसमें राइबुलोज-1, 5-बिसफॉस्फेट कार्बोक्सिलेज/ऑक्सीजेनेज (RuBisCO) एंजाइम CO₂ के साथ-साथ O₂ से भी अभिक्रिया करता है। उच्च तापमान पर यह अश्वक्सीजनिक अभिक्रिया अर्थात् फोटोरेस्पिरेशन बढ़ जाती है, जिससे कार्बन हानि तथा ऊर्जा अपव्यय होता है। इसके विपरीत, अनेक प्रमुख खरपतवार C₄ प्रकाश संश्लेषण प्रणाली अपनाते हैं, जैसे जंगली चौलाई (*अमरान्थस विरिडिस*) तथा कांगनी (*सेटारिया विरिडिस*) जिनमें क्रांज संरचना (Kranz anatomy) विकसित होती है; इसमें मेसोफिल कोशिकाएँ प्रारंभिक कार्बन स्थिरीकरण (PEP कार्बोक्सिलेज द्वारा) करती हैं और तत्पश्चात बंडल शीथ कोशिकाओं में CO₂ का उच्च सांद्रण उत्पन्न किया जाता है, जिससे RuBisCO मुख्यतः कार्बोक्सिलेशन क्रिया करता है और फोटोरेस्पिरेशन नगण्य रहती है। परिणामस्वरूप 35-45°C जैसे उच्च ताप तथा सीमित जल उपलब्धता की दशा में C₄ पौधे अधिक प्रकाश संश्लेषणीय दक्षता बनाए रखते हैं, साथ ही उनकी जल उपयोग दक्षता (WUE) भी अधिक होती है क्योंकि वे कम रंध्र खुलाव के साथ पर्याप्त CO₂ अवशोषित कर सकते हैं। जब ऐसे C₄ खरपतवार C₃ फसलों जैसे गेहूँ, चना एवं सोयाबीन के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, तब उच्च ताप की परिस्थितियों में वे तीव्र वृद्धि कर छात्रावरण (केनोपी) बनाते हैं और प्रकाश अवरोध उत्पन्न करते हैं, जिससे फसल की प्रकाश संश्लेषण दर और कम

हो जाती है तथा अंततः जैवभार संचय और उपज दोनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3. जल उपयोग दक्षता और सूखा सहनशीलता

सूखा तनाव पौधों की शारीरिक एवं जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं पर गहरा प्रभाव डालता है। मिट्टी में उपलब्ध जल की कमी से कोशिकीय दाब घटता है, जिसके परिणामस्वरूप रंध्र (स्टोमेटा) आंशिक या पूर्णतः बंद हो जाते हैं। रंध्र बंद होने से CO₂ का अवशोषण कम हो जाता है और प्रकाश संश्लेषण की दर घटती है। इसके साथ ही वाष्पोत्सर्जन दर में परिवर्तन, पर्णहरित अपघटन तथा ऑक्सीडेटिव तनाव में वृद्धि होती है। अधिकांश फसलें इस परिस्थिति में शीघ्र मुरझाने लगती हैं, पुष्पन एवं दाना भराव प्रभावित होता है और अंततः उपज में कमी आती है।

इसके विपरीत, अनेक खरपतवार उच्च जल उपयोग दक्षता के कारण सूखा परिस्थितियों में भी जीवित रहते हैं। उनकी गहरी एवं व्यापक जड़ प्रणाली मिट्टी की 1-2 मीटर या उससे अधिक गहराई तक पहुँचकर भू-जल या अवशिष्ट नमी का उपयोग कर लेती है। एब्सिसिक एसिड (एबीए) के माध्यम से रंध्रों का त्वरित नियंत्रण जल हानि को कम करता है। पत्तियों पर मोटी क्यूटिकल, मोमी परत तथा कभी-कभी संकरी या संशोधित पत्ती संरचना वाष्पोत्सर्जन को सीमित करती है। जैव-रासायनिक स्तर पर, प्रोलिन, ग्लाइसिन बीटेन, सुक्रोज एवं अन्य घुलनशील शर्कराओं जैसे ऑस्मोलाइट्स का संचय कोशिकाओं में कोशिकीय दाब बनाए रखने में सहायक होता है, जिससे एंजाइम क्रियाशीलता और झिल्ली स्थिरता बनी रहती है। उदाहरण के रूप में, नागरमोथा (*साइपरस रोटंडस*) की कंदीय संरचना ऊर्जा एवं कार्बोहाइड्रेट भंडारण के साथ सूखे की अवधि के बाद तीव्र पुनर्जनन की क्षमता प्रदान करती है।

इन अनुकूलनों के कारण खरपतवार सीमित जल परिस्थितियों में भी प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त बनाए रखते हैं। परिणामस्वरूप फसलों में जल संसाधनों के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा, शीघ्र मुरझाना, पुष्पन एवं दाना भराव में कमी तथा अंतिम उपज में उल्लेखनीय गिरावट देखी जाती है।

4. जड़ संरचना एवं भूमिगत अनुकूलन

खरपतवारों की जड़ संरचना केवल जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह उनके प्रसार, स्थायित्व तथा पुनर्जनन की मूल आधारशिला भी होती है। अनेक आक्रामक खरपतवारों में अत्यधिक विकसित, गहरी तथा क्षैतिज रूप से विस्तृत जड़ तंत्र पाया जाता है, जो उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवित रहने की क्षमता प्रदान करता है। उदाहरणस्वरूप, जंगली ज्वार (*सोरगम हेलेपेंस*) में विकसित राइजोम प्रणाली भूमिगत तनों के माध्यम से तीव्र क्षैतिज प्रसार सुनिश्चित करती है। यांत्रिक नियंत्रण जैसे जुताई या गुड़ाई के पश्चात भी राइजोम के छोटे-छोटे खंड मिट्टी में रह जाते हैं और पुनः अंकुरित होकर नई पौध उत्पन्न कर देते हैं, जिससे इसका उन्मूलन कठिन हो जाता है। इसी प्रकार, नागरमोथा (*साइपरस रोटंडस*) में कंद एवं श्रृंखलाबद्ध भूमिगत संरचनाएँ पाई जाती हैं, जो बहुवर्षीय पुनर्जनन की क्षमता प्रदान करती हैं। ये कंद ऊर्जा एवं कार्बोहाइड्रेट का भंडारण करते हैं और प्रतिकूल मौसम के बाद भी तीव्र वृद्धि संभव बनाते हैं।



चित्र 1: जंगली ज्वार (सोरगम हेलेपेंस) एवं नागरमोथा (साइपरस रोटंडस) की जड़ संरचना एवं भूमिगत अनुकूलन

गहरी एवं सघन जड़ प्रणाली के कारण ऐसे खरपतवार मिट्टी की गहराई से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों का तीव्र दोहन करते हैं। परिणामस्वरूप फसल के जड़ क्षेत्र (rhizosphere) में प्रतिस्पर्धात्मक दबाव बढ़ जाता है, पोषक तत्वों की उपलब्धता घटती है और सूखा तथा पोषण तनाव की तीव्रता में वृद्धि होती है। इस प्रकार, भूमिगत अनुकूलन खरपतवारों को पारिस्थितिक बढ़त प्रदान करते हैं, जबकि फसलों की वृद्धि एवं उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

5. जैव-रासायनिक रक्षा प्रणाली एवं प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (आरओएस) का प्रबंधन

पर्यावरणीय तनाव जैसे सूखा, उच्च तापमान, लवणता अथवा प्रदूषण की स्थिति में पौधों की कोशिकाओं में प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों जैसे सुपरऑक्साइड आयन (O_2^-), हाइड्रोजन पेराक्साइड (H_2O_2) तथा हाइड्रॉक्सिल रेडिकल (OH) का स्तर तीव्रता से बढ़ जाता है। सामान्य परिस्थितियों में ये अणु चयापचय का स्वाभाविक उपोत्पाद होते हैं, परंतु तनाव की दशा में इनका अत्यधिक संचय ऑक्सीडेटिव तनाव उत्पन्न करता है। यदि इनका समय पर नियंत्रण न किया जाए तो ये झिल्ली लिपिड पेरोक्सिडेशन, प्रोटीन ऑक्सीकरण, एंजाइम निष्क्रियता तथा DNA क्षति का कारण बनते हैं, जिससे कोशिकीय संरचना और कार्यात्मक संतुलन प्रभावित होता है।

अनेक खरपतवारों में इन प्रतिक्रियाशील ऑक्सीजन प्रजातियों (ROS) के प्रभावी नियंत्रण हेतु सशक्त एंटीऑक्सीडेंट रक्षा तंत्र विकसित होता है। इनमें सुपरऑक्साइड डिस्म्यूटेज (SOD) सुपरऑक्साइड आयन को हाइड्रोजन पेरोक्साइड (H_2O_2) में परिवर्तित करता है, कैटालेज (CAT) एवं पेरोक्सिडेज (POD) H_2O_2 को जल और ऑक्सीजन में अपघटित करते हैं, जबकि एस्कॉर्बेट पेरोक्सिडेज (APX) एस्कॉर्बेट-ग्लूटाथायोन चक्र के माध्यम से H_2O_2 का सूक्ष्म स्तर पर नियमन करता है। इन एंजाइमों की उच्च सक्रियता के कारण आरओएस का संचय नियंत्रित रहता है और कोशिकीय झिल्लियों की स्थिरता बनी

रहती है। परिणामस्वरूप, लिपिड पेरोक्सिडेशन के सूचक मालोनडाइ-एल्डिहाइड (एमडीए) का स्तर अपेक्षाकृत कम पाया जाता है, जो बेहतर ऑक्सीडेटिव संतुलन का संकेत है। इसके विपरीत, यदि फसलों में एंटीऑक्सीडेंट क्षमता सीमित हो या तनाव के प्रति उनका अनुकूलन तंत्र कमजोर हो, तो आरओएस (ROS) का संचय तीव्र कोशिकीय क्षति उत्पन्न करता है। यही कारण है कि अनेक प्रतिकूल परिस्थितियों में खरपतवार फसलों की तुलना में अधिक सहिष्णु एवं प्रतिस्पर्धात्मक रूप से सफल सिद्ध होते हैं।

6. परासरणीय समायोजन

सूखा अथवा लवणीयता जैसी परिस्थितियों में मिट्टी अथवा कोशिका के बाह्य वातावरण का जल विभव कम हो जाता है, जिसके कारण कोशिका के भीतर से जल बाहर की ओर प्रवाहित होने लगता है। यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहे तो कोशिकाएँ कोशिकीय दाब खो देती हैं, एंजाइम क्रियाएँ बाधित होती हैं और वृद्धि रुक जाती है। ऐसी दशा में जीवित रहने के लिए पौधों को कोशिका के भीतर परासरणीय संतुलन बनाए रखना आवश्यक होता है, जिसे परासरणीय समायोजन कहा जाता है।

तनाव-सहिष्णु खरपतवार इस स्थिति में विभिन्न अनुकूल जैव-रासायनिक रणनीतियाँ अपनाते हैं। वे प्रोलिन, ग्लाइसिन बीटेन, ट्रेहेलोज तथा विभिन्न घुलनशील शर्कराओं (जैसे सुक्रोज) का संचय करते हैं। इन यौगिकों को ऑस्मोलाइट कहा जाता है, जो कोशिका के द्रव में घुलकर आंतरिक परासरणीय सांद्रता बढ़ाते हैं और जल को कोशिका के भीतर बनाए रखने में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त, ये ऑस्मोलाइट एंजाइमों की त्रि-आयामी संरचना को स्थिर रखते हैं, प्रोटीन विकृतिकरण को कम करते हैं तथा कोशिका झिल्ली की स्थिरता बनाए रखते हैं। इस प्रकार वे केवल कोशिकीय दाब संरक्षण ही नहीं करते, बल्कि समग्र कोशिकीय क्रियाशीलता को भी सुरक्षित रखते हैं। इसके विपरीत, यदि फसलों में ऑस्मोलाइट संचय की क्षमता सीमित हो, तो कोशिकीय निर्जलीकरण शीघ्र हो जाता है, चयापचय क्रियाएँ धीमी पड़ जाती हैं और वृद्धि रुक जाती

है। परिणामस्वरूप पौधों में मुरझाने की प्रवृत्ति बढ़ती है तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

7. एलिलोपैथी एवं द्वितीयक उपापचय

कुछ खरपतवार अपनी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने के लिए द्वितीयक उपापचयों का स्राव करते हैं, जो आसपास उगने वाले पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। इस प्रक्रिया को एलिलोपैथी कहा जाता है। ये रसायन प्रायः फिनॉलिक यौगिक, टरपेनॉइड, एल्कलॉइड अथवा अन्य जैव-सक्रिय पदार्थ होते हैं, जो मिट्टी में जड़ों के माध्यम से, पत्तियों के अपघटन से या वाष्पशील रूप में उत्सर्जित होते हैं।

उदाहरणस्वरूप- गाजरघास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) फिनॉलिक

यौगिकों तथा अन्य विषैले पदार्थों का स्राव करता है, जो फसलों के बीज अंकुरण, जड़ वृद्धि एवं प्रारंभिक पौध विकास को बाधित करते हैं।

एलिलोपैथिक प्रभाव के परिणामस्वरूप अंकुरण दर में कमी, जड़ एवं प्ररोह वृद्धि में अवरोध तथा पोषक तत्वों के अवशोषण में कमी देखी जाती है। इससे फसल की प्रारंभिक स्थापना कमजोर हो जाती है और खरपतवार को पारिस्थितिक तथा प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त प्राप्त होती है। इस प्रकार, एलिलोपैथी खरपतवारों की सफलता का एक महत्वपूर्ण जैव-रासायनिक हथियार सिद्ध होती है, जो प्रत्यक्ष संसाधन प्रतिस्पर्धा के अतिरिक्त रासायनिक हस्तक्षेप के माध्यम से भी फसलों को प्रभावित करती है।

तालिका 2: एलिलोपैथिक क्षमता वाले प्रमुख खरपतवार

सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	मुख्य एलिलोकेमिकल	प्रभावित फसलें	प्रभाव का प्रकार
गाजरघास	पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस	पार्थेनिन	गेहूँ, सरसों, मक्का, दलहन	अंकुरण अवरोध, जड़ वृद्धि अवरोध, पोषक अवशोषण कम
बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम	फिनॉल ए कौमारिक और फेरुलिक एसिड	गेहूँ, चना जड़ और तना	वृद्धि अवरोध, कोशिका विभाजन में अवरोध
कटीली चौलाई	अमरान्थस स्पिनोसस	फिनोल, फ्लेवोनोइड, सैपोनिन और स्टेरॉयड	दलहन, सब्जियाँ	वृद्धि एवं विभाजन में विलंब
नागरमोथा	साइपरस रोटंडस	टरपेनॉइड ए फेनोलिक्स	धान, बाजरा	पोषक प्रतिस्पर्धा, जड़ क्षेत्र दबाव
सांवा	ईकानोक्लोआ कोलोना	फेरुलिक एसिड, सनामिक एसिड, फेनोलिक्स	धान, मक्का	जड़ प्रतिस्पर्धा, पोषक प्रतिस्पर्धा
हिरनखुरी	कॉन्वोलवुलस अर्वेंसिस	फिनोलिक एसिड	गेहूँ, चना	जड़ लंबाई कम, अंकुरण घटाव
गुल्लीडंडा	फैलारिस माइनर	फिनोलिक यौगिक	गेहूँ	जड़ प्रतिस्पर्धा, अंकुरण अवरोध
जंगली ज्वार	सोरगम हेलेपेंस	सोर्गोलैनेन	मक्का, गेहूँ, ज्वार	प्रकाश संश्लेषण अवरोध

तनाव-सहिष्णु खरपतवार बहु-स्तरीय अनुकूलन रणनीतियों के माध्यम से प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक जीवित रहते हैं और प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त बनाए रखते हैं। उनका C₄ प्रकाश संश्लेषण तंत्र उच्च ताप एवं प्रकाश परिस्थितियों में भी प्रभावी कार्बन स्थिरीकरण सुनिश्चित करता है, जबकि उन्नत एवं गहन जड़ तंत्र उन्हें मिट्टी की गहराई से जल और पोषक तत्वों का कुशल दोहन करने में सक्षम बनाता है। इसके अतिरिक्त, उच्च एंटीऑक्सीडेंट क्षमता ROS जनित क्षति को नियंत्रित करती है, परासरणीय समायोजन कोशिकीय दाब (Turgor pressure) और एंजाइम स्थिरता बनाए रखता है, तथा एलिलोपैथिक प्रभाव उन्हें रासायनिक एवं पारिस्थितिक स्तर पर भी सशक्त बनाते हैं। इन समेकित विशेषताओं के कारण वे फसलों पर संसाधन प्रतिस्पर्धा में बढ़त प्राप्त करते हैं और उपज को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकते हैं।

भविष्य में जलवायु परिवर्तन की तीव्रता बढ़ने के साथ ताप, सूखा और लवणता जैसी समस्याएँ और अधिक जटिल होंगी, जिससे फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा की प्रकृति भी परिवर्तित हो सकती है। अतः आवश्यक है कि खरपतवार शारीरिकी एवं जैव-रासायनिक अनुकूलनों का गहन अध्ययन किया जाए, ताकि उनके अनुकूलन तंत्र को वैज्ञानिक रूप से समझा जा सके। साथ ही, फसलों में समान सहिष्णु लक्षणों जैसे बेहतर जड़ संरचना, उन्नत एंटीऑक्सीडेंट तंत्र एवं परासरणीय समायोजन क्षमता का समावेश प्रजनन एवं जैव-प्रौद्योगिकीय उपायों द्वारा किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, एकीकृत खरपतवार प्रबंधन रणनीतियों को अपनाकर सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक एवं रासायनिक उपायों का संतुलित समन्वय आवश्यक है। इस प्रकार, खरपतवारों का अध्ययन केवल नियंत्रण की दृष्टि से नहीं, बल्कि अनुकूलन विज्ञान के व्यापक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।



खरपतवार प्रबंधन में कृषि ड्रोन का महत्व

वैभव चौधरी

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

वर्तमान में कृषि क्षेत्र अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है, जैसे श्रमिकों की कमी, लगातार बढ़ती कृषि निवेश लागत तथा पर्यावरणीय जोखिम। उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के अनुसार, खरपतवारों के कारण फसल उपज में लगभग 20-40 प्रतिशत तक की हानि होती है। वर्तमान समय में देश भर में 2 हेक्टेयर से कम भूमि रखने वाले सीमांत एवं छोटे किसान प्रायः 10 से 20 लीटर क्षमता वाले नैपसैक स्प्रेयर (कीमत लगभग 2000 से 3000 रुपये) का उपयोग कर खरपतवार नियंत्रण करते हैं। हाल के वर्षों में भारतीय बाजार में 10 से 20 लीटर टैंक क्षमता वाले कृषि स्प्रे ड्रोन उपलब्ध हुए हैं, जिनकी कीमत लगभग 3 लाख से 10 लाख रुपये तक है। इन ड्रोन का उपयोग कम समय, कम लागत और कम मानव श्रम में फसल पोषक तत्वों एवं कृषि रसायनों के छिड़काव के लिए किया जा रहा है। स्प्रे ड्रोन द्वारा कवर किया जाने वाला क्षेत्र, नैपसैक स्प्रेयर

(0.04 हे./घंटा, चित्र 1) तथा ट्रेक्टर चालित बूम स्प्रेयर (0.5 हे./घंटा, चित्र 2) की तुलना में काफी अधिक होता है, जो लगभग 5 से 8 हे./घंटा तक होता है। कृषि ड्रोन का वैश्विक बाजार तेजी से बढ़ रहा है, जिसका उद्देश्य किसानों को अपनी फसलों पर अधिक प्रभावी ढंग से छिड़काव करने में सक्षम बनाना है, जिसमें फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु ड्रोन आधारित खरपतवारनाशी छिड़काव भी शामिल है। हालाँकि, ड्रोन द्वारा छिड़के गए खरपतवारनाशियों की प्रभावशीलता से संबंधित प्रायोगिक आंकड़ों का देश के विभिन्न भागों से कम से कम तीन वर्षों तक एकत्रित आंकड़ों के आधार पर गंभीर मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है, ताकि चयनित फसलों में बाजार में उपलब्ध खरपतवारनाशियों के सबसे प्रभावी संयोजनों की पहचान की जा सके। इसके बाद ही किसानों को ड्रोन द्वारा छिड़काव हेतु उपयुक्त खरपतवारनाशी एवं फसल संयोजनों की सिफारिश की जानी चाहिए।



चित्र 1. गेहूँ की फसल में श्रमिक द्वारा नैपसैक स्प्रेयर से खरपतवारनाशी का छिड़काव

(स्रोत: भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर)



चित्र 2. गेहूँ की फसल में ट्रैक्टर चालित बूम स्प्रेयर द्वारा खरपतवारनाशी का छिड़काव

(स्रोत: भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर)

कृषि ड्रोन आधारित छिड़काव की आवश्यकता

भारतीय परिप्रेक्ष्य में छोटे एवं सीमांत किसानों के सामने निम्नलिखित समस्याएँ आती हैं:

- कृषि के व्यस्त मौसम में श्रमिकों की कमी तथा बढ़ती मजदूरी दर।
- नैपसैक या बूम स्प्रेयर का उपयोग करने वाले किसानों में लगातार खरपतवारनाशी के संपर्क के कारण स्वास्थ्य जोखिम।
- खरपतवारनाशियों के लंबे समय तक संपर्क में रहने से मानव स्वास्थ्य को अपरिवर्तनीय क्षति हो सकती है।
- पारंपरिक छिड़काव विधियों में अधिक समय और श्रम की आवश्यकता होती है।

- रबी मौसम में चिपचिपी मिट्टी के कारण पहिए वाली मशीनों को खेत में चलाने में कठिनाई होती है।

इन सभी समस्याओं को देखते हुए, खरपतवारनाशियों के छिड़काव के लिए ड्रोन एक बहुत ही अच्छा विकल्प है।

कृषि ड्रोन के प्रकार

ड्रोन को उनके कार्य एवं उपयोग के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। विश्व स्तर पर प्रिसिजन फार्मिंग में ऐसे ड्रोन का उपयोग किया जा रहा है। खरपतवार प्रबंधन के संदर्भ में, इमेजिंग ड्रोन तथा उसके बाद स्प्रे ड्रोन साइट-विशिष्ट खरपतवार प्रबंधन प्राप्त

करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन ड्रोन के बारे में संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

- ❖ **इमेजिंग ड्रोन:** ये छोटे ड्रोन (चित्र 3 व 4) होते हैं, जो पूरे लक्षित फसल क्षेत्र के ऊपर लगभग 30 मीटर से 50 मीटर की ऊँचाई पर 4 मीटर प्रति सेकेंड से 6 मीटर प्रति सेकेंड की उड़ान गति से उड़ते हैं। कम ऊँचाई पर कम गति रखना आवश्यक होता है, ताकि उच्च गुणवत्ता वाली इमेज ओवरलैप प्राप्त हो सके और ली गई तस्वीरों में मोशन ब्लर न हो। रिसर्च स्तर की सटीक ऑर्थोमोजेक इमेज बनाने के लिए साइड ओवरलैप या फ्रंट ओवरलैप लगभग 75% आवश्यक होता है। तैयार की गई ऑर्थोमोजेक इमेज को आगे इमेज प्रोसेसिंग



चित्र 3. RGB तथा मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरा युक्त इमेजिंग ड्रोन।
(स्रोत: इंटरनेट)

- ❖ **स्प्रे ड्रोन:** ये ड्रोन इमेजिंग ड्रोन की तुलना में आकार में अपेक्षाकृत बड़े होते हैं (चित्र 5 व 6)। सामान्यतः ये बाजार में 10 से 20 लीटर स्प्रे टैंक क्षमता के साथ उपलब्ध होते हैं। ये ड्रोन खेत के आकार और अवरोधों की प्रकृति के अनुसार मैनुअल या ऑटोमैटिक मोड में कार्य कर सकते हैं। ऑपरेटर इन ड्रोन को रिमोट कंट्रोलर के माध्यम से सुरक्षित दूरी से संचालित कर सकता है, जिससे स्प्रे ड्रिफ्ट के संपर्क की संभावना कम होती है और मानव स्वास्थ्य पर होने वाले नकारात्मक प्रभावों से बचाव होता है।



चित्र 5. गेहूँ की फसल में खरपतवारनाशी छिड़काव से पूर्व की तैयारी
(स्रोत: भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर)

सॉफ्टवेयर जैसे Pix4D में प्रोसेस किया जाता है, जिससे 0 से 1 के बीच का एक कस्टम इंडेक्स तैयार किया जाता है, जो फसल क्षेत्र में खरपतवार संक्रमण के स्तर को दर्शाता और मैप करता है। इसके बाद कस्टम इंडेक्स आधारित मैप को एप्लिकेशन रेट मैप में परिवर्तित किया जाता है। यह परिवर्तन कस्टम इंडेक्स के मान (जो ग्रिड आधारित मैप में खरपतवार संक्रमण की तीव्रता दर्शाता है) और उस ग्रिड में खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए आवश्यक न्यूनतम खरपतवारनाशी की मात्रा के बीच गणितीय संबंध के आधार पर किया जाता है।



चित्र 4. कृषि क्षेत्र का स्कैन करता हुआ इमेजिंग ड्रोन।
(स्रोत: इंटरनेट)

पिछले चरण में तैयार किया गया एप्लिकेशन रेट मैप स्प्रे ड्रोन की मेमोरी में फीड कर दिया जाता है। इसके बाद स्प्रे ड्रोन पूर्व निर्धारित मार्ग पर खेत के ऊपर उड़ान भरता है और विभिन्न ग्रिड में खरपतवार संक्रमण की तीव्रता के अनुसार स्प्रे की मात्रा को स्वतः समायोजित करता है। जिस ग्रिड में खरपतवार संक्रमण अधिक होता है, वहाँ खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशी की मात्रा भी अधिक रखी जाती है, जबकि कम संक्रमण वाले क्षेत्रों में कम मात्रा में छिड़काव किया जाता है। इस प्रकार साइट-विशिष्ट खरपतवारनाशी छिड़काव संभव हो पाता है।



चित्र 6. गेहूँ की फसल में ड्रोन द्वारा शाकनाशी का छिड़काव
(स्रोत: भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर)

- ❖ **बीज प्रसारण या उर्वरक प्रसारण ड्रोन:** ये कृषि ड्रोन (चित्र 7 व 8) संरचना और कार्य प्रणाली की दृष्टि से स्प्रे ड्रोन के समान होते हैं। स्प्रे ड्रोन में लगे स्प्रे यूनिट के स्थान पर इनमें बीज या उर्वरक टैंक लगाया जाता है, जिसके नीचे घुमने वाली गोलाकार स्पिनिंग डिस्क लगी होती है, जिसमें मुड़ी हुई ब्लेड तथा नीचे की ओर एक हॉपर गेट होता है। टैंक में भरा बीज या उर्वरक गुरुत्वाकर्षण के कारण हॉपर गेट



चित्र 7. लक्ष्य क्षेत्र पर उर्वरक का छिड़काव करता हुआ कृषि ड्रोन
(स्रोत: इंटरनेट)

से नीचे की ओर डिस्क पर गिरता है और स्पिनिंग डिस्क के स्पाइरल चैनल के घुमाव के कारण अपकेंद्रीय बल से बाहर की ओर समान रूप से फैल जाता है। उन्नत कृषि ड्रोन में स्पिनिंग डिस्क की घूर्णन गति को ड्रोन की उड़ान गति और जमीन से डिस्क की ऊँचाई के अनुसार अनुकूलित किया जा सकता है, ताकि लक्षित खेत में बीज या उर्वरक का समान वितरण सुनिश्चित किया जा सके।



चित्र 8. ड्रोन का स्पाइरल चैनल स्पिनिंग डिस्क (धूसर), हॉपर गेट (काला) तथा उर्वरक टैंक (सफेद)
(स्रोत: इंटरनेट)

ड्रोन स्प्रेडिंग सिस्टम में सामान्यतः उपयोग किए जाने वाले घटक

- **फ्लाइट कंट्रोलर** - यह ड्रोन का मुख्य नियंत्रक होता है, जो विभिन्न सेंसर और रिमोट कंट्रोलर से सिग्नल प्राप्त करता है, उन्हें प्रोसेस करता है और मोटर्स तथा अन्य भागों को आवश्यक निर्देश भेजता है।
- **मोटर्स और प्रोपेलर** - ये ड्रोन को ऊपर उठाने और आगे-पीछे तथा दाएँ-बाएँ चलाने के लिए आवश्यक थ्रस्ट उत्पन्न करते हैं।
- **सेंसर** - इनमें टेर्रेन फॉलोइंग रडार, ऑब्स्टेकल अवॉइडेंस रडार तथा फ्रंट कैमरा शामिल होते हैं, जो ड्रोन को ऊँचाई बनाए रखने, बाधाओं से बचने और सुरक्षित उड़ान में सहायता करते हैं।
- **रिमोट कंट्रोलर** - इसके माध्यम से अश्वपरेटर ड्रोन के फ्लाइट पैरामीटर जैसे ऊँचाई, गति, दिशा और स्प्रे नियंत्रण करता है।
- **QGC या अन्य ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर** - यह ग्राउंड कंट्रोल सॉफ्टवेयर होता है, जिसका उपयोग ड्रोन की फ्लाइट प्लानिंग, मिशन प्लानिंग, ऑटोमैटिक फ्लाइट, डेटा मॉनिटरिंग आदि के लिए किया जाता है।
- **बैटरी और चार्जर** - ये ड्रोन को ऊर्जा प्रदान करते हैं।
- **स्प्रेडिंग यूनिट** - यह ड्रोन से दबाव के साथ तरल (खरपतवारनाशी/ कीटनाशी/उर्वरक घोल) का छिड़काव करने का कार्य करता है।

कृषि स्प्रे ड्रोन का कार्य सिद्धांत

ऑपरेटर कृषि स्प्रे ड्रोन को रिमोट कंट्रोलर के माध्यम से सुरक्षित दूरी से नियंत्रित करता है। रिमोट कंट्रोलर में क्यू.जी.सी. या अन्य ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर होता है, जिसमें उड़ान से संबंधित विवरण जैसे उड़ान गति, उड़ान ऊँचाई और उड़ान मार्ग दर्ज किए जाते हैं और ये सिग्नल फ्लाइट कंट्रोलर को भेजे जाते हैं। फ्लाइट कंट्रोलर जी.पी.एस. और रडार से सिग्नल प्राप्त करता है और उसके बाद मोटर्स को सिग्नल भेजता है, जिससे मोटर से जुड़े प्रोपेलर थ्रस्ट उत्पन्न करते हैं और ड्रोन निर्धारित मार्ग के अनुसार उड़ान भरता है। कृषि ड्रोन सामान्यतः खेत में संचालन के दो मोड में कार्य करते हैं - मैनुअल मोड और ऑटोमैटिक मोड। मैनुअल मोड का उपयोग सामान्यतः तब किया जाता है जब छिड़काव किया जाने वाला खेत आकार में छोटा हो या खेत के आसपास बिजली की तारें, इमारतें या अन्य अवरोध मौजूद हों। अश्वटोमैटिक मोड का उपयोग तब किया जाता है जब छिड़काव किया जाने वाला खेत बड़ा हो और अवरोध लगभग न हों, ताकि ड्रोन की टक्कर या क्षति से बचा जा सके।

ड्रोन आधारित शाकनाशी छिड़काव के लाभ

ड्रोन आधारित खरपतवारनाशी छिड़काव के पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

- कृषि ड्रोन द्वारा साइट-विशिष्ट खरपतवारनाशी छिड़काव में

पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में खरपतवारनाशी की मात्रा में उल्लेखनीय कमी देखी गई है।

- पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में कृषि ड्रोन के उपयोग से खरपतवार प्रबंधन में लगने वाले श्रम, लागत और समय में उल्लेखनीय कमी आती है।
- वैज्ञानिक शोधों में पाया गया है कि अनुकूलित परिस्थितियों में कृषि स्प्रे ड्रोन आधारित खरपतवारनाशी छिड़काव करने पर फसल उपज पारंपरिक खरपतवार प्रबंधन प्रणालियों के समान पाई गई है।
- ड्रोन ऑपरेटर सुरक्षित दूरी से ड्रोन संचालित करता है, जिससे पारंपरिक छिड़काव विधियों की तुलना में खरपतवारनाशी के हानिकारक स्प्रे के श्वसन का जोखिम कम हो जाता है।
- पारंपरिक छिड़काव विधियाँ शारीरिक रूप से अधिक श्रमसाध्य होती हैं, जबकि ड्रोन आधारित खरपतवारनाशी छिड़काव को मैनुअल या ऑटोमैटिक मोड में अपेक्षाकृत आसानी से सीखा और खेतों में उपयोग किया जा सकता है।

ड्रोन आधारित शाकनाशी छिड़काव की सीमाएँ

- ड्रोन आधारित खरपतवारनाशी छिड़काव से उत्पन्न स्प्रे ड्रिफ्ट के कारण अनजाने में खरपतवारनाशी का मानव द्वारा श्वसन हो सकता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर जोखिम उत्पन्न कर सकता है।
- रिमोट कंट्रोलर और ड्रोन में लगे फ्लाइट कंट्रोलर के बीच सिग्नल का अचानक संपर्क टूटने से ड्रोन का तुरंत और लक्ष्य से हटकर

असमतल, कीचड़युक्त स्थान या जलाशय में उतरने का खतरा हो सकता है।

- ड्रोन में सामान्य जी.पी.एस. एंटेना की तुलना में सब-मीटर सटीकता वाले आर.टी.के.-जी.पी.एस एंटेना को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि इससे ड्रोन की इच्छित उड़ान पथ पर स्थिति निर्धारण और नियंत्रण अधिक सटीकता से किया जा सकता है।
- ड्रोन की प्रारंभिक लागत अधिक होने के कारण किसानों के लिए इसे अपनाना कठिन हो सकता है, जिसे उचित सब्सिडी तंत्र द्वारा कम किया जा सकता है।

कृषि ड्रोन का भविष्य

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि ड्रोन में अपार संभावनाएँ हैं, क्योंकि कृषि में श्रम लागत के साथ-साथ कृषि निवेश लागत भी बढ़ रही है जिससे प्रिसिजन फार्मिंग की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। कृषि ड्रोन साइट-विशिष्ट खरपतवार प्रबंधन और सटीक खरपतवारनाशी छिड़काव में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जिससे पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा मिलेगा तथा किसानों की आय और लाभप्रदता में सुधार होगा। इस तकनीक के महत्व को समझते हुए भारत सरकार ने ड्रोन नियम, 2021 लागू किए हैं, ताकि नियमों को सरल बनाया जा सके और कृषि में ड्रोन के उपयोग को बढ़ावा दिया जा सके। ड्रोन को कृत्रिम बुद्धिमत्ता और विभिन्न सेंसर आधारित तकनीकों के साथ एकीकृत करने से भारत में प्रिसिजन कृषि और अधिक मजबूत होगी। भविष्य में कृषि ड्रोन आधुनिक भारतीय कृषि का एक अनिवार्य हिस्सा बन सकते हैं।



**राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और
उन्नति के लिए आवश्यक है।**

- महात्मा गांधी

जीवन के छोटे से छोटे क्षेत्र में हिन्दी अपना दायित्व निभाने में समर्थ है।

- पुरुषोत्तमदास टंडन

**हिंदी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है, जिसे बिना भेद-भाव
प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।**

- मदन मोहन मालवीय

आवरण फसलें: मिट्टी उर्वरता बढ़ाने और खरपतवार नियंत्रण का प्रभावी साधन

संस्कृति राय, बादल वर्मा एवं वी.के. चौधरी

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

आवरण फसलों का परिचय

आधुनिक कृषि में केवल अधिक उत्पादन ही लक्ष्य नहीं रह गया है, बल्कि मिट्टी का दीर्घकालिक स्वास्थ्य, पर्यावरण संरक्षण तथा टिकाऊ खेती भी समान रूप से महत्वपूर्ण हो गए हैं। इसी संदर्भ में आवरण फसलें कृषि प्रणालियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पोषक तत्वों की कमी के कारण मृदा क्षरण आधुनिक कृषि की एक प्रमुख चुनौती बन चुका है। पोषक तत्वों की पूर्ति किए बिना लगातार फसलें उगाने से मृदा की उर्वरता कम हो जाती है, पैदावार घटती है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता बढ़ जाती है। इस कमी का प्रभाव मृदा संरचना, सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों तथा कार्बनिक पदार्थों पर भी पड़ता है, जिससे कृषि प्रणाली कम टिकाऊ हो जाती है। इस समस्या का एक प्रमुख समाधान मुख्य फसल ऋतुओं के बीच आवरण फसलों की खेती करना है। ये आवरण फसलें पोषक तत्वों की पूर्ति करती हैं, मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाती हैं तथा कृत्रिम उर्वरकों पर निर्भरता को कम करती हैं। आवरण फसलों को अपनाकर किसान मृदा उर्वरता बढ़ा सकते हैं, मिट्टी के कटाव को रोक सकते हैं और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा दे सकते हैं। आवरण फसलें मुख्यतः नकदी फसल के रूप में नहीं उगाई जातीं, बल्कि इन्हें फसल प्रणाली में विविध लाभ सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बोया जाता है। इनके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

आवरण फसलों के प्रमुख उद्देश्य

- **मिट्टी के कटाव को कम करना:** आवरण फसलों की विकसित एवं व्यापक जड़ प्रणाली मिट्टी के कणों को आपस में बांधे रखती है, जिससे हवा और पानी के कारण होने वाला ऊपरी मिट्टी का कटाव कम हो जाता है। इससे मिट्टी की गहराई एवं संरचना बनी रहती है और दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता सुनिश्चित होती है।
- **मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाना:** नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसलें मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ाती हैं, जिससे कृत्रिम उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है। प्राकृतिक रूप से नाइट्रोजन की पूर्ति करके ये फसलें पौधों की बेहतर वृद्धि को प्रोत्साहित करती हैं तथा किसानों की उर्वरक लागत को कम करती हैं।
- **मिट्टी की संरचना में सुधार करना:** आवरण फसलें मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ाती हैं, जिससे वायु संचार तथा जल धारण क्षमता में सुधार होता है। इसके परिणामस्वरूप भविष्य की फसलों में जड़ों का बेहतर विकास होता है और मिट्टी की समग्र सहनशीलता बढ़ती है।

- **खरपतवार नियंत्रण:** तेजी से बढ़ने वाली आवरण फसलें खरपतवारों के साथ प्रतिस्पर्धा कर उन्हें दबा देती हैं, जिससे खरपतवारों का दबाव कम होता है और खरपतवारनाशकों पर निर्भरता घटती है। यह प्राकृतिक विधि श्रम एवं रासायनिक उपयोग दोनों को कम करती है तथा स्वस्थ कृषि वातावरण को बढ़ावा देती है।
- **कीट एवं रोग प्रबंधन:** सरसों जैसी कुछ आवरण फसलें प्राकृतिक बायोफ्यूमिगेंट्स उत्पन्न करती हैं, जो मृदा जनित कीटों और रोगजनकों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। ये जैव-धूमनकारी पदार्थ पौधों में रोगों के खतरे को कम करते हैं, जिससे फसलें अधिक सशक्त एवं सहनशील बनती हैं।
- **नमी संरक्षण:** आवरण फसलें वाष्पीकरण को कम करती हैं तथा जल के अवशोषण (infiltration) की क्षमता को बढ़ाती हैं, जिससे आगामी फसलों के लिए बेहतर नमी उपलब्ध रहती है। इससे सूखा सहनशीलता बढ़ती है और पौधों की इष्टतम वृद्धि के लिए मिट्टी में आवश्यक नमी बनी रहती है।

दलहनी आवरण फसलों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण: दलहनी आवरण फसलें अपनी जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणुओं के साथ सहजीवी संबंध स्थापित कर वायुमंडलीय नाइट्रोजन (N_2) को अमोनियम (NH_4) में परिवर्तित कर मृदा में स्थिर करती हैं। ये फसलें न केवल मिट्टी की उर्वरता बढ़ाती हैं, बल्कि नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता को भी कम करती हैं तथा जैव-भार के माध्यम से नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाती हैं, जो अगली फसल के लिए लाभकारी होती है।

आवरण फसलें क्या हैं?

आवरण फसलें पौधों की ऐसी प्रजातियाँ हैं जिन्हें बाजार में विक्रय के लिए नहीं, बल्कि मिट्टी को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से उगाया जाता है। इन्हें हरी खाद के रूप में भी उपयोग किया जाता है, विशेषकर तब जब इन्हें काटकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। कुछ नकदी फसलें, जैसे गेहूँ, राई तथा लोबिया को भी आवरण फसल के रूप में उगाया जा सकता है, बशर्ते कि उनका उद्देश्य अनाज उत्पादन न होकर जैव द्रव्यमान उत्पादन हो। ऐसी स्थिति में फसल को परिपक्व होने से पहले ही काट लिया जाता है।

प्रमुख आवरण फसलें

- **ठंडे मौसम की फसलें:** शीतकालीन गेहूँ, शीतकालीन राई, जई, सरसों, मटर
- **गर्म मौसम की फसलें:** मूँग, ढेंचा, बाजरा, लोबिया, सोयाबीन, सनई

तालिका 1. आवरण फसलों के प्रकार एवं उनके मिट्टी की उर्वरता, संरचना और स्वास्थ्य पर प्रभाव

क्र.	आवरण फसलों के नाम	आवरण फसलों का मिट्टी के स्वास्थ्य में प्रभाव
1.	क्लोवर (तिपतिया घास)	क्लोवर एक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसल है जो मिट्टी की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार करती है। यह खरपतवारों को दबाने, मिट्टी के कटाव को रोकने और मिट्टी की संरचना को सुधारने में सहायक होती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली वायु संचार को बढ़ावा देती है और जल धारण क्षमता बढ़ाती है, जिससे मिट्टी भविष्य की फसलों के लिए अधिक उपजाऊ बनती है। शोध से पता चलता है कि फसल चक्र में क्लोवर को शामिल करने से मिट्टी में नाइट्रोजन का स्तर प्रति वर्ष 100 किलोग्राम/हेक्टेयर तक बढ़ सकता है (एफ.ए.ओ, 2021)।
2.	सनई	सनई वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने की अपनी क्षमता के लिए प्रसिद्ध है। तेजी से बढ़ने वाली यह फलीदार फसल खरपतवारों को दबाने और मिट्टी के संघनन को कम करने में भी सहायक है। शोध से पता चलता है कि सनई 8 से 12 सप्ताह की वृद्धि के भीतर मिट्टी में लगभग 120-140 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन का योगदान कर सकती है। इसकी गहरी जड़ प्रणाली मिट्टी में वायु संचार को बेहतर बनाती है और जल अंतर्प्रवाह को बढ़ाती है, जिससे यह टिकाऊ खेती के लिए एक आदर्श विकल्प बन जाती है (आई.सी.ए.आर, 2020)।
3.	सरसों	सरसों एक आवरण फसल के रूप में उत्कृष्ट विकल्प है क्योंकि इसमें जैव-धूमनकारी गुण होते हैं। यह ऐसे यौगिक छोड़ती है जो मिट्टी में पनपने वाले कीटों और रोगजनकों को नियंत्रित करने में मदद करते हैं, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है। इसके अलावा, सरसों तेजी से बढ़ती है और पर्याप्त मात्रा में जैव द्रव्यमान उत्पन्न करती है जो मिट्टी में कार्बनिक तत्वों की मात्रा बढ़ाती है और मिट्टी की संरचना में सुधार करती है। शोध से पता चलता है कि सरसों की आवरण फसलें निमेटोड की आबादी को 30-40% तक कम कर सकती हैं जिससे यह किसानों के लिए एक उपयोगी विकल्प बन जाती है (यू.एस.डी.ए, 2019)।
3.	लोबिया	लोबिया एक बहुमुखी दलहन फसल है जो न केवल वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करती है बल्कि मिट्टी की बनावट और नमी बनाए रखने की क्षमता में भी सुधार करती है। इससे उच्च मात्रा में जैव द्रव्यमान प्राप्त होता है, जो मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाता है और सूक्ष्मजीवों की गतिविधि को बढ़ावा देता है। शोध से पता चला है कि लोबिया प्रति हेक्टेयर लगभग 60-100 किलोग्राम नाइट्रोजन मिट्टी में प्रदान कर सकती है यह योगदान कृत्रिम उर्वरकों पर निर्भरता को कम करने और मिट्टी की समग्र उर्वरता में सुधार करने में सहायक होता है (आई.सी.आर.आई.एस.ए.टी, 2020)।

आवरण फसलों द्वारा खरपतवार प्रबंधन

तेजी से बढ़ने वाली और सशक्त आवरण फसलें खरपतवारों के साथ स्थान, प्रकाश, पोषक तत्वों तथा नमी के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा करती हैं। इस प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप, आवरण फसल के जीवन चक्र के दौरान खरपतवारों की वृद्धि 80-100% तक कम हो सकती है। इस प्रकार, आवरण फसलें खरपतवार नियंत्रण का एक प्राकृतिक और टिकाऊ विकल्प प्रदान करती हैं।

- **प्रकाश अवरोधन:** प्रकाश अवरोधन करने वाली आवरण फसलें खरपतवारों को मुख्यतः घनी छाया बनाकर तथा उनके लिए उपलब्ध प्रकाश, जल और पोषक तत्वों को सीमित करके नियंत्रित करती हैं।

ऐसी फसलें (जैसे राई, लोबिया) सूर्य के प्रकाश को खरपतवारों के बीजों तक पहुँचने से रोकती हैं, जिससे उनका अंकुरण बाधित हो जाता है।

ये फसलें भौतिक अवरोध तथा एलिलोपैथिक रसायनों के माध्यम से भी खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित करती हैं। आवरण फसलें घना आवरण बनाकर लगभग 80-100% तक सूर्य प्रकाश को मिट्टी तक पहुँचने से रोक सकती हैं, जिससे खरपतवार बीजों का अंकुरण बाधित होता है। प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए पर्याप्त जैव द्रव्यमान (बायोमास) का उत्पादन आवश्यक होता है। मूली द्वारा खरपतवार दमन मुख्यतः प्रकाश अवरोधन के कारण होता है, न कि एल्लोपैथी के कारण।

- **जल और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा:** आवरण फसलों का रेशेदार और विस्तृत जड़ तंत्र खरपतवारों से पहले जल और पोषक तत्वों का अवशोषण कर लेता है। बाजरा, ज्वार और सोयाबीन जैसी फसलें इस दृष्टि से अत्यंत प्रभावी मानी जाती हैं। आवरण फसलें मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों और जल का तीव्र एवं सघन उपयोग करती हैं, जिससे खरपतवारों के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध नहीं रह पाते। यह प्रतिस्पर्धा, प्रकाश अवरोधन तथा भूमि आवरण के साथ मिलकर खरपतवार बीजों के अंकुरण को प्रभावी रूप से रोकती है।

जल और पोषक तत्वों के माध्यम से खरपतवार दमन के तंत्र:

- **तीव्र प्रतिस्पर्धा:** राई या क्लोवर जैसी आवरण फसलें तेजी से बढ़ती हैं और अपनी जड़ों के माध्यम से मिट्टी से नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम तथा जल को खरपतवारों से पहले अवशोषित कर लेती हैं।
- **प्रकाश और स्थान का अवरोधन:** घनी और जमीन के निकट उगने वाली आवरण फसलें भूमि को पूर्णतः ढक देती हैं, जिससे खरपतवार बीजों को प्रकाश नहीं मिलता और उनका अंकुरण बाधित होता है।
- **पोषक तत्वों का स्थिरीकरण:** कुछ आवरण फसलें पोषक तत्वों को अपने जैव द्रव्यमान में बांध लेती हैं, जिससे खरपतवारों के अंकुरण के लिए आवश्यक घुलनशील नाइट्रोजन की उपलब्धता कम हो जाती है।
- **एलेलोपैथी प्रभाव:** कुछ आवरण फसलें (जैसे राई) अपने रासायनिक स्रावों के माध्यम से खरपतवार बीजों के अंकुरण को प्राकृतिक रूप से रोकती हैं।
- **मल्लिचंग प्रभाव:** जब आवरण फसलों को काटा जाता है, तो उनके अवशेष मिट्टी की सतह पर एक परत बनाते हैं, जो नमी को संरक्षित रखते हुए प्रकाश और स्थान को सीमित कर खरपतवारों की वृद्धि को बाधित करती है।

इस प्रकार, आवरण फसलें खरपतवार नियंत्रण, मृदा संरचना में सुधार तथा खरपतवारनाशकों की लागत में कमी में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

- **एलेलोपैथी:** एलेलोपैथी वह जैविक प्रक्रिया है, जिसमें पौधे कुछ रासायनिक पदार्थ (एलेलोकेमिकल्स) उत्सर्जित करते हैं, जो अन्य पौधों की वृद्धि, अंकुरण और जीवित रहने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों में वृद्धि का अवरोध, जड़ों या तनों को नुकसान, अथवा पौधों का पूर्ण नाश शामिल हो सकता है। कुछ आवरण फसलें प्राकृतिक रसायन (एलेलोकेमिकल्स) छोड़ती हैं, जो खरपतवारों के अंकुरण और वृद्धि को रोकते हैं। इनमें उपस्थित ग्लूकोसिनोलेट्स अपघटन के दौरान आइसोथियोसाइनेट्स में परिवर्तित हो जाते हैं, जो शक्तिशाली एवं वाष्पशील एलेलोकेमिकल्स होते हैं।

एलेलोकेमिकल्स मिट्टी में निम्न माध्यमों से प्रवेश करते हैं:

- ❖ जीवित पौधों की जड़ों से स्राव द्वारा
- ❖ वर्षा जल के माध्यम से पत्तियों और टहनियों से बहकर
- ❖ सड़ते हुए पौधों के अवशेषों से

कुछ एलेलोकेमिकल्स इतने शक्तिशाली होते हैं कि उन्हें प्राकृतिक खरपतवारनाशक के रूप में भी माना जाता है।

एलेलोपैथिक प्रभाव वाली प्रमुख फसलें:

ब्रासिका परिवार की फसलें (जैसे रेपसीड, सरसों, मूली) में ग्लूकोसिनोलेट्स पाए जाते हैं, जो अपघटन के दौरान आइसोथियोसाइनेट्स में परिवर्तित होकर खरपतवारों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

इन एलेलोकेमिकल्स का प्रभाव केवल पौधों तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि यह मृदा सूक्ष्मजीवों की गतिविधियों को भी प्रभावित कर सकता है। प्रमुख एलेलोपैथिक आवरण फसलें: शीतकालीन राई, अन्य शीतकालीन अनाज, ज्वार, ज्वार-सुडानग्रास संकर, लाबलाब बीन, रेपसीड, राई, सरसों, बकव्हीट तथा अन्य ब्रासिका फसलें।

मल्लिचंग:

जब तापमान में अत्यधिक उतार-चढ़ाव, कटाई या रोलिंग के कारण आवरण फसल नष्ट हो जाती है, तब उसके अवशेष मिट्टी की सतह पर मल्लिच के रूप में रह जाते हैं। ये अवशेष कुछ समय तक खरपतवारों की वृद्धि को बाधित करते हैं।

मल्लिच मिट्टी की सतह को छायादार और ठंडा बनाए रखता है तथा दैनिक तापमान में होने वाले उतार-चढ़ाव को कम करता है, जिससे खरपतवार बीजों का अंकुरण बाधित होता है। छोटे बीज वाले चौड़ी पत्ती के खरपतवार, जो अंकुरित होते हैं, अक्सर 2-3 इंच मोटी आवरण फसल अवशेषों की परत द्वारा प्रभावी रूप से दबा दिए जाते हैं। हालांकि, बड़े बीज वाले चौड़ी पत्ती के पौधे, घास के पौधे तथा प्रकंद एवं कंदों से उत्पन्न बारहमासी खरपतवार अंततः ऊपर आ सकते हैं, परंतु उच्च जैव द्रव्यमान के कारण उनकी वृद्धि भी धीमी हो जाती है।

सड़ते हुए अवशेषों से निकलने वाले एलेलोपैथिक पदार्थ मल्लिच के प्रभाव को और अधिक बढ़ा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, जैविक मल्लिच जमीनी भृंगों, खरपतवार बीजों के प्राकृतिक शिकारियों तथा सूक्ष्मजीवों के लिए आवास प्रदान करता है, जो खरपतवारों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। आवरण फसल अवशेषों द्वारा खरपतवार दमन की अवधि दो सप्ताह से लेकर कई महीनों तक हो सकती है, जो जैव द्रव्यमान, नाइट्रोजन स्तर, मौसम, जलवायु तथा मृदा स्थितियों पर निर्भर करती है। गर्म एवं आर्द्र परिस्थितियाँ अपघटन को तेज करती हैं, जिससे खरपतवार नियंत्रण की अवधि कम हो सकती है।

मृदा सूक्ष्मजीव समुदायों पर प्रभाव:

प्रत्येक पौधे की प्रजाति अपनी जड़ों के माध्यम से कार्बोहाइड्रेट, अमीनो एसिड, कार्बनिक अम्ल तथा अन्य एलेलोकेमिकल्स का मिश्रण उत्सर्जित करती है। यह जैवरासायनिक मिश्रण पौधे के राइजोस्फीयर (जड़ों के निकट मृदा क्षेत्र) में एक विशिष्ट सूक्ष्मजीवी समुदाय (माइक्रोफ्लोरा) का निर्माण और पोषण करता है, जिसमें कवक, जीवाणु, प्रोटोजोआ तथा अन्य सूक्ष्मजीव शामिल होते हैं।

यह सूक्ष्मजीवी समुदाय विभिन्न पौधों की प्रजातियों के लिए

सहायक, बाधक या रोगजनक भी हो सकता है। एक मजबूत आवरण फसल, जिसकी जड़ प्रणाली विस्तृत होती है और जिसमें खरपतवारों के लिए हानिकारक सूक्ष्मजीव उपस्थित होते हैं, अतिरिक्त खरपतवार नियंत्रण में सहायक होती है।

उदाहरण के लिए, अधिकांश अनाज और दलहनी आवरण फसलें माइकोराइजल कवकों के लिए अनुकूल मेजबान होती हैं, जो पौधों की वृद्धि को बढ़ाते हैं। इसके विपरीत, कई प्रमुख खरपतवार (जैसे पिगवीड, लैम्ब्सक्वार्टर्स, नटसेज, पर्सलेन) माइकोराइजा से अधिक लाभ प्राप्त नहीं करते, और यदि उनकी जड़ों में माइकोराइजल संक्रमण होता है, तो उनकी वृद्धि बाधित हो सकती है। पौधों के स्राव तथा पौध-सूक्ष्मजीव अंतःक्रियाएँ मिट्टी में विभिन्न सूक्ष्मजीवों की संरचना को प्रभावित करती हैं, जिसका प्रभाव अन्य पौधों पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए, क्रूसिफेरस परिवार की फसलें (जैसे ब्रासिका, जंगली सरसों) द्वारा छोड़े गए ग्लूकोसिनोलेट्स

और आइसोथियोसाइनेट्स कुछ मृदा कवकों, जिनमें रोगजनक भी शामिल हैं, को बाधित कर सकते हैं।

क्रूसिफेरस और अन्य गैर-माइकोराइजल पौधे, यद्यपि सीधे माइकोराइजा के लिए विपैले नहीं होते, लेकिन वे सक्रिय माइकोराइजल कवकों की उच्च संख्या को समर्थन नहीं देते, जो प्रायः दलहनी फसलों के बाद मिट्टी में अधिक पाई जाती हैं।

- **मृदा में कार्बन-नाइट्रोजन संतुलन:** उच्च कार्बन-नाइट्रोजन (C:N) अनुपात वाली फसलें, मृदा सूक्ष्मजीवों द्वारा उपयोग किए जाने पर उपलब्ध नाइट्रोजन को अस्थायी रूप से 'बांध' देती हैं। इससे खरपतवारों के लिए आवश्यक नाइट्रोजन की उपलब्धता कम हो जाती है और उनकी वृद्धि धीमी पड़ जाती है।



चित्र 1: नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली फसल (ढेंचा)

आवरण फसलें मिट्टी की सेहत कैसे सुधारती हैं?

आवरण फसलें मिट्टी के जैविक, रासायनिक और भौतिक गुणों में समग्र सुधार करती हैं। बढ़ती अवस्था के दौरान ये अपनी जड़ों के माध्यम से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों को ऊर्जा प्रदान करती हैं। कटाई के पश्चात इनका जैव द्रव्यमान मिट्टी में मिलकर कार्बन की मात्रा को बढ़ाता है। कार्बन की वृद्धि से मिट्टी का खाद्य जाल सुदृढ़ होता है। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी की संरचना में सुधार होता है, जल धारण क्षमता बढ़ती है तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है। मिट्टी के स्वास्थ्य के चार बुनियादी सिद्धांतों में योगदान देने के अतिरिक्त, आवरण फसलें अनेक विशिष्ट तरीकों से मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाती हैं और संभावित रूप से कृषि उत्पादकता में भी वृद्धि करती हैं।

1. **मृदा जीवों के लिए भोजन का स्रोत:** आवरण फसलें विभिन्न प्रकार के मृदा जीवों को भोजन प्रदान करती हैं। मिट्टी में पाए जाने वाले अधिकांश कवक और जीवाणु फसलों के लिए लाभकारी होते हैं। इनमें से कई सूक्ष्मजीव पौधों की जड़ों द्वारा उत्सर्जित कार्बोहाइड्रेट पर निर्भर रहते हैं। इसके बदले में, ये सूक्ष्मजीव नाइट्रोजन, फॉस्फोरस

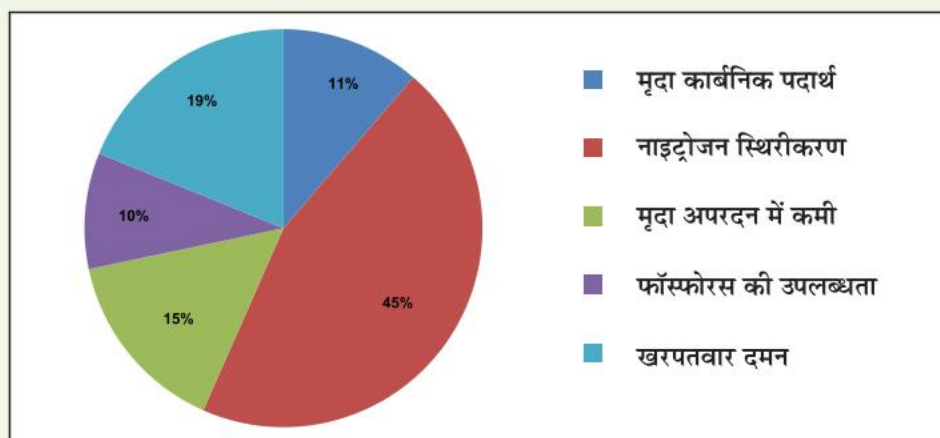
जैसे पोषक तत्वों का पौधों की जड़ों के साथ आदान-प्रदान करते हैं। आवरण फसलें सीधे कवकों और जीवाणुओं को पोषण प्रदान करती हैं, जबकि अन्य मृदा जीव जैसे केंचुए और आश्रीपोड (कीट एवं छोटे क्रस्टेशियन, जैसे "रोली-पॉली") इन सूक्ष्मजीवों का उपभोग करते हैं। इस प्रकार, आवरण फसलें पूरे वर्ष मृदा खाद्य जाल को सक्रिय और संतुलित बनाए रखने में सहायक होती हैं।

2. **केंचुओं की संख्या में वृद्धि:** मिट्टी में रहने वाले जीवों में केंचुए सबसे आसानी से दिखाई देने वाले जीव हैं। आवरण फसलें लगाने से केंचुओं की संख्या ही नहीं, बल्कि उनकी प्रजातीय विविधता में भी उल्लेखनीय वृद्धि होती है। कुछ केंचुए, जैसे नाइट्रॉलर, लंबवत (वर्टिकल) सुरंगें बनाते हैं, जबकि अन्य, जैसे रेडवर्म, क्षैतिज (होरिजेंटल) सुरंगें बनाते हैं। ये दोनों प्रकार की सुरंगें पौधों की जड़ों के लिए मार्ग प्रदान करती हैं तथा वर्षा जल और वायु के मिट्टी में प्रवेश को सुगम बनाती हैं।
3. **मिट्टी में कार्बन और कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि:** सभी पौधों की भाँति, आवरण फसलें भी सूर्य के प्रकाश और कार्बन डाइऑक्साइड

का उपयोग कर कार्बन-आधारित यौगिकों का निर्माण करती हैं। इस प्रक्रिया से मिट्टी में कार्बन की मात्रा बढ़ती है। इस कार्बन का एक भाग मृदा जीवों द्वारा शीघ्र चक्रित हो जाता है, जबकि शेष भाग धीरे-धीरे ह्यूमिक पदार्थों में परिवर्तित होकर मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ का निर्माण करता है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का उच्च स्तर पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा नमी संरक्षण दोनों को बेहतर बनाता है।

4. **मृदा पोषक तत्वों के प्रबंधन में योगदान:** आवरण फसलें मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाकर धीरे-धीरे उर्वरकों की आवश्यकता को कम कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, वे फसल कटाई के बाद बचे हुए पोषक तत्वों विशेषकर नाइट्रोजन को अवशोषित कर अपने भीतर संचित कर लेती हैं। उदाहरणस्वरूप, मक्का की फसल के बाद खेत में बचा हुआ नाइट्रोजन आवरण फसल द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है, जिससे वह नदियों, झीलों या भूजल में बहने से बच जाता है। बाद में, यह नाइट्रोजन अगले मौसम में मुक्त होकर आगामी नकदी फसलों के लिए उपलब्ध हो जाता है।
5. **मिट्टी को ढककर संरक्षण प्रदान करना:** जब मिट्टी खुली रहती है, विशेषकर वर्षा के दौरान, तो कटाव की संभावना बढ़ जाती है तथा सतह पर कठोर परत बन सकती है। गर्मियों में सीधी धूप के कारण मिट्टी का तापमान अत्यधिक बढ़ सकता है कुछ स्थितियों में यह 140°F (लगभग 60°C) तक पहुँच सकता है जो मृदा जीवों को नष्ट कर सकता है और नमी के तीव्र वाष्पीकरण का कारण बनता है। राई जैसी आवरण फसल के अवशेष मिट्टी की सतह को ढककर रखते हैं, जिससे मिट्टी अत्यधिक गर्म होने से बचती है और नकदी फसलों की स्थापना के दौरान संरक्षण प्रदान होता है।
6. **जैव विविधता में वृद्धि:** सामान्यतः, खेत में पौधों की विविधता जितनी अधिक होती है और जीवित जड़ों की उपस्थिति जितनी लंबी अवधि तक रहती है, मिट्टी में जीवों की जैव विविधता उतनी ही अधिक होती है। आवरण फसलों का मिश्रण उगाना या फसल चक्र में विभिन्न प्रकार की आवरण फसलें शामिल करना जैसे सोयाबीन से पहले अनाज राई तथा मक्का से पहले जई, मूली या लाल तिपटिया घास जैव विविधता को बढ़ाने में सहायक होता है।

7. **मृदा वायुसंचार और जल अवशोषण में सुधार:** मिट्टी में वर्षा जल के प्रवेश के लिए मार्ग केवल केंचुए ही नहीं बनाते, बल्कि आवरण फसलों की जड़ें भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह विशेष रूप से उन परिस्थितियों में अधिक प्रभावी होता है, जहाँ जुताई न्यूनतम होती है। अतिरिक्त वर्षा जल का मिट्टी में समुचित अवशोषण फसल उत्पादन को प्रभावित कर सकता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ भारी वर्षा के बाद लंबे समय तक सूखा पड़ता है। आवरण फसलों की जड़ों और केंचुओं द्वारा उत्पन्न वायुसंचार से पौधों की जड़ों तथा अन्य मृदा जीवों को भी लाभ होता है।
8. **मृदा संघनन में कमी और संरचना में सुधार:** भारी कृषि उपकरणों के उपयोग से मिट्टी का संघनन (compaction) एक सामान्य समस्या है। इसका पारंपरिक समाधान अधिक जुताई रहा है, परंतु यह केवल अल्पकालिक लाभ देता है और दीर्घकाल में समस्या को बढ़ा सकता है। अत्यधिक जुताई से मिट्टी की संरचना नष्ट हो जाती है, जबकि आवरण फसलें और उनसे जुड़े सूक्ष्मजीव मिट्टी के कणों को जोड़ने वाला गोंद (ग्लोमालिन) उत्पन्न करते हैं, जिससे बेहतर संरचना और स्थायित्व प्राप्त होता है। शोध से यह भी स्पष्ट हुआ है कि आवरण फसलें, विशेषकर केंचुओं की सहायता से, सघन मिट्टी को सबसॉइलिंग उपकरणों की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से ढीला कर सकती हैं, जिनमें अधिक ऊर्जा (डीजल) की आवश्यकता होती है।
9. **मिट्टी के कटाव और नुकसान में कमी:** कई ढलान वाले क्षेत्रों में, खेती शुरू होने के बाद से ऊपरी मिट्टी का एक बड़ा भाग नष्ट हो चुका है। कृषि की स्थिरता और खाद्य सुरक्षा इस बात पर निर्भर करती है कि शेष उपजाऊ मिट्टी को सुरक्षित रखा जाए। आवरण फसलें मिट्टी के कटाव को रोकने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती हैं। बिना जुताई (no-till) के साथ आवरण फसलों का उपयोग करने पर, पारंपरिक मक्का-सोयाबीन प्रणाली की तुलना में मिट्टी का कटाव काफी कम हो जाता है। हल्की जुताई की स्थिति में भी आवरण फसलों वाले खेत अधिक सुरक्षित रहते हैं, विशेषकर राई जैसी शीतकालीन आवरण फसलों के साथ।



चित्र 2: आवरण फसलों का मृदा और फसल उत्पादकता पर प्रभाव

आवरण फसलें मिट्टी की उर्वरता कैसे बढ़ाती हैं?

सभी आवरण फसलें पोषक तत्वों के चक्रण में सहायक होती हैं, लेकिन दलहनी आवरण फसलें विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। दलहनी फसलें, जैसे तिपतिया घास, मटर और लोबिया, अपनी जड़ों में राइजोबियम जीवाणुओं के साथ सहजीवी संबंध बनाकर गांठें विकसित करती हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के उपयोग योग्य रूप में परिवर्तित करती हैं। एक स्वस्थ दलहनी आवरण फसल लगभग 56-168 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन स्थिर कर सकती है। यह नाइट्रोजन अगली नकदी फसल की आवश्यकताओं को काफी हद तक पूरा कर सकती है, बशर्ते कि आवरण फसल को उचित समय पर मिट्टी में मिला दिया जाए।

फसल चक्र में आवरण फसलों का समावेश: किसानों के लिए लंबे समय से यह एक सामान्य प्रथा रही है कि वे प्रत्येक खेत में उगाई जाने वाली फसलों को व्यवस्थित रूप से बदलते रहें। इस फसल चक्र से उत्पादन में महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं, जैसे कि सोयाबीन जैसी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली फसलों को शामिल करके मिट्टी के पोषक तत्वों में सुधार करना, या ज्वार तथा विभिन्न प्रकार की घासों जैसी अधिक अवशेष देने वाली फसलों के माध्यम से मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाना। फसल चक्र अपनाने से कीटों के जीवन चक्र को बाधित करने में भी सहायता मिलती है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता कम हो जाती है। संरक्षण-आधारित फसल चक्र, विशेष रूप से वे जिनमें आवरण फसलें शामिल होती हैं, ऐसी उत्पादन प्रणालियाँ हैं जिन्हें पर्यावरणीय लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से योजनाबद्ध किया जाता है। इन लाभों में मिट्टी के कटाव में कमी, कार्बन पृथक्करण में वृद्धि, वन्यजीवों के आवास में सुधार तथा जल गुणवत्ता का संरक्षण शामिल है।

आवरण फसलों को फसल चक्र में विभिन्न तरीकों से शामिल किया जा सकता है:

- **बहुवर्षीय फसल चक्र:** हर 2-4 वर्षों में एक बार आवरण फसल का समावेश
- **अल्पकालीन आवरण फसलें:** कुट्टू (Buckwheat) जैसी फसलें, जो 30-45 दिनों में तैयार हो जाती हैं
- **सर्दियों की आवरण फसलें:** खेत के खाली रहने की स्थिति में विशेष रूप से उपयोगी

6. आवरण फसलों को हटाने और मिट्टी में मिलाने की विधियाँ

आवरण फसलों को हटाने और मिट्टी में मिलाने के लिए मुख्यतः यांत्रिक (जुताई, कटाई) और रासायनिक विधियों का उपयोग किया जाता है। आदर्श रूप से कटाई फूल आने से ठीक पहले करनी चाहिए, जब तने अधिक कठोर नहीं होते और पोषक तत्वों की मात्रा अधिकतम होती है। इसके बाद फसल को रोटोवेटर से काटकर मिट्टी में मिला दिया जाता है या मलच के रूप में सतह पर छोड़ दिया जाता है, जिससे जैविक कार्बन में वृद्धि होती है। अवशेषों को मिट्टी में मिलाने के बाद, मुख्य फसल बोने से पहले 2-4 सप्ताह का समय देना आवश्यक होता है, ताकि वे उचित रूप से अपघटित हो सकें। यह प्रक्रिया मिट्टी की संरचना में सुधार करने में सहायक होती है।

- **यांत्रिक विधि:** ये विधि बिना रसायनों के आवरण फसल को हटाने के लिए सुरक्षित और प्रभावी मानी जाती हैं।
 - ◆ **रोटावेटर/जुताई:** सबसे सामान्य विधि, जिसमें हरी फसल को रोटोवेटर या हल की सहायता से मिट्टी में जोत दिया जाता है। इससे फसल का अपघटन तेज होता है।
 - ◆ **घास काटने की मशीन/रोलर-क्रिम्पर:** इस तकनीक में पौधों को काटा या कुचला जाता है, जिससे वे सतह पर सूखकर “मलच की परत” बना लेते हैं। यह परत खरपतवारों को दबाती है और मिट्टी की नमी को संरक्षित रखती है।
 - ◆ **शारीरिक कटाई:** छोटे पैमाने पर, फसलों को फूल आने से पहले काटकर कम्पोस्ट के रूप में उपयोग किया जा सकता है।
- **रासायनिक विधि:** शाकनाशी का प्रयोग: जब जुताई नहीं करनी हो, तब बसंत ऋतु में शाकनाशी का उपयोग करके आवरण फसल को नष्ट किया जाता है। इसके बाद फसल के अवशेष खेत में ही बने रहते हैं, जो बिना जुताई प्रणाली में सहायक होते हैं।
- **प्राकृतिक विधि:** कुछ फसलें (जैसे जई और सरसों) अत्यधिक ठंड के कारण स्वतः नष्ट हो जाती हैं। बसंत ऋतु में इनके सूखे अवशेषों को आसानी से मिट्टी में मिलाया जा सकता है या सतह पर ही छोड़ दिया जाता है।
- **मल्लिचंग:** इस विधि में फसलों को काटकर या रोल करके मिट्टी की सतह पर छोड़ दिया जाता है, जिससे वे धीरे-धीरे जैविक खाद में परिवर्तित हो जाती हैं।

निष्कर्ष: आवरण फसलें आधुनिक एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। ये न केवल मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करती हैं, बल्कि खरपतवार नियंत्रण, उर्वरता वृद्धि, जल संरक्षण तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। रासायनिक उर्वरकों और शाकनाशियों पर निर्भरता कम करके, आवरण फसलें किसानों को कम लागत के साथ दीर्घकालिक लाभ प्रदान करती हैं। अतः, यदि किसान अपनी कृषि प्रणाली में आवरण फसलों को योजनाबद्ध ढंग से शामिल करें, तो वे उत्पादक, लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल खेती की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठा सकते हैं। आवरण फसलें आधुनिक कृषि की एक क्रांतिकारी पद्धति के रूप में उभर रही हैं, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने, खरपतवार नियंत्रण और मृदा स्वास्थ्य सुधारने में प्रभावी हैं। क्लोवर, सरसों और लोबिया जैसी फसलें नाइट्रोजन स्थिरीकरण (60-168 किग्रा/हेक्टेयर), एलिलोपैथी तथा मल्लिचंग के माध्यम से रासायनिक इनपुट पर निर्भरता को कम करती हैं, मिट्टी के कटाव को रोकती हैं तथा जैव विविधता को बढ़ावा देती हैं। फसल चक्र में इनके समावेश से पैदावार में 20-30% तक वृद्धि देखी गई है। भारत में बढ़ते मृदा क्षरण के परिप्रेक्ष्य में, आवरण फसलें टिकाऊ कृषि का एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती हैं। अतः सरकार को सब्सिडी, प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से इनके उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि कृषि विकास का एक नया और सतत अध्याय स्थापित किया जा सके।



प्राकृतिक खेती में समेकित खरपतवार प्रबंधन

सुरभि होता, जीतेन्द्र कुमार सोनी, के.के. बर्मन एवं योगिता घरडे

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्रस्तावना

प्राकृतिक खेती प्रणालियों में खरपतवार प्रबंधन एक महत्वपूर्ण चुनौती है क्योंकि इसमें रासायनिक शाकनाशियों का उपयोग नहीं किया जाता। ऐसे में खरपतवारों का पूर्ण उन्मूलन लक्ष्य नहीं होता, बल्कि उनकी संख्या को आर्थिक हानि की सीमा से नीचे रखना होता है। समेकित खरपतवार प्रबंधन इस दिशा में एक प्रभावी, टिकाऊ और पारिस्थितिक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो विभिन्न विधियों के समन्वित उपयोग पर आधारित है।

प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन का दृष्टिकोण: प्राकृतिक खेती में खरपतवारों को केवल हानिकारक तत्व नहीं माना जाता, बल्कि उन्हें मृदा स्वास्थ्य के संकेतक के रूप में भी समझा जाता है। यह दृष्टिकोण खरपतवार नियंत्रण को एक ज्ञान-आधारित प्रक्रिया बनाता है, जिसमें मृदा, फसल और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है।

समेकित खरपतवार प्रबंधन के प्रमुख घटक

निवारक उपाय

निवारक उपाय समेकित खरपतवार प्रबंधन की आधारशिला हैं, क्योंकि इनका उद्देश्य खरपतवारों को नियंत्रित करने के बजाय उनके प्रवेश और स्थापना को ही रोकना होता है। प्राकृतिक खेती में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि एक बार खरपतवार स्थापित हो जाने पर उन्हें बिना रसायनों के नियंत्रित करना अधिक श्रमसाध्य हो जाता है। इस संदर्भ में शुद्ध एवं खरपतवार-मुक्त बीजों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि बीजों के माध्यम से अनेक खरपतवार प्रजातियाँ खेत में प्रवेश करती हैं। बीज उत्पादन, भंडारण और बुवाई के दौरान सावधानी बरतना इस जोखिम को कम करता है।



इसी प्रकार, खेत में प्रयुक्त जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, घनजीवामृत आदि का पूर्ण रूप से सड़ा होना आवश्यक है। अधपकी खाद में खरपतवार बीज जीवित रह सकते हैं, जो खेत में पुनः अंकुरित होकर समस्या उत्पन्न करते हैं। उचित तापमान, नमी और समय के साथ तैयार की गई खाद न केवल खरपतवार बीजों को नष्ट करती है, बल्कि मृदा सूक्ष्मजीवों को भी सक्रिय बनाती है।

कृषि यंत्रों, ट्रैक्टरों और अन्य उपकरणों की सफाई भी एक महत्वपूर्ण निवारक उपाय है, क्योंकि ये अक्सर एक खेत से दूसरे खेत में मिट्टी और खरपतवार बीजों को ले जाते हैं। इसी प्रकार, खेत की मेढ़ों, सिंचाई नालियों और आस-पास के क्षेत्रों की नियमित सफाई आवश्यक है, क्योंकि ये स्थान खरपतवारों के भंडार के रूप में कार्य करते हैं। अंततः, खरपतवारों को फूल आने और बीज बनने से पहले ही हटाना दीर्घकालिक नियंत्रण के लिए अत्यंत प्रभावी है, क्योंकि इससे मृदा में बीज भंडार धीरे-धीरे समाप्त होता है।

सस्य विधियाँ

❖ **स्टेल सीडबेड तकनीक:** स्टेल सीडबेड तकनीक प्राकृतिक खेती में एक अत्यंत प्रभावी और सरल विधि है, जिसका उद्देश्य बुवाई से पहले ही खरपतवारों की संख्या को कम करना है। इसमें खेत की प्रारंभिक तैयारी के बाद हल्की सिंचाई की जाती है, जिससे मिट्टी की सतह पर उपस्थित खरपतवारों के बीज अंकुरित हो जाते हैं। लगभग 2-3 सप्ताह बाद इन उगे हुए खरपतवारों को हल्की जुताई या उथली निराई द्वारा नष्ट कर दिया जाता है, बिना मिट्टी को पलटे हुए। इस प्रक्रिया से प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार प्रतिस्पर्धा कम हो जाती है और फसल को बेहतर स्थापना का अवसर मिलता है।



चित्र 1. (अ) स्टेल सीडबेड तकनीक के अंतर्गत खरपतवारों का उद्भव तथा (ब) उथली जुताई द्वारा खरपतवारों का समावेशन

- ❖ **फसल चक्र:** फसल चक्र एक दीर्घकालिक रणनीति है, जिसमें विभिन्न फसलों को क्रमवार उगाया जाता है। इससे खरपतवारों के जीवन चक्र में व्यवधान उत्पन्न होता है, क्योंकि प्रत्येक फसल की वृद्धि अवधि, पोषक तत्वों की आवश्यकता, और प्रबंधन विधियाँ भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, एक ही प्रकार की फसल को लगातार उगाने से विशेष खरपतवार प्रजातियाँ विकसित हो जाती हैं, जबकि फसल चक्र अपनाने से उनका प्रभुत्व कम होता है। यह विधि विशेष रूप से परजीवी खरपतवारों के नियंत्रण में प्रभावी होती है।



- ❖ **अंतरफसली खेती:** अंतरफसली प्रणाली में एक ही खेत में दो या दो से अधिक फसलों को एक साथ उगाया जाता है, जिससे संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है और खरपतवारों के लिए उपलब्ध स्थान और पोषक तत्व कम हो जाते हैं। विशेष रूप से दलहनी फसलों को मुख्य फसल के साथ शामिल करने से भूमि की सतह जल्दी ढक जाती है, जिससे प्रकाश की उपलब्धता कम होती है और खरपतवारों का अंकुरण व वृद्धि बाधित होती है। यह प्रणाली न केवल खरपतवार नियंत्रण में सहायक है, बल्कि मृदा उर्वरता को भी बढ़ाती है।



चित्र 2. (अ) मल्लिचंग के साथ जौ-चना अंतरफसली प्रणाली तथा (ब) मल्लिचंग के बिना जौ-चना अंतरफसली प्रणाली

- ❖ **आच्छादन:** आच्छादन एक अत्यंत प्रभावी सांस्कृतिक तकनीक है, जिसमें मिट्टी की सतह को फसल अवशेष, भूसा, पत्तियाँ या अन्य जैविक पदार्थों से ढक दिया जाता है। इससे खरपतवार बीजों को प्रकाश नहीं मिलता, जो उनके अंकुरण के लिए आवश्यक होता है। साथ ही, आच्छादन मिट्टी की नमी को संरक्षित करता है, तापमान को

संतुलित करता है, और मृदा संरचना को सुधारता है। दीर्घकाल में यह मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाकर सूक्ष्मजीव गतिविधि को भी प्रोत्साहित करता है, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है।



चित्र 3. (अ) पूर्व फसल अवशेषों को मल्लिच के रूप में उपयोग करते हुए चना तथा (ब) गेहूँ की फसलों

- ❖ **सैसबानिया (हरी खाद) का उपयोग:** सैसबानिया जैसी हरी खाद वाली फसलें प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन का एक प्रभावी साधन हैं। ये फसलें तेजी से बढ़कर भूमि की सतह को ढक लेती हैं, जिससे खरपतवारों को प्रकाश और स्थान नहीं मिलता। इसके

अतिरिक्त, इनमें एलीलोपैथिक गुण भी होते हैं, जो खरपतवारों के अंकुरण को बाधित करते हैं। जब इन्हें मिट्टी में मिला दिया जाता है, तो यह मृदा की उर्वरता, जैविक पदार्थ और सूक्ष्मजीव गतिविधि को बढ़ाते हैं, जिससे फसल की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता और बढ़ जाती है।



चित्र 4. (अ) हरी खाद फसल के रूप में सैसबानिया तथा (ब) मिट्टी में मिलाने के बाद सैसबानिया

यांत्रिक एवं भौतिक विधियाँ

- ❖ **यांत्रिक निराई:** यांत्रिक निराई प्राकृतिक खेती में खरपतवार नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण और त्वरित प्रभाव देने वाला उपाय है। कोनो वीडर, व्हील हो, खुरपी आदि उपकरणों की सहायता से खरपतवारों को जड़ से उखाड़ा या काटा जाता है। यह विधि विशेष रूप से फसल के प्रारंभिक विकास चरण में प्रभावी होती है, जब खरपतवार छोटे होते हैं और आसानी से हटाए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यांत्रिक निराई से मिट्टी में वायु संचार बढ़ता है, जिससे जड़ों का विकास और सूक्ष्मजीव गतिविधि बेहतर होती है।
- ❖ **हाथ से निराई:** हाथ से निराई एक पारंपरिक लेकिन अत्यंत प्रभावी विधि है, विशेष रूप से छोटे खेतों या उच्च मूल्य वाली फसलों के लिए। इसमें खरपतवारों को जड़ सहित निकाल दिया जाता है, जिससे उनके पुनः उगने की संभावना कम हो जाती है। यह विधि फसल के महत्वपूर्ण प्रतिस्पर्धा काल में अत्यधिक उपयोगी होती है। साथ ही, निकाले गए खरपतवारों को खेत में ही मलच के रूप में उपयोग किया जा सकता है, जिससे मृदा में नमी और जैविक पदार्थ बना रहता है।

जैविक एवं पारिस्थितिक विधियाँ

- ❖ **सूक्ष्मजीवों की भूमिका:** मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव खरपतवार प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये जीवाणु, कवक और अन्य सूक्ष्मजीव खरपतवार बीजों के अंकुरण और जीवित रहने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। जैविक पदार्थों से समृद्ध मिट्टी में सूक्ष्मजीव गतिविधि अधिक होती है, जिससे खरपतवार बीजों का विघटन तेजी से होता है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे मृदा में उपस्थित बीज भंडार को कम करती है और दीर्घकालिक नियंत्रण प्रदान करती है।
- ❖ **एलीलोपैथी:** एलीलोपैथी एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कुछ पौधे अपने आसपास के वातावरण में रासायनिक पदार्थ छोड़ते हैं, जो अन्य पौधों, विशेषकर खरपतवारों, की वृद्धि को रोकते हैं। ज्वार, सरसों, और सूरजमुखी जैसी फसलों में यह गुण पाया जाता है। इन फसलों के अवशेष या जड़ स्राव खरपतवारों के अंकुरण और विकास को बाधित करते हैं, जिससे प्राकृतिक रूप से उनका नियंत्रण होता है।
- ❖ **वनस्पति अर्क:** प्राकृतिक खेती में नीम, लैंटाना, यूकेलिप्टस आदि पौधों से तैयार किए गए अर्क का उपयोग खरपतवार प्रबंधन में

सहायक के रूप में किया जाता है। इन अकों में उपस्थित जैव सक्रिय यौगिक खरपतवारों की कोशिका विभाजन, प्रकाश संश्लेषण और वृद्धि प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। ये पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं और मृदा में दीर्घकालिक विषाक्तता नहीं उत्पन्न करते।

- ❖ **चराई द्वारा नियंत्रण:** नियंत्रित चराई एक पारिस्थितिक विधि है, जिसमें पशुओं का उपयोग खरपतवार नियंत्रण के लिए किया जाता है। पशु खरपतवारों को खाकर उनकी वृद्धि और बीज बनने की प्रक्रिया को रोकते हैं। साथ ही, उनके मल-मूत्र से मृदा में पोषक तत्वों की आपूर्ति भी होती है। हालांकि, चराई का समय और तीव्रता नियंत्रित होना आवश्यक है, ताकि फसल को नुकसान न हो और मृदा का संपीड़न न बढ़े।

प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन का समेकित मॉडल

प्राकृतिक खेती में समेकित खरपतवार प्रबंधन एक पिरामिड संरचना पर आधारित होता है, जिसमें निवारक उपाय आधार बनाते हैं, सस्य विधियाँ

मध्य स्तर पर होती हैं, और यांत्रिक एवं जैविक उपाय ऊपरी स्तर पर होते हैं। समय के साथ यह प्रणाली आत्म-नियंत्रित और संतुलित बन जाती है।

प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन के लाभ

समेकित खरपतवार प्रबंधन से मृदा स्वास्थ्य में सुधार, जैव विविधता में वृद्धि, तथा दीर्घकालिक स्थिरता प्राप्त होती है। यह रासायनिक इनपुट पर निर्भरता को कम करता है और पर्यावरण संरक्षण में सहायक होता है।

निष्कर्ष

प्राकृतिक खेती में समेकित खरपतवार प्रबंधन एक समग्र और टिकाऊ रणनीति है, जो विभिन्न विधियों के संयोजन से खरपतवारों को नियंत्रित करती है। यद्यपि प्रारंभिक वर्षों में चुनौतियाँ हो सकती हैं, परंतु दीर्घकाल में यह प्रणाली अधिक स्थिर, उत्पादक और पर्यावरण के अनुकूल सिद्ध होती है।



भारतीय भाषाएं नदियां हैं और हिंदी महानदी।

- रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

- स्वामी दयानंद

खरपतवार नियंत्रण की नई क्रांति: रिमोट सेंसिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रोबोटिक्स का एकीकृत उपयोग

ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह¹, वी.के. चौधरी² एवं जे.एस. मिश्र²

¹भारतीय खरपतवार विज्ञान सोसायटी, भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

खरपतवार प्रबंधन बदलना आवश्यक क्यों है?

खरपतवार कृषि-परिस्थितिकी तंत्र का स्वाभाविक भाग हैं, पर जब वे फसल के साथ एक ही समय और स्थान पर बढ़ते हैं तो प्रतिस्पर्धी बन जाते हैं। वे जड़ों के क्षेत्र से जल और पोषक तत्व लेते हैं, पत्तियों के ऊपर या बीच में फैलकर प्रकाश रोकते हैं, पौधों की वायु-संचार व्यवस्था बदलते हैं और कटाई के समय उपज की गुणवत्ता तथा मशीनों की कार्यक्षमता को प्रभावित करते हैं। कुछ खरपतवार कीटों और रोगजनकों के वैकल्पिक आश्रय भी बनते हैं। इसलिए खरपतवार का प्रभाव केवल “कुछ पौधे खेत में दिखाई देना” नहीं है। यह फसल की शुरुआती वृद्धि, संसाधन-उपयोग दक्षता, उत्पादन लागत, बाजार-गुणवत्ता और अगले मौसम की खरपतवार बीज-बैंक तक फैला हुआ है। वैश्विक स्तर पर खरपतवार, रोग और कीटों के कारण फसल-हानि का परिमाण बहुत बड़ा है, और कई प्रमुख फसलों में खरपतवार अकेले सबसे महत्वपूर्ण जैविक बाधाओं में गिने जाते हैं। भारत में भी भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से जुड़े एक अंतरराष्ट्रीय खरपतवार सम्मेलन में खरपतवार-संबंधित उपज हानि का आर्थिक परिमाण लगभग 11 अरब अमेरिकी डॉलर बताया गया था।

हाथ से निराई-गुड़ाई छोटे खेतों और उच्च मूल्य वाली फसलों में आज भी उपयोगी है, पर यह श्रम-सघन, समय-संवेदी और कई बार महँगी होती है। यांत्रिक निराई तेज हो सकती है, किंतु कतारों के भीतर उगे खरपतवारों, असमान पौध-स्थिति और गीली मिट्टी में इसकी सीमाएँ हैं। शाकनाशी बड़े क्षेत्र में त्वरित नियंत्रण देते हैं, पर पूरे खेत में एक समान छिड़काव उस स्थिति में संसाधन-अक्षम हो सकता है जब खरपतवार केवल कुछ हिस्सों में हों। लगातार एक ही क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों पर निर्भरता चयन-दबाव बढ़ाती है, जिससे प्रतिरोधी जैवप्रकार विकसित हो सकते हैं। अनुचित मात्रा, हवा में बहाव, गलत समय या गलत नोजल से फसल-क्षति और गैर-लक्षित क्षेत्रों में प्रदूषण का जोखिम भी बढ़ता है।

आधुनिक समाधान का उद्देश्य पारंपरिक विधियों को पूरी तरह हटाना नहीं, बल्कि उन्हें अधिक बुद्धिमान बनाना है। रिमोट सेंसिंग खेत की स्थिति को मापता है; एआई उस डेटा का अर्थ निकालता है; रोबोटिक्स या स्मार्ट मशीनें निर्णय को कार्रवाई में बदलती हैं; और पुनः सर्वेक्षण परिणाम की पुष्टि करता है। यही “सेंस-थिंक-एक्ट-वेरिफाई” चक्र सटीक खरपतवार प्रबंधन की मूल संरचना है। इस मॉडल में किसान की भूमिका कम नहीं होती; वह तकनीक का पर्यवेक्षक, निर्णयकर्ता और स्थानीय ज्ञान का स्रोत बनता है।



चित्र 1. सेंस-थिंक-एक्ट-वेरिफाई चक्र: स्मार्ट खरपतवार प्रबंधन की आधारभूत संरचना।

सटीक खरपतवार नियंत्रण की अवधारणा

सटीक खरपतवार नियंत्रण का अर्थ उपचार स्थान-विशिष्ट, समय-विशिष्ट, प्रजाति-विशिष्ट और आवश्यकता-विशिष्ट है। पारंपरिक प्रसारण छिड़काव में खेत के प्रत्येक वर्ग मीटर को समान मात्रा मिलती है, जबकि सटीक प्रणाली पहले पूछती है: खरपतवार कहाँ हैं, कौन-सी प्रजाति या समूह के हैं, घनत्व कितना है, फसल किस अवस्था में है, आर्थिक क्षति की संभावना क्या है, और कौन-सी नियंत्रण विधि सबसे कम लागत तथा जोखिम के साथ पर्याप्त परिणाम देगी।

इस अवधारणा के तीन स्तर हैं। पहला स्तर “पैच प्रबंधन” है, जिसमें खेत को कई प्रबंधन-क्षेत्रों में बाँटकर केवल प्रभावित पैचों का उपचार किया जाता है। दूसरा स्तर “पौधा-स्तर प्रबंधन” है, जहाँ कैमरा प्रत्येक पौधे को फसल या खरपतवार के रूप में पहचानकर नोजल, ब्लेड या लेजर को सक्रिय करता है। तीसरा स्तर “प्रजाति और अवस्था-विशिष्ट

प्रबंधन” है, जिसमें प्रणाली खरपतवार की प्रजाति, आकार और वृद्धि-अवस्था के अनुसार मात्रा, ऊर्जा या यांत्रिक क्रिया चुनती है। तकनीकी जटिलता क्रमशः बढ़ती है, पर संभावित बचत और पर्यावरणीय लाभ भी बढ़ सकते हैं।

सटीकता का अर्थ केवल एआई मॉडल की प्रतिशत-शुद्धता नहीं है। पूरी प्रणाली की सफलता में उड़ान की ऊँचाई, कैमरा-कैलिब्रेशन, प्रकाश, मिट्टी की नमी, फसल-पंक्तियों की स्पष्टता, जीपीएस की त्रुटि, नोजल का प्रतिक्रिया समय, वाहन की गति और उपचार-यंत्र की भौतिक स्थिति सब शामिल हैं। यदि नक्शा सही हो लेकिन स्प्रेयर कुछ सेंटीमीटर गलत स्थान पर सक्रिय हो, तो फसल पर दवा पड़ सकती है। इसलिए “डिजिटल पहचान” और “भौतिक निष्पादन” दोनों की संयुक्त त्रुटि को मापना आवश्यक है।

सारणी 1. सटीक खरपतवार नियंत्रण के स्तर

स्तर	लक्ष्य इकाई	तकनीकी जरूरत	मुख्य लाभ	मुख्य सीमा
पूरे खेत का प्रसारण	संपूर्ण खेत	कम	तेज और सरल संचालन	खरपतवार न होने पर भी इनपुट
पैच-स्तर प्रबंधन	प्रबंधन जोन/पैच	मध्यम	उपचार क्षेत्र और लागत में कमी	मानचित्र और जीपीएस सटीकता
पौधा-स्तर प्रबंधन	एकल पौधा	उच्च	अधिकतम चयनात्मकता	तेज विजन और एक्ट्यूएशन
प्रजाति/अवस्था-विशिष्ट	प्रजाति+वृद्धि अवस्था	बहुत उच्च	विधि और मात्रा का अनुकूलन	स्थानीय डेटा व कृषि सत्यापन

रिमोट सेंसिंग: खेत को बिना छुए पढ़ने की तकनीक

रिमोट सेंसिंग में किसी वस्तु या क्षेत्र के बारे में जानकारी प्रत्यक्ष संपर्क के बिना प्राप्त की जाती है। सूर्य का प्रकाश पौधों पर पड़कर विभिन्न तरंगदैर्घ्यों में परावर्तित होता है, जबकि कुछ सेंसर सक्रिय ऊर्जा भेजकर लौटे संकेत को मापते हैं। इसी स्पेक्ट्रल अंतर पहचान का आधार बनता है।

उपग्रह बड़े क्षेत्र की नियमित निगरानी के लिए उपयोगी हैं। Sentinel और Landsat जैसे कार्यक्रम समय-श्रृंखला डेटा उपलब्ध कराते हैं, जिससे लंबे समय में वनस्पति परिवर्तन, खेत-स्तरीय असमानता और बड़े खरपतवार पैचों का संकेत मिल सकता है। उनकी सीमा यह है कि बहुत छोटे खेत, मिश्रित फसलें, बादल और पिक्सेल में कई प्रकार की वनस्पति होने से पौधा-स्तर पहचान कठिन हो जाती है। फिर भी क्षेत्रीय निगरानी, प्राथमिकता निर्धारण और बड़े पैचों की खोज में उपग्रह महत्वपूर्ण हैं।

ड्रोन, या UAV, खेत स्तर पर अधिक लचीला मंच है। उड़ान ऊँचाई और कैमरा के अनुसार सेंटीमीटर स्तर तक स्थानिक विभेदन प्राप्त

किया जा सकता है। किसान या सेवा प्रदाता आवश्यकता के समय उड़ान कर सकता है, इसलिए बादल, वृद्धि अवस्था और नियंत्रण की समय-सीमा के अनुसार डेटा संग्रह संभव है। ड्रोन से प्राप्त कई ओवरलैपिंग तस्वीरों को फोटोग्रामेट्री सॉफ्टवेयर ऑर्थोमोजेक में जोड़ता है। यह एक ज्यामितीय रूप से सुधारा गया खेत-चित्र होता है, जिस पर स्थान, क्षेत्रफल और दूरी मापी जा सकती है।

ट्रैक्टर या स्प्रेयर पर लगे ग्राउंड सेंसर वास्तविक समय में पौधों को देखते हुए उसी क्षण उपचार कर सकते हैं। इनके लिए अलग मानचित्र आवश्यक नहीं होता, लेकिन वाहन की गति के साथ तेज प्रोसेसिंग चाहिए। हाथ में पकड़े जाने वाले सेंसर छोटे पैमाने की जाँच, प्रशिक्षण डेटा और मॉडल सत्यापन के लिए उपयोगी हैं। जमीन पर चलने वाले रोबोट बहुत निकट से उच्च-विवरण चित्र लेते हैं, जिससे छोटी पत्तियों, तनों और पौध-आकृति की पहचान बेहतर हो सकती है। इस प्रकार प्लेटफॉर्म चयन का नियम सरल है: बड़े क्षेत्र के लिए व्यापक कवरेज, पौधा-स्तर कार्रवाई के लिए अधिक निकट और उच्च-विभेदन डेटा।

सारणी 2. रिमोट सेंसिंग प्लेटफॉर्मों की तुलना

प्लेटफॉर्म	सामान्य पैमाना	प्रमुख शक्ति	उपयुक्त उपयोग	मुख्य सीमा
उपग्रह	क्षेत्र/जिला	नियमित और व्यापक कवरेज	बड़े पैच, समय-श्रृंखला	छोटे खेत व मिश्रित पिक्सेल
ड्रोन (यूएवी)	खेत	उच्च विभेदन, मांग पर उड़ान	पैच और पौध-स्तर मानचित्रण	उड़ान, मौसम और प्रसंस्करण
ट्रैक्टर/स्प्रेयर सेंसर	पंक्ति/रियल टाइम	देखते ही उपचार	ऑन-द-गो स्पॉट स्प्रे	गति और विलंब समन्वय
ग्राउंड रोबोट	पौधे के निकट	अत्यधिक विवरण और दोहराव	पौधा-स्तर कार्रवाई	क्षमता, बैटरी, भू-भाग
हैंडहेल्ड सेंसर	नमूना बिंदु	सस्ता सत्यापन	ग्राउंड ट्रुथ और प्रशिक्षण डेटा	कम क्षेत्र कवरेज

सेंसर, कैमरे और उनके उपयोग

RGB कैमरा लाल, हरे और नीले रंग की सूचना रिकॉर्ड करता है। यह सबसे सस्ता और आसानी से उपलब्ध विकल्प है। रंग, आकार, किनारा, बनावट और पंक्ति-स्थिति जैसे संकेतों से फसल-खरपतवार वर्गीकरण किया जा सकता है। इसकी मुख्य सीमा बदलता प्रकाश है: सुबह-शाम की छाया, बादल, मिट्टी की चमक और पत्तियों पर पानी मॉडल को भ्रमित कर सकते हैं। उचित एक्सपोजर, स्थिर उड़ान, रंग-कैलिब्रेशन और विविध प्रशिक्षण डेटा से यह समस्या घटाई जा सकती है।

मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरे दृश्य बैंडों के साथ निकट-अवरक्त और कई बार रेड-एज बैंड रिकॉर्ड करते हैं। पौधों की हरितता, जैवभार और क्लोरोफिल से जुड़े सूचकांक निकालने में यह उपयोगी हैं। जब फसल और खरपतवार रंग में समान दिखते हों, तब अतिरिक्त स्पेक्ट्रल सूचना पहचान सुधार सकती है। एक 2024 अध्ययन में मक्का के यूएवी डेटा पर उच्च-स्तरीय और कम लागत वाले मल्टीस्पेक्ट्रल सिस्टम की तुलना की गई (यू-नेट आधारित वर्गीकरण में उच्च-स्तरीय सेंसर के लिए खरपतवार वर्ग का F1 लगभग 82 प्रतिशत और कम लागत वाले सिस्टम के लिए लगभग 76 प्रतिशत रहा, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि किफायती सेंसर

उपयोगी हो सकते हैं, पर छोटे खरपतवार और ओवरलैप वाली स्थितियाँ चुनौतीपूर्ण रहती हैं।

हाइपरस्पेक्ट्रल सेंसर दर्जनों या सैकड़ों संकीर्ण बैंड मापते हैं। वे प्रजाति-विशिष्ट सूक्ष्म अंतर पकड़ सकते हैं, लेकिन डेटा आकार, लागत, कैलिब्रेशन और विश्लेषण जटिल है। थर्मल कैमरे पत्ती और मिट्टी के तापमान का अंतर मापते हैं; वे जल-तनाव या वाष्पोत्सर्जन से जुड़े संकेत दे सकते हैं, पर खरपतवार पहचान में प्रायः अन्य सेंसरों के साथ उपयोग किए जाते हैं। LiDAR लेजर पल्स से दूरी मापकर पौधों और सतह का त्रि-आयामी मॉडल बनाता है। पौध ऊँचाई, कैनोपी संरचना और पंक्ति-ज्यामिति के लिए यह उपयोगी है, किंतु लागत और प्रसंस्करण की जरूरत अधिक होती है।

व्यावहारिक चुनाव “सबसे उन्नत सेंसर” नहीं, बल्कि “समस्या के लिए पर्याप्त सेंसर” होना चाहिए। शुरुआती अवस्था की स्पष्ट कतार वाली फसल में RGB कैमरा पर्याप्त हो सकता है। घनी कैनोपी, मिश्रित खरपतवार या प्रजाति-स्तर वर्गीकरण में मल्टीस्पेक्ट्रल अथवा हाइपरस्पेक्ट्रल लाभकारी हो सकते हैं। छोटे किसानों के लिए साझा सेवा, विश्वविद्यालय-प्रयोगशाला, FPO या कस्टम हायरिंग मॉडल महँगे सेंसरों की लागत बाँट सकते हैं।

सारणी 3. खरपतवार पहचान में प्रमुख सेंसर

सेंसर	रिकॉर्ड की गई सूचना	सर्वोत्तम उपयोग	मुख्य शक्ति	सावधानी/सीमा
RGB	लाल, हरा, नीला	रंग, आकार, पंक्ति और बनावट	कम लागत व सरल संचालन	छाया और बदलते प्रकाश का प्रभाव
मल्टीस्पेक्ट्रल	दृश्य+NIR/Red & edge	सूचकांक और बेहतर वर्गीकरण	स्पेक्ट्रल अंतर	कैलिब्रेशन व अधिक लागत
हाइपरस्पेक्ट्रल	अनेक संकीर्ण बैंड	प्रजाति-विशिष्ट सूक्ष्म अंतर	बहुत समृद्ध स्पेक्ट्रल डेटा	बड़ा डेटा, जटिल विश्लेषण
थर्मल	तापमान	जल तनाव/ वाष्पोत्सर्जन संकेत	अदृश्य तापीय अंतर	खरपतवार हेतु अक्सर सहायक सेंसर
LiDAR	दूरी/3डी बिंदु	ऊँचाई और कैनोपी संरचना	प्रकाश से अपेक्षाकृत स्वतंत्र संरचना	लागत और प्रोसेसिंग

वनस्पति सूचकांक: रंग से आगे की गणना

वनस्पति सूचकांक कई स्पेक्ट्रल बैंडों को गणितीय रूप से जोड़कर वनस्पति की स्थिति का संक्षिप्त संकेत देते हैं। सबसे प्रसिद्ध सामान्यीकृत अंतर वनस्पति सूचकांक है: $NDVI = (NIR - Red) / (NIR + Red)$ । स्वस्थ पत्तियाँ लाल प्रकाश को क्लोरोफिल द्वारा अधिक अवशोषित और निकट-अवरक्त को अधिक परावर्तित करती हैं, इसलिए NDVI सामान्यतः हरित जैवभार से जुड़ा होता है। पर केवल ऊँचा NDVI यह नहीं बताता कि वह फसल है या खरपतवार। इसलिए सूचकांक को पंक्ति-ज्यामिति, बनावट, समय-श्रृंखला या एआई वर्गीकरण के साथ जोड़ना पड़ता है।

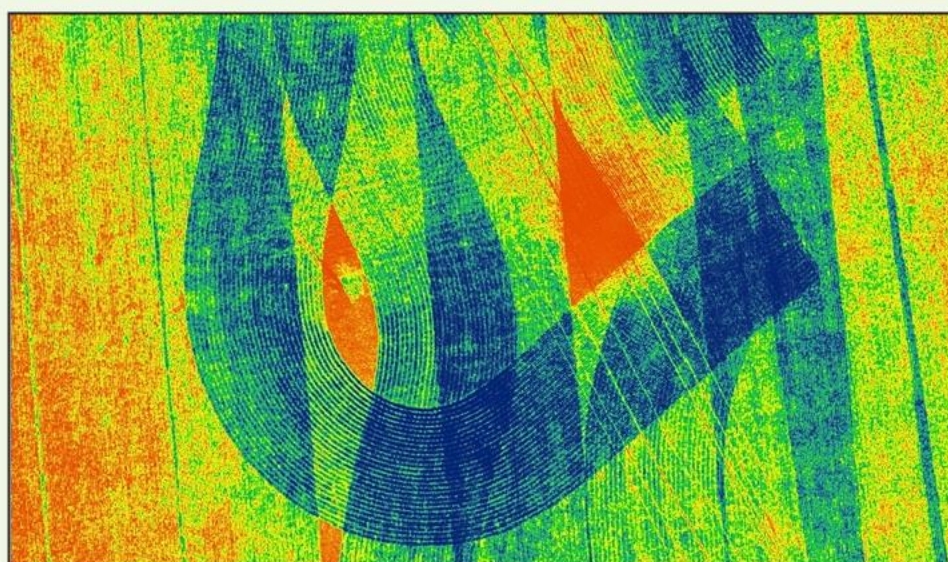
GNDVI में लाल बैंड के स्थान पर हरा बैंड उपयोग होता है और यह कुछ परिस्थितियों में क्लोरोफिल तथा नाइट्रोजन स्थिति के प्रति संवेदनशील होता है। SAVI मिट्टी की पृष्ठभूमि के प्रभाव को घटाने के लिए सुधार-गुणांक L जोड़ता है; कम कैनोपी और खुली मिट्टी वाले शुरुआती चरण में यह उपयोगी हो सकता है। NDRE रेड-एज और NIR का उपयोग करता है और घनी वनस्पति में NDVI की संतृप्ति की समस्या को कुछ सीमा तक कम कर सकता है।

खरपतवार मानचित्रण में सूचकांकों का उपयोग तीन तरह से होता है। पहला, फसल-पंक्तियों के बाहर की हरित वनस्पति को संभावित खरपतवार मानना। दूसरा, असामान्य रूप से अधिक या अलग हरितता वाले पैचों को प्राथमिक जाँच क्षेत्र बनाना। तीसरा, सूचकांक-आधारित प्रारंभिक लेबल तैयार करके एआई प्रशिक्षण को तेज करना। UAV चित्रों में पंक्तियों के बीच के खरपतवारों से स्वचालित प्रशिक्षण डेटा बनाने की रणनीति दिखाई, जिससे विशेषज्ञ द्वारा हर पिक्सेल का लेबल बनाने की लागत घट सकती है।

सूचकांक की व्याख्या सावधानी से करनी चाहिए। पोषक तनाव, जलभराव, रोग, छाया, फसल-अंतराल और मिट्टी का रंग भी समान पैटर्न बना सकते हैं। इसलिए खेत-निरीक्षण, ग्राउंड ट्रुथ और बहु-तिथि डेटा आवश्यक हैं। एक अच्छा मानचित्र केवल सुंदर रंगीन चित्र नहीं, बल्कि ऐसे वर्गों में विभाजित उत्पाद होना चाहिए जिनका कृषि-निर्णय से सीधा संबंध हो- जैसे “उपचार आवश्यक”, “निरीक्षण आवश्यक” और “उपचार नहीं”।

सारणी 4. प्रमुख वनस्पति सूचकांक और व्याख्या

सूचकांक	सूत्र	मुख्य उपयोग	व्याख्या की सावधानी
NDVI	$(NIR - Red)/(NIR + Red)$	हरितता और जैवभार	ऊँचा मान फसल या खरपतवार दोनों हो सकता है
GNDVI	$(NIR - Green)/(NIR + Green)$	क्लोरोफिल/नाइट्रोजन संकेत	प्रकाश और प्रजाति से प्रभावित
SAVI	$((NIR - Red) \times (1+L)) / (NIR + Red + L)$	खुली मिट्टी वाले शुरुआती चरण/खुली मिट्टी वाले शुरुआती चरण	L का चयन और मिट्टी का प्रभाव
NDRE	$(NIR - Red-edge)/(NIR + Red-edge)$	घनी कैनोपी और रेड-एज प्रतिक्रिया	विशेष बैंड वाला सेंसर जरूरी



चित्र स्रोत: Antarsih, Wikimedia Commons, CC BY 4.0.

चित्र 2. False-color NDVI दृश्य में खेत की स्थानिक असमानता; रंगों की व्याख्या सेंसर और स्केल के संदर्भ में करनी चाहिए।

ड्रोन आधारित खरपतवार मानचित्रण का कार्यप्रवाह

ड्रोन सर्वेक्षण की गुणवत्ता उड़ान से पहले तय होती है। सबसे पहले खेत की सीमा, फसल अवस्था, अपेक्षित खरपतवार आकार, सेंसर, उड़ान ऊँचाई, चित्र ओवरलैप और ग्राउंड सैंपलिंग डिस्टेंस निर्धारित किए जाते हैं। बहुत ऊँची उड़ान कवरेज बढ़ाती है पर छोटे खरपतवार अदृश्य हो सकते हैं; बहुत नीची उड़ान चित्रों की संख्या, समय और प्रसंस्करण लागत बढ़ाती है। समान प्रकाश के लिए प्रायः मध्य-सुबह या मध्य-दोपहर की स्थिर परिस्थितियाँ चुनी जाती हैं, जबकि तेज हवा से मोशन ब्लर और पौधों का झुकाव बढ़ सकता है।

उड़ान के बाद चित्रों की गुणवत्ता जाँची जाती है, फिर उन्हें जोड़कर ऑर्थोमोजेक और आवश्यकता हो तो डिजिटल सतह मॉडल बनाया जाता है। मल्टीस्पेक्ट्रल डेटा में रेडियोमेट्रिक कैलिब्रेशन पैनेल और सनशाइन सेंसर उपयोगी होते हैं। इसके बाद खेत की सीमा काटी जाती है, रंग-संशोधन होता है, सूचकांक निकाले जाते हैं और छवि को छोटे टाइलों में बाँटकर एआई मॉडल चलाया जाता है। आउटपुट केवल

“खरपतवार/नहीं” मास्क नहीं होना चाहिए; उसमें विश्वास स्कोर, वर्ग, पैच आकार और जीपीएस निर्देशांक भी जोड़े जा सकते हैं।

मानचित्र को मशीन-पठनीय प्रिस्क्रिप्शन मैप में बदलना अगला चरण है। पैचों के चारों ओर सुरक्षा बफर, न्यूनतम उपचार क्षेत्र और नोजल चौड़ाई के अनुसार बहुभुज सरल किए जाते हैं। फिर यह फाइल स्मार्ट स्प्रेयर, ड्रोन स्प्रेयर या ग्राउंड रोबोट को दी जाती है। उपचार के बाद पुनः उड़ान करके शेष खरपतवार, फसल-क्षति और उपचार कवरेज की जाँच की जा सकती है। यह पुनर्मूल्यांकन मॉडल और संचालन दोनों के लिए फीडबैक देता है।

सबसे बड़ी व्यावहारिक गलती यह मानना है कि एक ही मॉडल पूरे मौसम और हर खेत पर समान परिणाम देगा। अंकुरण के तुरंत बाद मिट्टी अधिक दिखती है; बाद में पत्तियाँ ओवरलैप करती हैं; बारिश के बाद रंग बदलते हैं; और अलग किस्म की फसल का आकार भी अलग हो सकता है। इसलिए मॉडल को स्थानीय और मौसमी डेटा से अद्यतन करना, तथा हर अभियान में सीमित ग्राउंड ट्रुथ लेना आवश्यक है।



चित्र 3. ड्रोन सर्वेक्षण से प्रिस्क्रिप्शन मानचित्र और पुनः सत्यापन तक कार्यप्रवाह।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और कंप्यूटर विज्ञान

कृत्रिम बुद्धिमत्ता खेत-चित्र को उपयोगी निर्णय में बदलने की मुख्य कड़ी है। कंप्यूटर विज्ञान पौधे का रंग, किनारा, आकृति, पत्ती-विन्यास, बनावट, ऊँचाई और पड़ोसी पौधों से स्थानिक संबंध पढ़ता है। पारंपरिक मशीन लर्निंग में विशेषज्ञ पहले फीचर चुनते हैं—जैसे अत्याधिक हरा, पत्ती का क्षेत्र, गोलाई, बनावट या पंक्ति से दूरी—और फिर रैंडम फॉरेस्ट, सपोर्ट वेक्टर मशीन, के-नियरेस्ट नैबर या डिसीजन ट्री वर्गीकरण करते हैं। कम डेटा और स्पष्ट समस्या में ये विधियाँ तेज तथा व्याख्यायोग्य हो सकती हैं।

डीप लर्निंग में कन्वोल्यूशनल न्यूरल नेटवर्क स्वतः उपयोगी दृश्य विशेषताएँ सीखता है। छवि वर्गीकरण मॉडल पूरे चित्र को एक वर्ग देते हैं; ऑब्जेक्ट डिटेक्शन मॉडल प्रत्येक पौधे के चारों ओर बॉक्स बनाते हैं; और सेमांटिक या इंस्टेंस सेगमेंटेशन प्रत्येक पिक्सेल या प्रत्येक पौधे की सीमा निर्धारित करता है। YOLO परिवार वास्तविक समय डिटेक्शन के लिए लोकप्रिय है, जबकि U-Net, DeepLab और Mask R-CNN

पौधा-सीमा या खरपतवार पैच सेगमेंटेशन में उपयोगी हैं। यूएवी चित्रों पर विभिन्न सेगमेंटेशन मॉडल की तुलना करने वाले अध्ययनों ने दिखाया है कि मॉडल का प्रदर्शन फसल, ऊँचाई, बैकबोन नेटवर्क और वर्ग-संतुलन पर निर्भर करता है।

एआई कार्यप्रवाह की शुरुआत प्रतिनिधि डेटा से होती है। चित्रों में अलग-अलग दिन, मिट्टी, नमी, प्रकाश, खरपतवार प्रजाति, फसल अवस्था और कैमरा कोण शामिल होने चाहिए। एनोटेेशन में बॉक्स, बहुभुज या पिक्सेल मास्क बनाए जाते हैं। गलत या असंगत लेबल मॉडल की ऊपरी सीमा तय कर देते हैं, इसलिए कृषि-विज्ञानी की भूमिका महत्वपूर्ण है। डेटा को प्रशिक्षण, सत्यापन और परीक्षण समूह में खेत-आधारित तरीके से बाँटना चाहिए; यदि एक ही खेत के लगभग समान चित्र दोनों समूहों में चले जाएँ, तो परिणाम वास्तविक क्षमता से अधिक दिख सकता है।

मॉडल मूल्यांकन में केवल शुद्धता पर्याप्त नहीं। खरपतवार दुर्लभ हों तो हर पिक्सेल को “फसल/मिट्टी” कहने वाला मॉडल भी ऊँची शुद्धता

दिखा सकता है। शुद्धता बताता है कि मॉडल द्वारा खरपतवार कहे गए पौधों में कितने वास्तव में खरपतवार थे; रिकॉल बताता है कि मौजूद खरपतवारों में कितने पकड़े गए; F1 दोनों का संतुलन है। स्प्रे प्रणाली में झूटे सकारात्मक परिणाम फसल पर दवा का जोखिम बढ़ाते हैं, जबकि झूटे नकारात्मक खरपतवार छोड़ देते हैं। इसलिए अपेक्षित नियंत्रण विधि के अनुसार निर्णय-सीमा चुनी जानी चाहिए।

वास्तविक समय उपयोग में गति और सटीकता का संतुलन आवश्यक है। तेज वाहन पर कैमरे से नोजल तक दूरी, चित्र कैप्चर, प्रोसेसिंग विलंब और वाल्व प्रतिक्रिया का समन्वय करना पड़ता है। Edge-कम्प्यूटिंग के कारण एआई सीधे मशीन पर चल सकता है, जिससे इंटरनेट पर निर्भरता घटती है। क्लाउड मॉडल भारी विश्लेषण और बहु-खेत सीखने के लिए उपयोगी हैं, पर डेटा गोपनीयता, अपलोड गति और नेटवर्क उपलब्धता पर विचार करना पड़ता है।

सारणी 5. एआई मॉडल: कार्य, ताकत और सावधानियाँ

मॉडल/परिवार	सामान्य कार्य	मुख्य ताकत	व्यावहारिक सावधानी
Random Forest / SVM	हाथ से चुने फीचर का वर्गीकरण	कम डेटा में तेज, व्याख्यायोग्य	फीचर इंजीनियरिंग और सामान्यीकरण
CNN	छवि वर्गीकरण	दृश्य फीचर स्वतः सीखना	बड़ा और विविध डेटा
YOLO	रीयल-टाइम ऑब्जेक्ट डिटेक्शन	तेज, पौधे का स्थान देता है	बहुत छोटे/ओवरलैप पौधे कठिन
U-Net / DeepLab	पिक्सेल-स्तर सेगमेंटेशन	पैच और पौध सीमा स्पष्ट	एनोटेशन महँगा वर्ग असंतुलन
Mask R-CNN	इंस्टेंस सेगमेंटेशन	हर पौधे की अलग सीमा	भारी मॉडल और धीमी प्रोसेसिंग



चित्र 4. एआई मॉडल का जीवन-चक्र: छवि संग्रह, एनोटेशन, प्रशिक्षण, सत्यापन और खेत में उपयोग।

डेटा गुणवत्ता, मॉडल विश्वसनीयता और मानव पर्यवेक्षण

एआई की विश्वसनीयता “कितने प्रतिशत सही” से आगे का विषय है। मॉडल को यह भी बताना चाहिए कि वह कब अनिश्चित है। कम विश्वास वाले पैचों को स्वचालित उपचार के बजाय मानव समीक्षा के लिए भेजा जा सकता है। यह विशेष रूप से उस समय उपयोगी है जब फसल और खरपतवार की पत्ती समान हो, पौधे एक-दूसरे पर चढ़े हों या प्रकाश असामान्य हो। अनिश्चितता-आधारित नमूना चयन एक्टिव लर्निंग को सक्षम करता है: मॉडल सबसे कठिन चित्र चुनता है, विशेषज्ञ उन्हें लेबल करता है और अगला संस्करण बेहतर होता है।

स्थानीय डेटा की आवश्यकता भारतीय कृषि में और बढ़ जाती है क्योंकि एक ही जिले में किस्म, बुवाई विधि, मिट्टी, अवशेष और खरपतवार समुदाय बदल सकते हैं। विदेशी डेटासेट पर प्रशिक्षित मॉडल सीधे भारतीय खेत में असफल हो सकता है। राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर

मानकीकृत, बहुभाषी मेटाडेटा वाली खरपतवार छवि लाइब्रेरी उपयोगी होगी, जिसमें प्रजाति, वृद्धि अवस्था, फसल, स्थान, तारीख, सेंसर, ऊँचाई और मौसम दर्ज हों। डीपवीड्स जैसे सार्वजनिक डेटासेट ने यह दिखाया है कि साझा डेटा अनुसंधान को तेज कर सकता है, लेकिन क्षेत्र-विशिष्ट सामान्यीकरण फिर भी आवश्यक रहता है।

सुरक्षा के लिए “मानव-इन-द-लूप” डिजाइन अपनाना चाहिए। शुरुआती तैनाती में मशीन केवल सुझाव दे, फिर ऑपरेटर पुष्टि करे। पर्याप्त सत्यापन के बाद सीमित स्वचालन और अंततः पूर्ण स्वचालन की ओर बढ़ा जा सकता है। लॉगिंग अनिवार्य होनी चाहिए-कौन-सा मॉडल चला, किस विश्वास पर निर्णय हुआ, कितना रसायन या ऊर्जा उपयोग हुआ और कहाँ उपचार किया गया। यह त्रुटि विश्लेषण, बीमा, नियामक अनुपालन और किसान विश्वास के लिए आवश्यक है।



फसल बनाम खरपतवार पहचान

गलत लक्ष्य पर उपचार से बचाव



घनत्व और पैच आकलन

प्राथमिकता और उपचार क्षेत्र तय करना



शाकनाशी/विधि अनुशंसा

प्रजाति, अवस्था और मौसम के अनुसार



आर्थिक क्षति सीमा

कार्रवाई की आवश्यकता और समय तय करना

मॉडल का मूल्य तभी है जब उसका आउटपुट स्पष्ट कृषि-निर्णय में बदले।

चित्र 5. एआई-आधारित निर्णय समर्थन के चार प्रमुख आउटपुट

मानव-इन-द-लूप कम विश्वास वाले पौधों या पैचों को स्वचालित उपचार के बजाय विशेषज्ञ समीक्षा में भेजना शुरूआती तैनाती का सुरक्षित तरीका है।

कृषि रोबोटिक्स: पहचान से कार्रवाई तक

रोबोटिक्स उस बिंदु पर शुरू होती है जहाँ डिजिटल मानचित्र या कैमरा निर्णय को वास्तविक खेत-क्रिया में बदलता है। एक खरपतवार नियंत्रण रोबोट में सामान्यतः विजन प्रणाली, GNSS या RTK नेविगेशन, इनर्शियल सेंसर, व्हील एन्कोडर, नियंत्रण कंप्यूटर, सुरक्षा सेंसर, ऊर्जा स्रोत और कार्यकारी उपकरण होता है। कार्यकारी उपकरण स्प्रे नोजल, माइक्रो-इंजेक्टर, ब्लेड, टाइन, ब्रश, पंच, गर्म पानी, लेजर या विद्युत संपर्क हो सकता है। डिजाइन फसल-पंक्ति, मिट्टी, अपेक्षित खरपतवार आकार और संचालन गति के अनुसार बदलता है।

स्पोर्ट स्प्रेडिंग में प्रत्येक नोजल स्वतंत्र रूप से सक्रिय होता है। कैमरा खरपतवार पहचानता है, उसकी आगे की स्थिति का अनुमान लगाता है और सही क्षण पर बहुत छोटे क्षेत्र में दवा देता है। यह मौजूदा शाकनाशी प्रणाली के साथ अपेक्षाकृत सहज संक्रमण है, पर नोजल-रिजॉल्यूशन, बूंद आकार, हवा, गति और पौधे की सीमा महत्वपूर्ण हैं। जॉन डीयर का सी एंड स्प्रे कैमरा विजन और मशीन लर्निंग से फसल तथा खरपतवार अलग करके लक्षित छिड़काव करता है। इकारोबोटिक्स का ARA पौधा-स्तर अल्ट्रा-हाई-प्रिंसीजन छिड़काव का व्यावसायिक उदाहरण है; निर्माता विभिन्न अनुप्रयोगों में इनपुट में बहुत बड़ी कमी का दावा करता है, हालांकि वास्तविक बचत खरपतवार घनत्व और खेत की स्थिति पर निर्भर करेगी।

यांत्रिक रोबोट खरपतवार को काटते, उखाड़ते, दबाते या मिट्टी से ढकते हैं। इनका लाभ रसायन-मुक्त नियंत्रण है और जैविक खेती में विशेष उपयोगिता है। चुनौती यह है कि फसल के बहुत निकट ब्लेड चलाना पड़े तो मिलीमीटर स्तर की स्थिति और स्थिर गति चाहिए। शुरूआती शोध में एस्टैंड और बेरवेल्ड्स ने पंक्ति-मार्गदर्शन तथा पौधा पहचान के लिए दो विजन प्रणालियों वाले मोबाइल रोबोट का प्रदर्शन किया था। बाद के सिस्टमों ने बहु-कैमरा ट्रैकिंग और यांत्रिक/रासायनिक दोनों उपकरणों को जोड़कर अलग वृद्धि अवस्थाओं में चयनात्मक कार्रवाई दिखाई।

लेजर वीडिंग केंद्रित ऊर्जा से खरपतवार के मेरिस्टेम को गर्म या नष्ट करती है। इसमें मिट्टी नहीं उलटती और रसायन नहीं लगता, पर ऊर्जा, लक्ष्य स्थिरता, अग्नि-सुरक्षा, धूल और गति के मुद्दे हैं। कार्बन रोबोटिक्स का लेजरवीडर उच्च-रिजॉल्यूशन कैमरों, ऑनबोर्ड एआई और लेजर मॉड्यूल का व्यावसायिक उदाहरण है। शोध स्तर पर कपास खेत में स्वायत्त डायोड-लेजर रोबोट के परीक्षण ने दिखाया कि ट्रैकिंग, लक्ष्य कोण और उपचार अवधि परिणाम को सीधे प्रभावित करते हैं।

विद्युत नियंत्रण में उच्च वोल्टेज संपर्क से पौधे ऊतक क्षतिग्रस्त होते हैं। यह गैर-रासायनिक विकल्प है, पर सुरक्षा, ऊर्जा उपयोग, नमी और जड़-प्रणाली के अनुसार प्रभाव बदलता है। माइक्रोडोजिंग या बूंद-स्तर अनुप्रयोग में बहुत कम मात्रा सीधे पत्ती या वृद्धि-बिंदु पर दी जाती है। इन विधियों का चयन केवल तकनीकी आकर्षण से नहीं, बल्कि प्रति हेक्टेयर समय, उपचार लागत, फसल-क्षति, खरपतवार पुनर्वृद्धि और रखरखाव के आधार पर होना चाहिए।

सारणी 6. रोबोटिक खरपतवार नियंत्रण विधियों की तुलना

विधि	कार्रवाई सिद्धांत	रसायन उपयोग	सर्वोत्तम फिट	मुख्य चुनौती
स्पाॅट स्प्रे	स्वतंत्र नोजल से लक्ष्य पर छिड़काव	कम	बड़े क्षेत्र व पंक्ति फसलें	नोजल समय, बहाव, फसल सुरक्षा
यांत्रिक निराई	ब्लेड/टाइन/ब्रश से काटना या उखाड़ना	नहीं	जैविक व सब्जी फसलें	कतार के भीतर मिलीमीटर सटीकता
लेजर बीडिंग	मेरिस्टेम पर केंद्रित ऊर्जा	नहीं	उच्च मूल्य और रसायन-मुक्त प्रणाली	ऊर्जा, गति और अग्नि सुरक्षा
विद्युत नियंत्रण	उच्च वोल्टेज से ऊतक क्षति नहीं	नहीं	विशेष उपयोग और बड़े पौधे	सुरक्षा, नमी और ऊर्जा
माइक्रोडोजिंग	बूंद/इंजेक्शन से अत्यल्प मात्रा	अत्यल्प	पौधा-स्तर उपचार	लक्ष्य स्थिरता और यंत्र रखरखाव



चित्र स्रोत: Amazone GmbH & Co. KG, Wikimedia Commons, CC BY&SA 3.0.

चित्र 6. BoniRob: पौधा-स्तर अवलोकन और फील्ड रोबोटिक्स के विकास में प्रयुक्त एक अनुसंधान प्लेटफॉर्म।



चित्र 7. रोबोटिक खरपतवार नियंत्रण की प्रमुख विधियाँ और उनके उपयोग क्षेत्र।

एकीकृत स्मार्ट खरपतवार प्रबंधन

रिमोट सेंसिंग, एआई और रोबोटिक्स का सबसे अधिक लाभ तब मिलता है जब वे एक बंद फीडबैक चक्र में जुड़ें। चरण एक में उपग्रह या ड्रोन पूरे खेत का सर्वेक्षण करता है। चरण दो में एआई संभावित खरपतवार पैचों और विश्वास स्तर का मानचित्र बनाता है। चरण तीन में

कृषि-विज्ञानी या निर्णय समर्थन प्रणाली आर्थिक सीमा, मौसम, फसल अवस्था और उपलब्ध उपकरण देखकर उपचार चुनती है। चरण चार में स्मार्ट स्प्रेयर या रोबोट लक्षित कार्रवाई करता है। चरण पाँच में पुनः इमेजिंग से नियंत्रण प्रभाव, शेष पैच और फसल प्रतिक्रिया मापी जाती है।

यह प्रणाली एकीकृत खरपतवार प्रबंधन को मजबूत करती है।

उदाहरण के लिए, शुरुआती मौसम में पंक्ति के बीच यांत्रिक निराई, कतार के भीतर पौधा-स्तर स्पॉट स्प्रे, खेत की मेड़ों पर अलग प्रबंधन और बीज बनने से पहले शेष पौधों की मैनुअल सफाई एक साथ उपयोग की जा सकती है। तकनीक का उद्देश्य केवल रसायन कम करना नहीं, बल्कि नियंत्रण विधियों में विविधता बढ़ाना और प्रतिरोध चयन-दबाव घटाना है।

निर्णय समर्थन में आर्थिक क्षति सीमा उपयोगी है, लेकिन खरपतवार बीज उत्पादन और दीर्घकालीन बीज-बैंक को भी शामिल करना चाहिए। कुछ कम घनत्व वाले खरपतवार वर्तमान फसल में नुकसान न करें, पर यदि वे हजारों बीज बना दें तो अगले वर्षों की लागत बढ़ सकती है। इसलिए मानचित्र को केवल वर्तमान उपज नहीं, बहुवर्षीय प्रबंधन के संदर्भ में पढ़ना चाहिए।

आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक लाभ

लक्षित उपचार का सीधा आर्थिक लाभ इनपुट की बचत है। यदि खरपतवार केवल खेत के 20 प्रतिशत क्षेत्र में हैं, तो सैद्धांतिक रूप से पूरे खेत पर दवा डालने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। वास्तविक बचत नोजल ओवरलैप, सुरक्षा बफर, खरपतवार घनत्व और मशीन की तकनीक पर निर्भर होगी, लेकिन पैच-स्तर या पौधा-स्तर प्रबंधन रसायन की मात्रा को उल्लेखनीय रूप से घटा सकता है। इसके साथ पानी, मिश्रण, टैंक भरने, परिवहन और ऑपरेटर समय में भी बचत होती है।

श्रम की कमी वाले क्षेत्रों में रोबोट समय पर निराई सुनिश्चित कर सकते हैं। इसका अर्थ मानव श्रम को समाप्त करना नहीं, बल्कि उसे अत्यधिक दोहराव, गमी, रसायन संपर्क और झुककर काम करने जैसे कठिन कार्यों से तकनीकी पर्यवेक्षण, रखरखाव और डेटा प्रबंधन की ओर स्थानांतरित करना है। ग्रामीण युवाओं के लिए ड्रोन पायलट, सेंसर तकनीशियन, डेटा एनोटेटर, रोबोट ऑपरेटर और कस्टम सेवा उद्यमी जैसे नए कौशल-आधारित अवसर पैदा हो सकते हैं।

पर्यावरणीय लाभ में गैर-लक्षित क्षेत्रों पर रसायन कम पड़ना, बहाव और अपवाह का जोखिम घटना, लाभकारी जीवों तथा मेड़ की जैव विविधता की बेहतर सुरक्षा और पैकेजिंग/परिवहन का कम उपयोग शामिल है। यांत्रिक, लेजर और विद्युत विकल्प रसायन निर्भरता घटा सकते हैं, पर उनका अपना ऊर्जा और निर्माण पदचिह्न है। इसलिए जीवन-चक्र विश्लेषण आवश्यक है। यदि भारी मशीन बहुत धीमी चले और अधिक ऊर्जा उपयोग करे, तो केवल “रसायन-मुक्त” शब्द पर्याप्त पर्यावरणीय प्रमाण नहीं है।

उपज लाभ मुख्यतः समय पर नियंत्रण से आता है। खरपतवार-प्रतिस्पर्धा की संवेदनशील अवधि में देरी होने पर बाद का उत्कृष्ट नियंत्रण भी खोई हुई उपज पूरी तरह वापस नहीं ला सकता। सेंसर आधारित निगरानी खेत के उस हिस्से को जल्दी पहचान सकती है जहाँ प्रकोप बढ़ रहा है। आर्थिक मूल्यांकन में मशीन की खरीद, ब्याज, बीमा, प्रशिक्षण, डेटा सदस्यता, बैटरी, मरम्मत, अवमूल्यन और प्रति हेक्टेयर क्षमता को शामिल करना चाहिए। छोटे किसान के लिए स्वामित्व के

बजाय भुगतान-प्रति-एकड़ सेवा अधिक व्यवहार्य हो सकती है।

भारतीय कृषि में विशेष उपयोगिता

भारत की विविध कृषि सटीक खरपतवार प्रबंधन के लिए चुनौती भी है और अवसर भी। छोटे तथा बिखरे खेत, मिश्रित फसलें, अलग-अलग बुवाई तिथियाँ, असमान पंक्तियाँ, खेत की मेड़ें और विविध खरपतवार समुदाय एक सार्वभौमिक मॉडल को कठिन बनाते हैं। दूसरी ओर श्रमिक उपलब्धता में मौसमी कमी, मजदूरी वृद्धि, समय पर निराई की समस्या और इनपुट लागत तकनीक की उपयोगिता बढ़ाते हैं। समाधान भारतीय खेत के आकार और सेवा संरचना के अनुसार छोटा, मॉड्यूलर और साझा होना चाहिए।

गेहूँ में फ़ैलेरिस माइनर जैसे घास कुल के खरपतवार फसल से रंग और आकार में मिलते-जुलते हैं, इसलिए शुरुआती अवस्था में स्पेक्ट्रल तथा पत्ती-आकृति आधारित मॉडल आवश्यक हो सकते हैं। धान में इकिनोक्लोआ प्रजातियाँ, सीधे बोए गए धान में मिश्रित घास और चौड़ी पत्ती खरपतवार, तथा जल-स्तर की असमानता पहचान को प्रभावित करती है। कपास, सोयाबीन, मक्का और गन्ने में पंक्ति संरचना ड्रोन तथा ग्राउंड कैमरा दोनों के लिए लाभकारी है, लेकिन देर से बढ़ी घनी कैनोपी में नीचे के खरपतवार छिप सकते हैं। सब्जियों में पौधों का उच्च मूल्य और निराई लागत पौधा-स्तर रोबोटिक्स के लिए मजबूत आर्थिक आधार दे सकती है।

छोटे किसानों के लिए तीन सेवा मॉडल उपयोगी हो सकते हैं। पहला, FPO या सहकारी संस्था ड्रोन सर्वेक्षण और मानचित्रण सेवा खरीदे। दूसरा, कस्टम हायरिंग सेंटर स्मार्ट स्प्रेयर या हल्के रोबोट किराये पर दे। तीसरा, कृषि-स्टार्टअप “डिटेक्शन प्लस ट्रीटमेंट” पैकेज दे, जिसमें किसान प्रति एकड़ भुगतान करे। इससे मशीन की उच्च प्रारंभिक लागत कई उपयोगकर्ताओं में बाँट जाती है। सेवा प्रदाता को खेत-रिकॉर्ड, मॉडल संस्करण, उपयोग किए गए रसायन और उपचार मानचित्र किसान को देना चाहिए।

भारतीय अनुसंधान की प्राथमिकता स्थानीय खरपतवार इमेज लाइब्रेरी, कम लागत वाले RGB-मल्टीस्पेक्ट्रल सेंसर, ऑफलाइन एआई, बहुभाषी इंटरफेस, छोटे टर्निंग रेडियस वाले रोबोट और धूल-गमी सहने योग्य हार्डवेयर होनी चाहिए। कृषि विश्वविद्यालयों, भाकृअनुप संस्थानों, इंजीनियरिंग संस्थानों और स्टार्टअपों के संयुक्त परीक्षण में केवल मॉडल शुद्धता नहीं, बल्कि प्रति हेक्टेयर क्षमता, फसल-क्षति, ऑपरेटर समय और कुल लागत रिपोर्ट की जानी चाहिए।

प्रशिक्षण में केवल ड्रोन उड़ाना या ऐप चलाना पर्याप्त नहीं। खरपतवार पहचान, शाकनाशी समूह, नोजल चयन, मौसम, सुरक्षा उपकरण, डेटा गोपनीयता और आपातकालीन रोक की समझ जरूरी है। स्थानीय कृषि विज्ञान केंद्र प्रदर्शन प्लॉट बनाकर किसानों को “पहले और बाद” के मानचित्र, रसायन बचत और उपज परिणाम दिखा सकते हैं। पारदर्शी प्रदर्शन तकनीक पर विश्वास बनाने का सबसे प्रभावी तरीका है।

प्रमुख चुनौतियां और जोखिम

पहली चुनौती लागत है। उच्च गुणवत्ता सेंसर, RTK, GPU कंप्यूटर, रोबोटिक एक्ट्यूएटर और सुरक्षा प्रणालियाँ महँगी हैं। लागत कम करने के लिए मॉड्यूलर डिजाइन, स्थानीय निर्माण, खुले डेटा मानक और साझा उपयोग आवश्यक हैं। दूसरी चुनौती डेटा है। प्रजाति पहचान के लिए हजारों अच्छी तरह लेबल किए गए चित्र चाहिए, और डेटा समय के साथ पुराना हो सकता है। मॉडल की निरंतर निगरानी तथा पुनः प्रशिक्षण के लिए संस्थागत व्यवस्था बनानी होगी।

तीसरी चुनौती सामान्यीकरण है। एक मॉडल सूखी दोमट मिट्टी पर अच्छा और गीली काली मिट्टी पर खराब हो सकता है। अलग कैमरा या ऊँचाई से डेटा वितरण बदल जाता है। डोमेन अडेप्टेशन, ऑगमेंटेशन और कैलिब्रेशन इस अंतर को घटा सकते हैं, पर स्थानीय परीक्षण का विकल्प नहीं। चौथी चुनौती संचालन है: बैटरी अवधि, चार्जिंग, नेटवर्क, खेत में कीचड़, मेड़, पशु, लोग, धूल और तेज धूप रोबोट की विश्वसनीयता प्रभावित करते हैं।

पाँचवीं चुनौती सुरक्षा और जिम्मेदारी है। गलत पहचान से फसल पर शाकनाशी, लेजर या यांत्रिक चोट हो सकती है। मशीन में आपात रोक, मानव/पशु पहचान, गति सीमा, भू-बाड़, कार्य क्षेत्र चेतावनी और सुरक्षित रखरखाव प्रोटोकॉल होना चाहिए। दुर्घटना या डेटा त्रुटि की स्थिति में निर्माता, सेवा प्रदाता और किसान की जिम्मेदारी स्पष्ट होनी चाहिए।

छठी चुनौती डेटा स्वामित्व और साइबर सुरक्षा है। खेत का उच्च-विभेदन मानचित्र उत्पादन, भूमि उपयोग और प्रबंधन रणनीति की संवेदनशील जानकारी हो सकता है। अनुबंध में यह स्पष्ट होना चाहिए कि डेटा कहाँ संग्रहित होगा, कौन उपयोग करेगा, कितने समय रखा जाएगा और क्या मॉडल प्रशिक्षण के लिए पुनः उपयोग होगा। ऑफलाइन विकल्प तथा स्थानीय डेटा निर्यात किसान नियंत्रण बढ़ाते हैं।

अंततः तकनीक के सामाजिक प्रभाव पर विचार आवश्यक है। श्रम बचत लाभकारी है, पर यदि कौशल परिवर्तन के अवसर न दिए जाएँ तो कुछ श्रमिक प्रभावित हो सकते हैं। नीति और परियोजनाओं को

तकनीकी प्रशिक्षण, स्थानीय मरम्मत केंद्र और ग्रामीण उद्यमिता के साथ जोड़ना चाहिए।

चरणबद्ध कार्यान्वयन रूपरेखा

सफल अपनाने के लिए सीधे महँगा पूर्ण स्वायत्त रोबोट खरीदना आवश्यक नहीं। चरण एक में खेत का आधार मानचित्र, प्रमुख खरपतवार सूची, मौजूदा लागत, निराई समय और शाकनाशी उपयोग दर्ज किया जाए। यही baseline बाद में लाभ मापने का आधार बनेगा। चरण दो में स्मार्टफोन या कम लागत RGB ड्रोन से सीमित क्षेत्र का सर्वेक्षण कर पैच मानचित्र बनाया जाए और विशेषज्ञ द्वारा सत्यापन किया जाए।

चरण तीन में मानचित्र-आधारित स्पॉट उपचार अपनाया जा सकता है। यह मौजूदा स्प्रेयर में सेक्शन कंट्रोल, नियंत्रित ड्रोन अनुप्रयोग या मैनुअल जीपीएस-निर्देशित उपचार से शुरू हो सकता है। यहाँ लक्ष्य एआई की चमक नहीं, उपचार क्षेत्र और रसायन मात्रा का वास्तविक रिकॉर्ड है। चरण चार में वास्तविक समय कैमरा-स्प्रे या यांत्रिक रोबोट का पायलट एक फसल और सीमित खेत पर किया जाए। कम से कम एक पूरा मौसम चलाकर फसल-क्षति, कार्य क्षमता, रखरखाव और आर्थिक परिणाम मापे जाएँ।

चरण पाँच में प्रणाली को अन्य खेतों और मौसमों में स्केल किया जाए। मॉडल अपडेट, SOP, ऑपरेटर प्रमाणन, स्प्रेयर पार्ट और डेटा बैकअप तय हों। सेवा प्रदाता के लिए प्रदर्शन-आधारित अनुबंध उपयोगी हो सकता है, जिसमें लक्ष्य पहचान, उपचार कवरेज और फसल-सुरक्षा के मापदंड हों। हर चरण पर “जारी रखें, सुधारें या रोकें” का स्पष्ट निर्णय होना चाहिए।

कार्यक्रम की सफलता के पाँच मुख्य संकेतक हैं: प्रति हेक्टेयर कुल लागत, उपयोग किए गए सक्रिय घटक की मात्रा, नियंत्रण प्रभाव, फसल-क्षति और बीज बनने तक बचे खरपतवारों की संख्या। केवल प्रारंभिक दृश्य सफाई पर्याप्त नहीं; दीर्घकालीन बीज-बैंक और प्रतिरोध प्रबंधन भी मापना चाहिए।

सारणी 11. कार्यान्वयन की सफलता के मुख्य संकेतक

संकेतक	रिकॉर्ड/गणना	व्याख्या माप	आवृत्ति
कुल लागत/हे.	मशीन, श्रम, ऊर्जा, डेटा, मरम्मत	वर्तमान विधि से वास्तविक तुलना	हर अभियान/मौसम
सक्रिय घटक/हे.	प्रयोग की गई कुल मात्रा + क्षेत्र	रसायन बचत का सीधा संकेत	हर उपचार
नियंत्रण प्रभाव	पहले और बाद का घनत्व/बायोमास	दृश्य सफाई से आगे मात्रात्मक परिणाम	7-21 दिन बाद
फसल-क्षति	क्षतिग्रस्त फसल पौधे/कुल पौधे	सिस्टम सुरक्षा का प्रमुख माप	तुरंत + 7 दिन
छूटे खरपतवार/बीज सेट	उपचार के बाद बचे पौधे और बीज उत्पादन	दीर्घकालीन बीज-बैंक जोखिम	मौसम अंत
फील्ड क्षमता	प्रभावी है./घंटा और डाउनटाइम	स्केल-अप व सेवा लागत	हर कार्य-दिवस



चित्र 8. भारतीय खेतों के लिए चरणबद्ध अपनाने की रूपरेखा - बेसलाइन से स्केल-अप तक।

भविष्य की दिशा

खरपतवार फसल उत्पादन के लिए केवल एक सामान्य कृषि की-समस्या नहीं, बल्कि जल, पोषक तत्व, प्रकाश, स्थान, श्रम और कृषि-रसायनों के उपयोग से जुड़ी बहुआयामी चुनौती हैं। परंपरागत निराई, यांत्रिक गुड़ाई और पूरे खेत में समान शाकनाशी छिड़काव कई परिस्थितियों में प्रभावी रहे हैं, पर बढ़ती मजदूरी, समय पर श्रमिक न मिलना, शाकनाशी प्रतिरोध, रसायन-अवशेष, जल-मृदा प्रदूषण और छोटे-छोटे खरपतवार पैचों पर अनावश्यक उपचार जैसी सीमाएँ अब अधिक स्पष्ट हो रही हैं। इस पृष्ठभूमि में रिमोट सेंसिंग, ड्रोन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, कंप्यूटर विजन और कृषि रोबोटिक्स मिलकर खरपतवार प्रबंधन को “पूरे खेत के उपचार” से “सही स्थान पर, सही समय पर, सही मात्रा में कार्रवाई” की ओर ले जा रहे हैं। यह लेख इन तकनीकों को अलग-अलग उपकरणों के रूप में नहीं, बल्कि एक एकीकृत

निर्णय-श्रृंखला के रूप में समझाता है। उपग्रह और ड्रोन, खेत की निगरानी करते हैं; RGB, मल्टीस्पेक्ट्रल, हाइपरस्पेक्ट्रल, थर्मल या LiDAR सेंसर पौधों के रंग, परावर्तन, बनावट, ऊँचाई और तापीय व्यवहार को दर्ज करते हैं; एआई मॉडल फसल और खरपतवार में अंतर करके घनत्व तथा स्थान का मानचित्र बनाते हैं; और स्मार्ट स्प्रेयर, यांत्रिक निराई यंत्र, लेजर, विद्युत या माइक्रोडोजिंग आधारित रोबोट लक्षित नियंत्रण करते हैं। लेख में प्रमुख सेंसर, वनस्पति सूचकांक, एआई मॉडल, रोबोटिक नियंत्रण विधियाँ, डेटा-गुणवत्ता, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ, भारतीय परिस्थितियों में उपयोगिता, व्यावहारिक चुनौतियाँ तथा चरणबद्ध कार्यान्वयन मॉडल प्रस्तुत किए गए हैं। मुख्य संदेश यह है कि तकनीक तभी सफल होगी जब उसे स्थानीय खरपतवार-फसल डेटा, कृषि-विज्ञान, सुरक्षित संचालन, सेवा-आधारित व्यवसाय मॉडल और किसान-केंद्रित प्रशिक्षण के साथ जोड़ा जाए।



हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और उसे दृढ़ करती है।

- पुरुषोत्तम दास टंडन

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।

- सुमित्रानंदन पंत

हिंदी जैसी सरल भाषा दूसरी नहीं है।

- मौलाना हसरत मोहानी

चुक्का (रुमेक्स वेसिकेरियस एल.): खट्टे स्वाद वाली भूली-बिसरी सेहतमंद पत्तेदार सब्जी

एस. आई. कुवरदादरा, दसारी श्रीकांत, दीपक पवार एवं चंद्रकांत सिंह

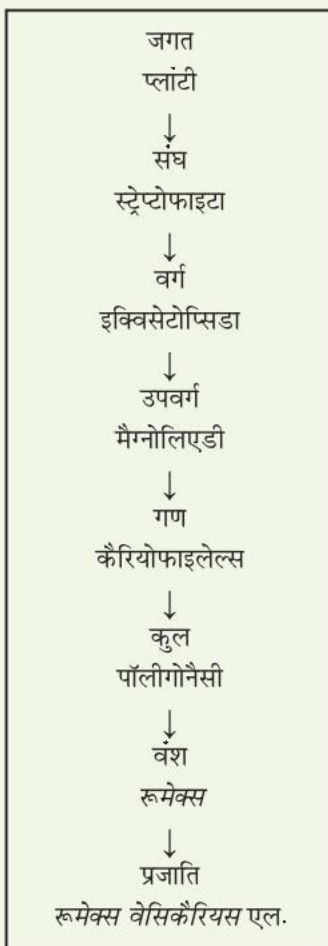
भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

रुमेक्स वेसिकेरियस एल., एक पॉलीगोनेसी कुल की पारंपरिक पत्तेदार सब्जी है, जो भारत तथा दक्षिण-पश्चिम एशिया में व्यापक रूप से पायी जाती है, जिसे स्थानीय एवं पारंपरिक खाद्य प्रणालियों में विशेष महत्व प्राप्त रहा है। यह प्रजाति सामान्यतः खेतों की मेड़ों, आवासीय क्षेत्रों के आसपास, परती भूमि तथा ग्राम समुदाय की साझा भूमि पर खरपतवार या अर्ध-जंगली अवस्था में पाई जाती है, जहाँ यह न्यूनतम कृषि निवेश में उगने वाली एक मौसमी शाकीय वनस्पति के रूप में विकसित होती है। स्थानीय रूप से इसे चुकरी/चुक्का/चुका अथवा खट्टा पालक के नाम से जाना जाता है। इसकी कोमल पत्तियाँ और हल्का ताजगी भरा खट्टापन दाल-चावल या रोटी-सब्जी जैसे साधारण भोजन को भी स्वादिष्ट बना देता है। परंपरा से आगे बढ़कर वर्तमान संदर्भ में देखें तो रुमेक्स वेसिकेरियस केवल एक क्षेत्रीय खाद्य पसंद भर नहीं है बल्कि अन्य हरी पत्तेदार सब्जियों की तरह यह रेशा, आवश्यक विटामिन, खनिज तत्व तथा जैव सक्रिय पौध यौगिकों से समृद्ध होती है, जिससे यह पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देती है। पारंपरिक खाद्य संस्कृतियों में खट्टे पत्तेदार सागों को भूख बढ़ाने, पाचन सुधारने तथा मौसमी स्वास्थ्य संतुलन बनाए रखने के लिए उपयोग किया जाता रहा है, जो आधुनिक पोषण विज्ञान की अवधारणाओं से भी मेल खाता है। वर्तमान समय में बढ़ती जीवनशैली जनित बीमारियों, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी तथा भोजन की बढ़ती लागत की चुनौती के बीच रुमेक्स वेसिकेरियस का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इसकी स्थानीय स्तर पर उपलब्धता, कम लागत और शीघ्र पकने की क्षमता घरेलू खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ बनाती है, जो सतत विकास लक्ष्य 2 (शून्य भूख) प्राप्त करने में सहायक है। सूक्ष्म पोषक तत्वों और पौध-आधारित जैव सक्रिय घटकों के माध्यम से छिपी भूख (हिडन हंगर) को कम करने में योगदान देकर यह सतत विकास लक्ष्य 3 (अच्छा स्वास्थ्य और कल्याण) का भी समर्थन करती है। इसके अतिरिक्त,

मौसमी और स्थानीय रूप से प्राप्त सब्जी के रूप में इसका उपयोग जिम्मेदार उपभोग और उत्पादन तथा स्थलीय जीवन के संरक्षण को प्रोत्साहित करता है, जो क्रमशः सतत विकास लक्ष्य 12 और सतत विकास लक्ष्य 15 के अनुरूप है। इस लेख में रुमेक्स वेसिकेरियस के पारंपरिक खाद्य एवं स्वास्थ्य-केंद्रित खाद्य प्रणालियों में कार्यात्मक सब्जी के रूप में भूमिका को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

वर्गिकी एवं वानस्पतिक विवरण

रुमेक्स वेसिकेरियस पादप जगत का एक सदस्य है और इसे फाइलम स्ट्रेप्टोफाइट, वर्ग इक्विसेटोप्सिडा, उपवर्ग मैग्नोलिडी, गण कैरियोफाइलेस तथा कुल पॉलिगोनेसी के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। यह रुमेक्स वंश का एक महत्वपूर्ण सदस्य है, जिसमें विश्वभर में फैली कई शाकीय प्रजातियाँ शामिल हैं, जिन्हें उनकी खाद्य, औषधीय एवं पोषणीय पत्तियों के लिए जाना जाता है। वानस्पतिक दृष्टि से, एक एकवर्षीय, उभयलिंगी, रोमहीन, हल्के हरे रंग का शाकीय पौधा है, जिसकी ऊँचाई सामान्यतः 15-30 सेमी तक होती है। पौधा द्विविभाजित शाखाओं वाला होता है तथा इस पर सरल पत्तियाँ पाई जाती हैं, जिनकी लंबाई लगभग 2.5-7.5 सेमी होती है। इसका पुष्पक्रम अग्रस्थ या पत्ती-विपरीत गुच्छों के रूप में होता है, जिनकी लंबाई लगभग 2.5-3.8 सेमी होती है और ये प्रायः पत्तीहीन होते हैं। पुष्पदंड पतले होते हैं तथा मध्य भाग के पास जुड़े हुए या बिना जोड़ के हो सकते हैं। फूल सामान्यतः युग्मित तथा आंशिक रूप से संयुक्त होते हैं और अत्यंत पतली, झिल्लीदार, जालिकायुक्त आवरण-पत्तियों से ढके रहते हैं, जिनमें स्पष्ट सीमांत शिरा अनुपस्थित होती है। इस पौधे का फल इसकी एक विशिष्ट पहचान है जो फूला हुआ, थैलीनुमा होता है, जिसका व्यास लगभग 1.3 सेमी होता है तथा इसका रंग सफेद से गुलाबी हो सकता है।



चित्र 1: चुक्का का वर्गीकी क्रम

उत्पत्ति एवं भौगोलिक वितरण

चुक्का की उत्पत्ति मुख्यतः उत्तरी अफ्रीका, दक्षिण-पश्चिम एशिया तथा अरब प्रायद्वीप में मानी जाती है, जहाँ यह स्वाभाविक रूप से उष्ण एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में विकसित हुई। वर्तमान में यह अनेक समशीतोष्ण एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फैल चुकी है और प्रायः खेतों, बाग-बगीचों, परती भूमि तथा अन्य मानव-प्रभावित आवासों में पाई जाती है। भारत में यह अर्ध-जंगली अवस्था खरपतवार के रूप में या रसोई बगीचों में उगाई जाने वाली पत्तेदार सब्जी के रूप में प्रचलित है तथा खेतों की मेड़ों, पगडंडियों, रेतीले एवं मौसमी रूप से नम स्थलों पर सामान्यतः पाई जाती है। यह पौधा शीत ऋतु में विशेष रूप से उपलब्ध होता है और मौसमी हरित सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। *रूमेक्स वेसिकैरियस*, एक व्यापक रूप से वितरित प्रजाति है, जो यूरोप, अफ्रीका, एशिया तथा अन्य महाद्वीपों के कई भागों में पाई जाती है। यूरोप में इसका विस्तार जर्मनी, इटली, सिसिली, मध्य ग्रीस (एटिकी की खाड़ी के आसपास), क्रीट तथा पूर्वी एजियन द्वीपों तक है। अफ्रीका में यह मोरक्को, पश्चिमी सहारा, अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, लीबिया, मिस्र (पूर्वी मरुस्थल, उत्तर-पश्चिमी तटीय क्षेत्र एवं दक्षिण-पूर्वी भाग), मॉरिटानिया, उत्तरी चाड, सूडान, इथियोपिया, इरिट्रिया, जिबूती तथा सोमालिया में पाई जाती है। पश्चिम

एशिया और मध्य पूर्व में इसका वितरण इराक, ईरान, अफगानिस्तान, सीरिया, इजराइल तथा दक्षिण सिनाई प्रायद्वीप में है, जबकि अरब प्रायद्वीप में यह सऊदी अरब के विभिन्न क्षेत्रों के साथ कुवैत, बहरीन, कतर, संयुक्त अरब अमीरात, ओमान और यमन में पाई जाती है। दक्षिण एशिया में यह पाकिस्तान, नेपाल, भारत (असम, पंजाब, उत्तर प्रदेश), बांग्लादेश और म्यांमार में दर्ज की गई है। इसके अतिरिक्त, यह अश्वस्टेलिया, क्यूबा और प्यूर्टो रिको में परिचित प्रजाति के रूप में भी पाई जाती है।

पोषण मूल्य

चुक्का, पोषण की दृष्टि से एक सस्ता, स्थानीय और अत्यंत उपयोगी पत्तेदार साग है। यद्यपि इसके पोषक तत्वों की मात्रा मिट्टी, मौसम और पौधे की अवस्था के अनुसार बदल सकती है, फिर भी एक हरी पत्तेदार सब्जी के रूप में यह कई आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति करता है। इसमें लोहा पाया जाता है, जो रक्त निर्माण में सहायक है और रक्ताल्पता के जोखिम को कम करने में मदद करता है। कैल्शियम इसकी एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है, जो हड्डियों और दाँतों की मजबूती के लिए आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, चुक्का की साग में विटामिन-बी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को सशक्त बनाने के साथ-साथ पौधों से मिलने वाले लोहे के अवशोषण में भी सहायक होता है। इसमें मौजूद डायटरी फाइबर पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने, कब्ज से बचाव और भोजन के बाद रक्त शर्करा के स्तर को संतुलित बनाए रखने में सहायक है, विशेषकर जब इसे अनाज-आधारित भोजन के साथ लिया जाए। हरी पत्तियों में सामान्यतः पाए जाने वाले विटामिन के अग्रदूत (कैरोटीनॉइड्स) चुक्का की साग में भी उपलब्ध होते हैं, जो आँखों की रोशनी, त्वचा के स्वास्थ्य और प्रतिरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं। साथ ही इसमें फोलेट एवं अन्य विटामिन्स भी होते हैं, जो रक्त स्वास्थ्य और कोशिकीय क्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। खनिज तत्वों की दृष्टि से, चुक्का में लोहा, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम तथा अन्य सूक्ष्म खनिज पाए जाते हैं। हालांकि, इनमें से कुछ खनिजों की उपलब्धता पर पौधे में उपस्थित ऑक्सेलेट्स और पकाने की विधि का प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए पारंपरिक पकाने के तरीके, जैसे हल्का उबालना या भूनना, पोषण की दृष्टि से अधिक उपयुक्त माने जाते हैं। इसके अलावा, खट्टे स्वाद वाली पत्तेदार सब्जियों में सामान्यतः फिनॉलिक यौगिक और फ्लैवोनॉयड्स जैसे जैव सक्रिय तत्व पाए जाते हैं, जो शरीर में एंटीऑक्सीडेंट और सूजन-रोधी प्रक्रियाओं में सहायक हो सकते हैं। यही संतुलित पोषण प्रोफाइल चुक्का साग को रोजमर्रा के भोजन में शामिल करने योग्य बनाती है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ महँगी सब्जियाँ आसानी से उपलब्ध नहीं होतीं।

स्वास्थ्य लाभ

चुक्का जैसी पत्तेदार सब्जियाँ आज के अनाज-प्रधान आहार में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, जिसे “हिडन हंगर” कहा जाता है, को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनमें लौह तत्व और फोलेट ऊर्जा स्तर एवं रक्त-स्वास्थ्य के लिए सहायक होते हैं, कैरोटीनॉयड्स दृष्टि और

प्रतिरक्षा तंत्र को समर्थन देते हैं, तथा विभिन्न खनिज तत्व हड्डियों और मांसपेशियों के सुचारु कार्य में योगदान करते हैं। चुक्का भाजी को नींबू, टमाटर, अमरूद या आँवला जैसे विटामिन-C स्रोतों के साथ सेवन करने से वनस्पति-आधारित लौह तत्व की जैवउपलब्धता और अधिक बढ़ जाती है। इसका हल्का खट्टा स्वाद भूख को उत्तेजित करता है और भोजन को हल्का महसूस कराने में मदद करता है, जबकि इसमें मौजूद आहार-रेशा नियमित मल-त्याग को प्रोत्साहित करता है, लाभकारी आंत सूक्ष्मजीवों के लिए पोषण का कार्य करता है और संतुलित मात्रा में सेवन करने पर भोजन के बाद होने वाली भारीपन को कम कर सकता है। इसके अतिरिक्त, चुक्का जैसी हरी पत्तेदार सब्जियों में पाए जाने वाले पॉलीफेनॉल और

फ्लैवोनॉयड्स शरीर की एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली को सुदृढ़ करते हैं और संतुलित आहार, नियमित शारीरिक गतिविधि तथा पर्याप्त नींद के साथ मिलकर समग्र स्वास्थ्य-लचीलापन बढ़ाते हैं। जब ऐसी सब्जियाँ तली-भुनी वस्तुओं या परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट्स का स्थान लेती हैं, तो पूरे आहार की गुणवत्ता सुधरती है, फाइबर का सेवन बढ़ता है, कैलोरी घनत्व घटता है और तृप्ति बेहतर होती है। गर्म मौसम में ये सब्जियाँ भोजन के माध्यम से जल और पोटैशियम जैसे खनिजों की आपूर्ति में भी सहायक होती हैं, जबकि खट्टे व्यंजन तरल पदार्थ के सेवन को बढ़ावा देते हैं। पारंपरिक रूप से चुक्का सागों को ठंडक देने वाला माना जाता है जो बेहतर पाचन और समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी हैं।



चित्र 2: चुक्का की हरी पत्तेदार परोह

सावधानी और संतुलन

चुक्का भाजी एक खट्टे स्वाद वाली पत्तेदार सब्जी है, जो सामान्यतः सुरक्षित और पौष्टिक मानी जाती है, फिर भी इसके सेवन में कुछ व्यावहारिक और वैज्ञानिक सावधानियाँ आवश्यक हैं। इस पौधे में स्वाभाविक रूप से ऑक्सैलिक अम्ल पाया जाता है, इसलिए जिन व्यक्तियों को पहले किडनी स्टोन, गुर्दे से संबंधित रोग रहे हों, या जिन्हें चिकित्सकीय रूप से कम-ऑक्सलेट आहार की सलाह दी गई हो, उन्हें इसका सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। ऐसे मामलों में कच्चे रूप की बजाय उबालकर या हल्का ब्लांच कर पकाया गया चुक्का साग अधिक सुरक्षित माना जाता है, क्योंकि पकाने से ऑक्सलेट की मात्रा आंशिक रूप से कम हो जाती है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य स्थिति के अनुसार चिकित्सक या पोषण विशेषज्ञ से परामर्श लेना भी उपयुक्त रहता है। इसके साथ ही, चुक्का भाजी के स्रोत की शुद्धता और सुरक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह पौधा प्रायः स्वाभाविक रूप से उग आता है, किंतु यदि इसे भारी यातायात वाली सड़कों के किनारे, औद्योगिक अपशिष्ट जल के पास, या हाल ही में कीटनाशकों

एवं शाकनाशियों से उपचारित खेतों से एकत्र किया जाए, तो इसमें हानिकारक प्रदूषक और रसायन जमा हो सकते हैं। इसलिए सेवन हेतु केवल स्वच्छ, प्रदूषण-मुक्त और जैविक स्रोतों से प्राप्त चुक्का भाजी का ही उपयोग करना चाहिए, जैसे घरेलू किचन गार्डन या सुरक्षित ग्रामीण क्षेत्र। हालाँकि चुक्का भाजी से एलर्जी या संवेदनशीलता के मामले बहुत दुर्लभ हैं, फिर भी यदि किसी व्यक्ति को इसके सेवन के बाद पेट में असहजता, गैस या अपच जैसी शिकायत हो, तो इसकी मात्रा कम या खाने से बचना चाहिए। पत्तियों को अन्य सागों के साथ मिलाकर तथा अच्छी तरह पकाकर सेवन करने से ऐसी समस्याएँ कम हो सकती हैं। कुल मिलाकर, सही स्रोत से प्राप्त चुक्का भाजी को स्वच्छ परिस्थितियों में पारंपरिक एवं उपयुक्त विधियों से पकाकर संतुलित मात्रा में सेवन करने पर यह पोषण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से एक लाभकारी पत्तेदार सब्जी सिद्ध होती है, जिसे आधुनिक आहार-पद्धतियों में भी सहजता से सम्मिलित किया जा सकता है।



स्थलीय तथा जलीय आक्रामक खरपतवारों के जैविक नियंत्रण कारकों की प्रभावशीलता पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

अर्चना अनोखें¹, दीक्षा एम. जी.¹, मोगली राम्मैया², भाग्यश्री एस. एन.³

¹भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

²भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

³भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु

जलवायु परिवर्तन आक्रामक खरपतवारों के प्रसार, वृद्धि तथा पारिस्थितिक प्रभाव को गहराई से प्रभावित करता है। बढ़ते तापमान, वर्षा के परिवर्तित पैटर्न तथा वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ी हुई मात्रा ऐसे अनुकूल वातावरण बनाती है जो खरपतवारों की आक्रामकता को बढ़ाते हैं, पारिस्थितिक तंत्रों को असंतुलित करते हैं, स्थानीय जैव विविधता को खतरे में डालते हैं तथा कृषि और वानिकी में आर्थिक हानि का कारण बनते हैं। आक्रामक खरपतवार वे बाहरी पौधे होते हैं जो तीव्र वृद्धि, अधिक प्रजनन क्षमता और पर्यावरणीय अनुकूलनशीलता के कारण स्थानीय वनस्पतियों को प्रतिस्पर्धा में पीछे छोड़ देते हैं। उदाहरण के रूप में लैंटाना घने झाड़ बनाता है और आग की घटनाओं को प्रभावित करता है। कनेडियन थीसल फसलों से तीव्र प्रतिस्पर्धा करता है, जबकि जलकुंभी जल निकायों की सतह पर तैरती चटाई बनाकर प्रकाश और ऑक्सीजन को रोक देता है। ऐसे आक्रमण आवासों को नष्ट कर वैश्विक स्तर पर पारिस्थितिक कार्यों को बाधित करते हैं। इनका प्रसार व्यापार, कृषि विस्तार और आवासीय व्यवधान से तेज होता है क्योंकि कई प्रजातियाँ सजावटी या कृषि प्रयोजन से लाई गई थीं लेकिन बाद में नियंत्रण से बाहर हो गई। यांत्रिक और रासायनिक नियंत्रण महंगे तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक होते हैं, इसलिए जैविक नियंत्रण एक महत्वपूर्ण टिकाऊ विकल्प माना जाता है। जैविक नियंत्रण में कीट और रोगजनक जैसे विशिष्ट प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग करके खरपतवारों की जनसंख्या कम की जाती है। स्थापित होने के बाद ये एजेंट दीर्घकालिक, स्व-नियंत्रित और कम लागत वाला प्रबंधन प्रदान करते हैं।

हालाँकि जैविक नियंत्रण की सफलता पर्यावरणीय परिस्थितियों पर अत्यधिक निर्भर करती है। जलवायु परिवर्तन तापमान, वर्षा और चरम मौसम घटनाओं के माध्यम से प्रजातियों के पारस्परिक संबंध, वितरण और जीवित रहने की क्षमता को बदल देता है। इसलिए बदलती जलवायु में आक्रामक खरपतवारों और उनके जैविक नियंत्रण एजेंटों की प्रतिक्रिया को समझना प्रभावी प्रबंधन रणनीतियाँ विकसित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

आक्रामक खरपतवारों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

जलवायु परिवर्तन आक्रामक खरपतवारों और उनके जैविक

नियंत्रण एजेंटों के बीच संबंधों को काफी बदल देता है, जिससे पारिस्थितिक प्रबंधन प्रभावित होता है। बढ़ते तापमान, असामान्य वर्षा और बार-बार चरम मौसम घटनाएँ खरपतवारों को नए क्षेत्रों में तेजी से स्थापित होने और पहले से प्रभावित क्षेत्रों में अधिक घनत्व बनाने में मदद करती हैं। जैसे-जैसे इनकी जनसंख्या बढ़ती है, वे स्थानीय पौधों को प्रतिस्थापित कर पोषक चक्र को बदल देते हैं और कृषि उत्पादकता घटाते हैं। जलवायु परिवर्तन पौधों की पोषक संरचना और रक्षात्मक रसायनों को भी प्रभावित करता है, जिससे वे शाकाहारी कीटों के प्रति अधिक सहनशील हो सकते हैं और जैविक नियंत्रण की प्रभावशीलता कम हो जाती है। जलीय खरपतवार भी पानी के तापमान और रासायनिक गुणों में बदलाव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, जिससे उनके व्यवहार और नियंत्रण परिणाम दोनों बदल जाते हैं। इसलिए अब जैविक नियंत्रण कार्यक्रमों को अधिक अनुकूलनशील बनाना आवश्यक हो गया है।

लंबा बढ़वार मौसम खरपतवारों की वृद्धि और बीज उत्पादन को तेज करता है, जिससे वे ऊँचे और ठंडे क्षेत्रों तक फैलने लगते हैं जहाँ पहले जीवित नहीं रह पाते थे। वर्षा में बदलाव भी इनके विस्तार को बढ़ावा देता है। इससे प्रबंधन कठिन हो जाता है क्योंकि जैविक नियंत्रण एजेंट उतनी तेजी से अनुकूलित नहीं हो पाते जितनी तेजी से खरपतवार फैलते हैं। उच्च तापमान और अधिक कार्बन डाइऑक्साइड पौधों की वृद्धि और प्रजनन बढ़ाकर प्राकृतिक शत्रुओं को दबा देते हैं। उच्च कार्बन डाइऑक्साइड पौधों की रासायनिक संरचना बदल देता है। पौधों में पोषण कम तथा रक्षात्मक यौगिक अधिक हो जाते हैं, जिससे कीटों के लिए भोजन कम उपयुक्त बनता है। जलीय खरपतवार भी जल गुणवत्ता में परिवर्तन के कारण नियंत्रण एजेंटों के लिए कम उपयुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन खरपतवारों को मजबूत तथा जैविक नियंत्रण को कमजोर करता है, जिससे प्रबंधन रणनीतियों के पुनर्रचना की आवश्यकता स्पष्ट होती है।

स्थलीय खरपतवारों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन स्थलीय खरपतवारों के पारिस्थितिकी व्यवहार को तेजी से बदल रहा है। बढ़ता तापमान बढ़वार अवधि को लंबा कर देता है और कई आक्रामक प्रजातियों को ऊँचे तथा पहले अनुपयुक्त

क्षेत्रों में स्थापित होने देता है। वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड बढ़ने से प्रकाश संश्लेषण बढ़ता है, जिससे पौधे अधिक बड़े होते हैं, तेजी से बढ़ते हैं और अधिक बीज उत्पन्न करते हैं, परिणामस्वरूप फसलों में खरपतवार प्रकोप बढ़ जाता है। सूखे की आवृत्ति बढ़ने से सूखा सहनशील खरपतवारों को लाभ मिलता है। आग की बढ़ती घटनाएँ खाली स्थान बनाती हैं जहाँ आक्रामक प्रजातियाँ तेजी से स्थापित होकर स्थानीय वनस्पति को

प्रतिस्थापित कर देती हैं। जल प्रवाह और मिट्टी की नमी में बदलाव नदी किनारे के अर्ध-जलीय खरपतवारों के प्रसार को भी बढ़ाता है। साथ ही फूल आने के समय और परागण गतिविधि में परिवर्तन से कुछ खरपतवारों का प्रजनन और सफल हो जाता है। इन संयुक्त प्रभावों से खरपतवार अधिक अनुकूलनशील और नियंत्रित करने में कठिन हो जाते हैं।



गाजरघास



सियाम खरपतवार



अल्टरनैन्थेरा

जलीय खरपतवारों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन मीठे जल पारिस्थितिक तंत्रों में जलीय खरपतवारों के तेजी से फैलाव और प्रभुत्व को बढ़ा रहा है। उच्च तापमान, अनियमित वर्षा, अधिक कार्बन डाइऑक्साइड, सूखा और बाढ़ मिलकर इनके लिए आदर्श परिस्थितियाँ बनाते हैं। परिणामस्वरूप ये पौधे झीलों, तालाबों, नदियों और नहरों में तेजी से फैलते हैं। गर्म मौसम सर्दियों में मृत्यु दर घटाता है और वर्ष भर जीवित रहने देता है, जिससे जल सतह पर घनी परत बनती है जो प्रकाश और ऑक्सीजन को रोक देती है तथा खाद्य श्रृंखला को प्रभावित करती है। अधिक कार्बन डाइऑक्साइड प्रकाश

संश्लेषण बढ़ाकर भारी जैव-भार उत्पन्न करता है जो पानी में घुलित ऑक्सीजन कम कर मछलियों और सूक्ष्मजीवों को नुकसान पहुँचाता है। मृत पौधों का विघटन दुर्गंध पैदा करता है और जल गुणवत्ता खराब करता है। सूखा उथला और गर्म पानी बनाता है जो खरपतवारों के उपनिवेशन के लिए उपयुक्त होता है, जबकि बाढ़ पौधों के टुकड़ों को नए क्षेत्रों में फैला देती है। इससे सिंचाई अवरुद्ध होती है, मत्स्य उत्पादन घटता है और रखरखाव लागत बढ़ती है। कुल मिलाकर जलीय खरपतवार जैव विविधता और आजीविका दोनों पर गंभीर प्रभाव डालते हैं।



जलकुंभी



जलीय फर्न

जैविक नियंत्रण एजेंटों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन तापमान, वर्षा, जल उपलब्धता और पौधा-कीट अंतःक्रियाओं को बदलकर जैविक नियंत्रण एजेंटों के प्रदर्शन को प्रभावित करता है। मध्यम ताप वृद्धि कीटों की वृद्धि और भोजन गतिविधि बढ़ा सकती है, लेकिन अत्यधिक गर्मी उनके जीवित रहने और प्रजनन को कम कर देती है। मौसमी चक्र में परिवर्तन से एजेंट और खरपतवार के जीवन चक्र में असामंजस्य पैदा हो जाता है, जिससे नियंत्रण कम प्रभावी हो जाता है। वर्षा पैटर्न भी प्रभाव डालते हैं। कुछ कीट शुष्क परिस्थितियों में बेहतर काम करते हैं जबकि भारी वर्षा अंडों और लार्वा को

नष्ट कर सकती है। इसके विपरीत रोगजनक को नमी चाहिए, इसलिए सूखा उनके प्रसार को रोक देता है। अधिक कार्बन डाइऑक्साइड खरपतवारों की तेज वृद्धि कराता है, जिससे नियंत्रण बनाए रखने के लिए अधिक एजेंटों की आवश्यकता होती है। जलीय नियंत्रण एजेंटों के लिए स्थिर जल स्तर आवश्यक होता है। सूखा आवास नष्ट कर देता है जबकि बाढ़ उन्हें अत्यधिक फैला देती है। परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन उत्पन्न होता है और प्रभावी प्रबंधन के लिए अनुकूलनशील रणनीतियाँ तथा निरंतर निगरानी आवश्यक हो जाती है।

तालिका 1: भारत में स्थलीय एवं जलीय आक्रामक खरपतवारों की सूची तथा उनके कीट एवं रोग उत्पन्न करने वाले जीव, जिन्हें संभावित खरपतवार जैव-नियंत्रण एजेंट कहा जाता है।

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	कुल (फैमिली)	उत्पत्ति	जैव-नियंत्रण एजेंट
स्थलीय आक्रामक खरपतवार				
1.	एकेसिया डिलवाटा (सिल्वर बॉटल)	फैबेसी	ऑस्ट्रेलिया	मेलैन्टेरियस वेंट्रालिस, फाइटोफथोरा सिन्नामोमी, अर्कैथोसिनस एडीलीस
2.	अकेशिया मेनेसी (ब्लैक बॉटल)	एस्टरेसी	मध्य अमेरिका एवं मेक्सिको	मेलैन्टेरियस वेंट्रालिस, अर्कैथोसिनस एडीलीस, फाइटोफथोरा सिन्नामोमी, लोनोमिया अश्वब्लिक्वा, एकेशिया गॉल वॉस्स
3.	एगोराटीना एडेनोफोरा (क्रॉफ्टन वीड)	एस्टरेसी	मध्य अमेरिका एवं मेक्सिको	लिस्ट्रोनोटस सेटोसिपेनिस, टेड्रामेसा रोमाना, कोलेटोट्रिकम ग्लोयोस्पोरियोइड्स
4.	एगोराटीना रिपारिया (रेंगने वाला क्रॉफ्टन वीड)	अमारैन्थेसी	दक्षिण अमेरिका	लिस्ट्रोनोटस सेटोसिपेनिस, टेड्रामेसा रोमाना, मेलोइडोजाइन स्पी.
5.	अल्टरनैन्थेरा पैरोनिकियोइड्स (स्मूथ जॉय वीड)	पापावेरेसी	मेक्सिको	आल्टिका स्पी., अल्टरनेरिया स्पी.
6.	आर्जिमोन मेक्सिकाना (मैक्सिकन पोपी/ सत्यानाशी)	एस्टरेसी	मेक्सिको	आल्टिका स्पी., सीडवीविल्स, अल्टरनेरिया स्पी., फ्यूजेरियम स्पी.
7.	बिडेन्स पिलोसा (ब्लैक जैक)	एस्टरेसी	मध्य एवं दक्षिण अमेरिका	बीटल्स, वीविल्स, अल्टरनेरिया स्पी., फ्यूजेरियम स्पी.
8.	क्रोमोलिना ओडोराटा (सियाम वीड)	एस्टरेसी	यूरोप/एशिया/ उत्तरी अफ्रीका	सिडोविया पॉलीस्पोरा, क्राइसोकस इंडिकस, जायगोग्रामा बाइकोलोराटा
9.	सर्सियम आर्वेस (कनाडा थीस्ल)	ब्रैसिकेसी	भूमध्यसागरीय क्षेत्र	सिडोविया पॉलीस्पोरा, जायगोग्रामा बाइकोलोराटा
10.	कोरोनापस डिडिमस (लेसर स्वाइनक्रेस)	एपोसाइनेसी	उष्णकटिबंधीय अफ्रीका	अल्टरनेरिया ब्रैसिसिकोला

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	कुल (फैमिली)	उत्पत्ति	जैव-नियंत्रण एजेंट
11.	क्रिप्टोस्टेजिया ग्रेण्डिफ्लोरा (रबर वाइन)	कॉन्वॉबुलेसी	चीन एवं भारत	यूक्लास्टा व्हेली, क्रिप्टोब्लैक्स गिन्डिएला, कोराइनेसपोरा कैसीकोला
12.	कुस्कुटा चिनेन्सिस (अमरबेल)	फैबेसी	पश्चिमी यूरोप	डॉडर वीविल, पैरासिटिक फ्लाइज, अल्टरनेरिया स्पी., कोलेटोट्रिकम स्पी.
13.	साइटिसस स्कोपेरियस (स्काॅच ब्रूम)	वर्बेनेसी	अमेरिका	एक्सापिऑन फुस्क्रोस्ट्रे, कोकिलिस एट्रिकैपिटाना, ऐस्कोकाइटा साइटिसी
14.	लैंटाना केमरा (लैंटाना)	फैबेसी	अमेरिका	ग्रेटियाना स्पैडिसिया
15.	ल्यूकेना ल्यूकोसेफला (सबबूल)	एस्टरेसी	अमेरिका	हेटेरोप्साइला क्यूबाना, ब्रूकोमिया स्पी., प्लेक्ट्रोडेरा स्केलेटर
16.	मिकानिया माइक्रांथा (माइल-ए-मिनट)	फैबेसी	उष्णकटिबंधीय दक्षिण अमेरिका	लिरियोमाइजा स्पी., स्फेनाकॅस एनीसोडैक्टिलस, राइनॉनकोमिमस लैटिपेस
17.	मिमोसा डिप्लोट्राइका (जायंट सेंसिटिव प्लांट)	फैबेसी	अमेरिका	मिमोसेस्टोला स्पी., हिप्सिपाइला स्पी.
18.	मिमोसा पिग्रा (कैट-क्लॉ मिमोसा)	कैक्टेसी	मेक्सिको	हिप्सिपाइला स्पी., मिमोसेस्टोला स्पी.
19.	ओपंटिया डिलेनी (नागफनी)	एस्टरेसी	मेक्सिको	डैक्टाइलोपियस स्पी., कैक्टोफेगस स्पी., फ्यूजेरियम स्पी.
20.	पार्थेनियम हिस्ट्रोफोरस (कांग्रेस घास)	फैबेसी	दक्षिण अमेरिका	जङ्गोग्रामा बाइकोलोरटा, लिस्ट्रोनोटस सेटोसिपेनिस, स्माइकोनिक्स लुटुलैटस
21.	प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा (बिलायती बबूल)	फैबेसी	पूर्वी अमेरिका	सिडिया मँगाना, स्फेनोफोरस वेनाटस, अकॅथेसेलिड्स स्पी.
22.	सेन्ना स्पेक्टाबिलिस (कैल्सियोलारिया शॉवर)	सोलोनेसी	अमेरिका	मेगाकोप्टा क्रिबारिया, कैटरपिलर्स
23.	सोलनम एलाग्निंफोलियम (सिल्वरलीफ नाइटशेड)	फैबेसी	पश्चिमी यूरोप	लेमा ट्रिलिनियाटा
24.	यूलेक्स यूरोपेयस (कॉमन गॉर्स)	फैबेसी	ऑस्ट्रेलिया	एक्सापिऑन यूलिसिस, सिडिया सक्सीडाना, सेरिकोथ्रिप्स स्टैफिलिनस

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	कुल (फैमिली)	उत्पत्ति	जैव-नियंत्रण एजेंट
जलीय आक्रामक खरपतवार				
1.	अल्टरनैन्थेरा फिलाक्सेरोइड (एलिगेटर वीड)	अमरैथेसी	दक्षिण अमेरिका	अगासिकल्स हाइग्रोफिला, अमाइनोथ्रिप्स एंडरसनी, वोगिया मलोई
2.	इकोरनिया क्रैसिप्स (जलकुंभी)	पोटेडेरेसी	ब्राजील	नियोकेटिना आइखेर्नीए, एन. बुची, ऑर्थोगालुम्ना टेरेबैन्टिस, सामियोड्स अल्बीगुटालिस
3.	आइपोमोआ कार्निया (पिंक मॉर्निंग ग्लोरी)	कॉन्वॉल्वुलेसी	दक्षिण अमेरिका	हाइपेना, ओपलेंटा, ब्रैकिक्वॉडस रुमेक्सिकोलेन्स
4.	लिथ्रम सैलिकेरिया (पर्पल लूसस्ट्राइफ)	लिथ्रेसी	उत्तरी अमेरिका	गैलेरुसेला कैल्मारिएन्सिस, जी. पुसिल्ला, नैनोफाइस मार्मेरेटस
5.	साल्विनिया मोलेस्टा (जलीय फर्न)	साल्विनिएसी	उत्तरी अमेरिका	सिटोबैंगस साल्विनिए

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन स्थलीय और जलीय दोनों पारिस्थितिक तंत्रों में खरपतवार और उनके जैविक नियंत्रण कारकों के संबंध को बदल रहा है। खरपतवार अधिक मजबूत और फैलावशील हो रहे हैं जबकि जैविक

नियंत्रण की प्रभावशीलता घट रही है। इसलिए भविष्य में जलवायु-अनुकूल रणनीतियाँ, सही समय पर मुक्तिकरण, आवास प्रबंधन और दीर्घकालीन निगरानी आवश्यक होगी, ताकि पारिस्थितिक संतुलन और कृषि उत्पादकता बनी रह सके।



समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

- जस्टिस कृष्ण स्वामी अययर

हिन्दी अब सारे देश की राष्ट्रभाषा हो गई है, उस भाषा का अध्ययन करने और उसकी उन्नति करने में गर्व का अनुभव करना चाहिए।

- सरदार वल्लभ भाई पटेल

भारत की अखंडता और व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए हिन्दी का प्रचार अत्यंत आवश्यक है।

- महाकवि शंकर कुरूप

कृषि पारितंत्र में खरपतवार: लाभकारी कीटों के लिए आश्रयस्थल

दीक्षा एम. जी. एवं अर्चना अनोखे

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

दशकों से खरपतवारों को कृषि का शत्रु माना जाता रहा है, क्योंकि उन्हें फसलों के साथ पोषक तत्वों, जल और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करने वाला समझा गया। अधिक उपज प्राप्त करने की होड़ में किसानों को इन्हें पूरी तरह नष्ट करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। किंतु हाल के वर्षों में यह स्पष्ट हुआ है कि अनेक खरपतवार कृषि पारितंत्र में एक महत्वपूर्ण सहायक भूमिका निभाते हैं। ये केवल प्रतिस्पर्धी ही नहीं, बल्कि परागणकों, शिकारी कीटों और परजीवी कीटों जैसे लाभकारी कीटों के लिए सुरक्षित आश्रय का कार्य करते हैं। आधुनिक कृषि प्रणालियाँ जैसे बार-बार जुताई, एकल फसल प्रणाली और अत्यधिक कीटनाशकों के उपयोग के कारण अत्यधिक व्यवधानग्रस्त हो गई हैं, जिससे आवास सरल हो जाते हैं और कीटों का जीवन चक्र बाधित होता है। ऐसी परिस्थितियों में परागण और प्राकृतिक कीट नियंत्रण के लिए आवश्यक लाभकारी कीटों का अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। खरपतवार इन सरलीकृत परिदृश्यों में अर्ध-प्राकृतिक आवास द्वीपों की तरह कार्य करते हैं, जहाँ भोजन, आश्रय और अनुकूल सूक्ष्म जलवायु उपलब्ध होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहने, प्रजनन करने और अनुकूल समय पर फसलों में पुनः स्थापित होने में ये खरपतवार लाभकारी कीटों की सहायता करते हैं, जिससे कृषि प्रणाली अधिक संतुलित, लचीली और आत्म-नियंत्रित बनती है एवं रासायनिक आदानों पर निर्भरता कम होती है।

परागणकों के लिए पुष्पीय रिक्तताओं को भरते खरपतवार

अधिकांश कृषि फसलें केवल सीमित अवधि के लिए फूलती हैं, जिसके परिणामस्वरूप परागणकों के लिए लंबे समय तक पराग और मधु की कमी बनी रहती है। खरपतवार विभिन्न ऋतुओं और क्षेत्रों में फूलकर इस पुष्पीय रिक्तता को भरने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और परागणकों को निरंतर भोजन उपलब्ध कराते हैं। *ट्रिडेक्स प्रोकेम्बेंस* (कोट बटन) जैसे खरपतवार बागानों और सब्जी आधारित प्रणालियों में मधुमक्खियों (*एपिस सेरेना* और *ए. मेलिफेरा*), एकाकी मधुमक्खियों तथा होवर मक्खियों को आकर्षित करते हैं, जबकि *एजेराटम कोनिजोइडीज* धान-सब्जी प्रणाली में देशी मधुमक्खियों और तितलियों को सहारा देता है। इसी प्रकार, *क्रोमोलीना ओडोरेटा* जैसे आक्रामक खरपतवार भी, अपने नकारात्मक प्रभावों के बावजूद, पुष्पीय अभाव की अवधि में मधुमक्खियों और सिरफिड मक्खियों के लिए मधु स्रोत प्रदान करते हैं, जो पारिस्थितिक समझौतों को दर्शाता है। मधुमक्खियों के अतिरिक्त, खरपतवार जंगली और देशी परागणकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं, जो पर्यावरणीय तनाव और जलवायु परिवर्तनशीलता के प्रति अधिक सहनशील होते हैं। *क्लियोम विस्कोसा* और *बाइडेन्स पाइलोसा* जैसे फूलदार खरपतवार कारपेन्टर मधुमक्खियों (*जाइलोकोपा प्रजातियाँ*) और हेलिक्विटड मधुमक्खियों को आकर्षित करते हैं, जबकि

खरपतवार-समृद्ध खेत की मेड़ें सरसों, सूरजमुखी और कुकुरबीत फसलों में परागण सेवाओं को सुदृढ़ बनाती हैं।

शिकारी कीटों के लिए सुरक्षित आश्रय

शिकारी कीटों को कृषि क्रियाओं से उत्पन्न यांत्रिक व्यवधान और चरम मौसम से बचने के लिए स्थिर आश्रय तथा अनुकूल सूक्ष्म जलवायु की आवश्यकता होती है। भूमि आवरण बनाने वाले खरपतवार कृषि पारितंत्र में आवासीय जटिलता बढ़ाते हैं और छिपने के स्थान, शीतकालीन आश्रय तथा संतुलित सूक्ष्म वातावरण प्रदान करते हैं, जिससे मिट्टी और पत्तियों पर रहने वाले शिकारी कीटों, जैसे कैराबिड, स्टैफिलिनिड और मकड़ियों का संरक्षण होता है। उदाहरणस्वरूप, लेडीबर्ड भृंग (*कॉक्सिनेलिडी*) *चेनोपोडियम एल्बम* और *अमरेंथस* प्रजातियों पर पाए जाने वाले माहुओं पर निर्भर रहते हैं, जबकि हरे लेसविंग (*क्राइसोपिडी*) वयस्क अवस्था में खरपतवारों के मधु का उपयोग करते हैं और उनके लार्वा फसल कीटों का प्रभावी नियंत्रण करते हैं। इसी प्रकार, मकड़ियाँ और शिकारी हेमिप्टेरन कीट खरपतवार-समृद्ध आवासों में अधिक शिकार उपलब्धता और संरचनात्मक विविधता के कारण पनपते हैं। इसके अतिरिक्त, जब फसल कीट कम होते हैं, तब खरपतवार गैर-हानिकारक शाकाहारी कीटों को आश्रय देकर शिकारी कीटों की आबादी को बनाए रखते हैं। *सोनकस ओलेरेसियस* पर पाए जाने वाले माहू प्रारंभिक मौसम में लेडीबर्ड की संख्या बनाए रखते हैं, जबकि खरपतवारों पर पाए जाने वाले थ्रिप्स और माइट्स शिकारी माइट्स और बग्स को सहारा देकर भविष्य में होने वाले कीट प्रकोप को शीघ्र दबाने में मदद करते हैं।

प्राकृतिक कीट नियंत्रकों एवं परजीवी कीटों को ऊर्जा प्रदान करते खरपतवार

परजीवी कीट प्राकृतिक कीट नियंत्रण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और उनकी दीर्घायु, गतिशीलता तथा प्रजनन क्षमता के लिए शर्करा-समृद्ध भोजन आवश्यक होता है, जो अधिकांश फसलें पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं कराती। फूलदार खरपतवार इस आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। प्राकृतिक या स्वाभाविक रूप से उगने वाला धनिया (*कोरिएंड्रम सैटिवम*) और जंगली सौंफ (*फोएनिकुलम वल्गेरे*) जैसी छत्राकार कुल की प्रजातियाँ ब्रेकोनिड और इन्क्यूमोनिड परजीवी तंतैयों की जीवित रहने की क्षमता और अंडा उत्पादन को बढ़ाती हैं। *यूफोर्बिया हिटा* और *कैसिया टोरा* जैसे खरपतवार लेपिडोप्टेरन कीटों पर आक्रमण करने वाले परजीवियों को सहारा देकर जैविक नियंत्रण को मजबूत करते हैं। इसके अतिरिक्त, खरपतवार गैर-आर्थिक कीटों को आश्रय देकर परजीवी कीटों के लिए भंडार का कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* पत्तियाँ खाने वाले कीटों को सहारा देता है, जिससे फसल

पर्णभक्षी कीटों पर आक्रमण करने वाले परजीवियों की निरंतरता बनी रहती है, जबकि घास वर्ग के खरपतवार ट्राइकोग्रामा जैसे अंड परजीवियों के लिए उपयुक्त मेजबान प्रदान करते हैं, जिनका व्यापक रूप से जैविक नियंत्रण कार्यक्रमों में उपयोग किया जाता है।

प्रकृति-सकारात्मक कृषि की ओर एक दृष्टिकोण परिवर्तन

खरपतवारों के पारिस्थितिक महत्व को स्वीकार करने का अर्थ यह नहीं है कि उन्हें अनियंत्रित रूप से बढ़ने दिया जाए, बल्कि इसका तात्पर्य बुद्धिमान और रणनीतिक खरपतवार प्रबंधन से है। प्रभावी प्रबंधन में खेत की मेड़ों, बांधों और गैर-फसली क्षेत्रों में गैर-आक्रामक, फूलदार खरपतवारों को बनाए रखना शामिल है, ताकि वे फसलों से सीधी प्रतिस्पर्धा किए बिना लाभकारी कीटों को सहारा दे सकें, जबकि फसल

क्षेत्र के भीतर अत्यधिक आक्रामक और एलिलोपैथिक खरपतवारों को हटाया जाए। ऐसे चयनात्मक रूप से प्रबंधित खरपतवार आश्रयों को एकीकृत कीट प्रबंधन और कृषि-पारिस्थितिक प्रणालियों में सम्मिलित करने से प्राकृतिक कीट नियंत्रण और परागण सेवाएँ सुदृढ़ होती हैं। यह दृष्टिकोण प्रकृति-सकारात्मक कृषि की दिशा में एक व्यापक परिवर्तन को दर्शाता है, जहाँ खरपतवारों को केवल अवांछित घुसपैठिए नहीं बल्कि स्थायी कृषि के मौन साझेदार के रूप में देखा जाता है। विवेकपूर्ण प्रबंधन के साथ, खरपतवार परागणकों, शिकारी और परजीवी कीटों को पोषित करते हैं, जो पारितंत्र की लचीलापन बढ़ाते हैं, रासायनिक आदानों पर निर्भरता घटाते हैं और ऐसी जलवायु-सहिष्णु कृषि प्रणालियों को बढ़ावा देते हैं जहाँ जैव विविधता और खाद्य उत्पादन एक-दूसरे के पूरक बनते हैं।

1 परागणकों के लिए पुष्प रिक्त स्थान भरने वाले खरपतवार

ट्रिडेक्स प्रोकीयुम्बेस (कोट बटन)
विभिन्न प्रकार के परागणकों, जैसे मधुमक्खियों (एपिस सेराना और ए. मेलिफेरा), एकाकी मधुमक्खियों और हवरफ्लाई को आकर्षित करता है।



आकर्षित होने वाले परागणक



मधुमक्खियों
(एपिस सेराना)



मधुमक्खियों
(ए. मेलिफेरा)



एकाकी मधुमक्खियों



हवरफ्लाई



जब फसल में फूल कम होते हैं, तब ये फूलदार खरपतवार लगातार अमृत और पराग प्रदान करके परागणक जनसंख्या को बनाए रखने में मदद करते हैं।

2 कीट भक्षी कीटों के लिए सुरक्षित घोंसला देने वाले खरपतवार

भूमि आवरण वाले खरपतवार कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में आवास जटिलता बढ़ाते हैं। ये छिपने की जगह, शीतकालीन आवास और सूक्ष्म वातवरण प्रदान करते हैं, जो मृदा व पर्ण रहने वाले भक्षी कीटों जैसे- कैरेचिड्स, स्टेफाइलिनिड्स के जीवन और टिके रहने में सहायक होते हैं।



कैरेचिड्स



स्टेफाइलिनिड्स

शरण से आगे बढ़कर, खरपतवार भक्षी कीटों के लिए वैकल्पिक भोजन भी प्रदान करते हैं



सोनकस ओलेरस पर एफिड्स



प्रारंभिक मौसम में लेडीबर्ड आबादी को बनाए रखते हैं



खरपतवारों पर थ्रिप्स और माइट्स



भक्षी माइट्स और कीटभक्षी बग्स को सहारा देते हैं



ये वैकल्पिक शिकार और आवास भक्षी कीटों को बनाए रखते हैं, ताकि फसल में कीट प्रकोप होने पर वे तेजी से नियंत्रण कर सकें।

3 प्राकृतिक कीट प्रबंधकों को ईंधन देने वाले खरपतवार – परजीवी कीटों (पैरासिटॉयड्स) के लिए

फूलदार खरपतवार परजीवी कीटों के लिए आवश्यक पोषण देते हैं। छत्राकी कुल (अम्बेलेसी) के पौधे जैसे प्राकृतिक धनिया (कोरिएंड्रम सैटिवम) और जंगली सौंफ (फोनिकुलम वल्गारे) ब्रेकोनिड और इक्न्यूमोनिड परजीवी ततैयों की जीविता और अंडे देने की क्षमता को बढ़ाते हैं।

छत्राकी कुल के खरपतवार अमृत और पराग प्रदान करते हैं

परजीवी कीटों को लाभ



प्राकृतिक धनिया
(कोरिएंड्रम सैटिवम)



जंगली सौंफ
(फोनिकुलम वल्गारे)



ब्रेकोनिड परजीवी ततैया



इक्न्यूमोनिड परजीवी ततैया



अधिक जीविता



अधिक अंडे देने की क्षमता



प्राकृतिक शत्रु की जनसंख्या मजबूत होती है



शाकनाशियों से खरपतवार प्रबंधन के लाभ एवं दुष्प्रभाव

शोभा सौंधिया एवं नीलम राजपूत

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

प्रस्तावना

शाकनाशी कृषि और भूमि प्रबंधन में खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिये आवश्यक रसायन है, जो खरपतवार नियंत्रण कर फसल की पैदावार में वृद्धि करते हैं एवं हाथ से निराई की तुलना में बहुत कम लागत में काम करते हैं। ये चयनात्मक (जैसे 2,4-डी, मेट्रीब्यूजिन, ट्रोपरामिजोन, पेण्डीमेथिलीन इत्यादि) और गैर-चयनात्मक (ग्लाइफोसेट एवं पैराक्वाट) प्रकार के होते हैं। जो पौधे के अंदर जाकर उसे जड़ों सहित सुखाते हैं। ये प्रकाश-संश्लेषण और प्रोटीन संश्लेषण गतिविधियों को बाधित करके पौधे का नष्ट करते हैं। लेकिन इनके निरंतर प्रयोग से शाकनाशी संबंधी चिंताओं के कारण एकीकृत खरपतवार प्रबंधन और सहायक पदार्थों का उपयोग बढ़ रहा है। जिसमें प्राकृतिक एवं जैविक विकल्प भी शामिल हैं। ताकि सुरक्षा तथा प्रभावशीलता सुनिश्चित हो सकें।

शाकनाशियों का अत्यधिक उपयोग अनेक चिंताजनक समस्याओं को जन्म दे रहा है। जैसे-पर्यावरण संबंधी समस्याएं, मृदा स्वास्थ्य संबंधी, भूमिगत जल संबंधी, जलीय जीवों के जीवन से संबंधित समस्याएं इत्यादि जो वर्तमान समय में वृहद समस्या का रूप ले चुकी हैं। इसके अलावा मानव स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं, जिसमें ज्यादातर बच्चों और युवाओं में इसका ज्यादा प्रभाव देखा जा रहा है।

शाकनाशी क्या है?

शाकनाशी ऐसे पादप विषाक्त रसायन हैं। जिनका उपयोग फसलों में पाये जाने वाले अवांछित पौधों (खरपतवारों) को खत्म करने या उनके नियंत्रण के लिये किया जाता है। जिससे खरपतवार एवं फसलीय पौधों में प्रतिस्पर्धा कम होने से फसल उत्पादन में वृद्धि होती है।

पूर्व-अंकुरण एवं पश्च-अंकुरण मुख्य रूप से कृषि या बागवानी में खरपतवार नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाने वाले शाकनाशी हैं। पूर्व-अंकुरण खरपतवार के बीज उगने से पहले मिट्टी में काम करते हैं। जबकि पश्च-अंकुरण खरपतवारों के उगने और दिखाई देने के बाद उन्हें नष्ट करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। पूर्व-अंकुरण शाकनाशी मिट्टी की सतह पर एक सुरक्षात्मक परत बनाते हैं, जो बीजों को अंकुरित होने से रोकता है। इसका उपयोग खरपतवार उगने से पहले किया जाता है। पश्च-अंकुरण शाकनाशी का उपयोग सक्रिय खरपतवारों पर किया जाता है जिससे खरपतवार पौधे का तना एवं पत्तियां नष्ट हो जाते हैं।

वर्तमान में शाकनाशियों के उपयोग को लेकर चिंताएं एवं समस्याएं

कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि वर्तमान समय में यदि शाकनाशियों के बढ़ते उपयोगों को नियंत्रित नहीं किया गया तो इसके दूरगामी परिणाम काफी चिंताजनक हो सकते हैं। वर्तमान समय में शाकनाशियों के अविवेकपूर्ण एवं अनियंत्रित उपयोग से अनेक समस्याएं परिलक्षित हो रही हैं। जैसे शाकनाशियों का अत्यधिक उपयोग मानव स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डाल रहे हैं। शाकनाशियों का लंबे समय तक उपयोग मनुष्यों में कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों को भी जन्म देते हैं। प्रायः पाया गया है कि छिड़काव के पश्चात कुछ शाकनाशियों के अवशेष मिट्टी और पानी में काफी लंबे दिनों तक रह सकते हैं तथा जलीय जीवों को प्रभावित करते हैं। साथ ही इनके अवशेष अनाज एवं सब्जियों आदि में भी पाए गए हैं। विगत कुछ वर्षों से कृषकों द्वारा ग्रीष्मकालीन फसलों (मूंग एवं उड़द) में पैराक्वाट नामक रसायन का व्यापक रूप से उपयोग किया जा रहा है। ये रसायन पत्तियों को शीघ्रता से सुखाने तथा फसल को पकाने का कार्य करता है। परंतु जब मूंग में इनके नमूनों (मृदा, बीज, पत्ती एवं पुआल) का परीक्षण एवं अवलोकन भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर की वैज्ञानिक डॉ. शोभा सौंधिया तथा उनकी टीम द्वारा किया गया तो पाया गया कि पैराक्वाट के अवशेष मृदा तथा अन्य नमूनों (बीज, पत्ती एवं पुआल) में अनुसंश्लित मात्रा से अधिक पाए गये हैं। भविष्य में इसकी अत्यधिक मात्रा के उपयोग से मनुष्यों एवं जानवरों में गंभीर स्वास्थ्य संबंधी एवं पर्यावरणीय परिणाम हो सकते हैं।



चित्र 1: मूंग की खड़ी फसल में पैराक्वाट का स्प्रे

इसके अलावा पशु-पक्षियों में भी शाकनाशी विषाक्ता पायी जा रही है। उपचारित पौधों/चारा का सेवन करने वाले पशुओं (गाय) के दुग्ध में शाकनाशी अवशेषों की उपस्थिति पायी गयी है। ज्यादातर यह देखा गया है कि शाकनाशियों का छिड़काव करते समय अनेक असावधानियां बरती जाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप त्वचा में खुजली/जलन, त्वचा में लाल चकते आदि आम समस्याएं पायी जाती हैं। इसके अलावा भी शाकनाशियों के अत्याधिक उपयोग से अनेक गंभीर व चिंताजनक समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। खरपतवारों में शाकनाशी प्रतिरोध विकसित होना एक बड़ी समस्या है, जिससे विभिन्न क्रियाविधियों वाले उत्पाद का मिश्रण उपयोग किया जाता है। इन सब दुष्प्रभावों को कम करने के लिए शाकनाशियों के साथ फसल-चक्र, जैविक तरीके और यांत्रिक नियंत्रण विधियों का समन्वय किया जा रहा है।

शाकनाशियों के अवशेषों के लिये विश्लेषणात्मक तरीके

विभिन्न विधियों द्वारा प्राप्त मृदा, जल तथा अन्य नमूनों में शाकनाशियों के अवशेषों का निर्धारण अनेक तकनीकों जैसे गैस क्रोमेटोग्राफी (जीसी), लिक्विड क्रोमेटोग्राफी मास स्पेक्ट्रोस्कोपी (एलसीएमएस), यूवी स्पेक्ट्रोफोटोमीट्री, एचपीएलसी इत्यादि के आधार पर किया जाता है। ये तकनीके सार्वभौमिक एवं स्वीकार्य हैं। इन तकनीकों

से पीपीएम या पीपीबी लेबल तक रसायनों के अवशेषों की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। लिक्विड क्रोमेटोग्राफी (एलसी) एक विश्लेषणात्मक तकनीक है जिसका उपयोग घटकों को अलग करने, पहचानने और उनकी मात्रा निर्धारित करने के लिये किया जाता है। इसके अलावा इन तकनीकियों के उपयोग से शाकनाशियों की सूक्ष्म मात्रा का निर्धारण कृषि उत्पादों में आसानी से हो जाता है।

निष्कर्ष: वर्तमान में विभिन्न प्रयोगों, शोधों एवं रिपोर्ट्स इत्यादि के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि कुछ शाकनाशियों से पैराक्वाट एवं ग्लाइकोसेट का अविवेकपूर्ण बढ़ता उपयोग अत्यंत चिंतनीय विषय बन चुका है। क्योंकि इनके अवशेष कृषि उत्पाद, मिट्टी एवं पानी में भी पाए गए हैं। चूंकि ये रसायन मनुष्यों, पशुओं, मृदा एवं पर्यावरण आदि के लिये नुकसानदायक हैं। इस स्थिति को देखते हुए भारत सरकार की ओर से भी जरूरी कदम उठाये जा रहे, ताकि इनके अनियंत्रित उपयोग को कम करके जन-धन एवं पर्यावरण हानि को रोका जा सके। अतः वर्तमान में यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि हमें एकीकृत दृष्टिकोण अपनाकर खरपतवार नियंत्रण करना आरंभ करना होगा। केवल शाकनाशी रसायनो पर निर्भर ना रह कर यांत्रिक जुताई, एकीकृत खरपतवार नियंत्रण एवं फसल चक्रण आदि के साथ शाकनाशियों का उपयोग पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होगा।



चित्र 2: शाकनाशी की उचित मात्रा के उपयोग हेतु खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा चलाये जा रहे जागरूकता कार्यक्रम



देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

- रविशंकर शुक्ल

हिंदी राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

- डॉ. सपूर्णानंद

आक्रामक जलीय खरपतवार साल्विनिया का जैविक नियंत्रण

सुशील कुमार, दीपक पवार, योगिता घरडे, दसारी श्रीकांत, वी.के. चौधरी,
एस.आई. कुवरदादरा, मुकेश कुमार मीणा एवं पी.के. सिंह

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

साल्विनिया मोलेस्टा जिसे सामान्यतः जलीय फर्न या करिबा खरपतवार कहा जाता है, दक्षिण अमेरिका का एक मुक्त तैरने वाला जलीय फर्न है, जो विश्व के उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों सहित भारत में सबसे आक्रामक और समस्याग्रस्त जलीय खरपतवारों में से एक बन चुका है। यह नदियों, झीलों, तालाबों, नहरों और जलाशयों में तीव्र गति से फैल चुका है, विशेष रूप से मध्य भारत के राज्यों जैसे मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ में। यह खरपतवार पोषक तत्वों से समृद्ध एवं ठहरे हुए जल निकायों में तेजी से बढ़ता है, जहाँ यह जल सतह पर घनी और अभेद्य परत बना देता है।

साल्विनिया का अत्यधिक प्रसार अनेक पर्यावरणीय एवं आर्थिक समस्याओं को जन्म देता है। जल सतह पर इसकी मोटी परत सूर्य के प्रकाश को जल के अंदर प्रवेश करने से रोकती है, जिससे जलमग्न जलीय वनस्पतियों में प्रकाश संश्लेषण बाधित होता है। यह जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा को भी कम कर देता है, जिससे मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, यह खरपतवार जल प्रवाह, सिंचाई एवं जल निकासी प्रणालियों में बाधा उत्पन्न करता है, जलविद्युत उपकरणों को अवरुद्ध करता है तथा मानसून के दौरान बाढ़ के जोखिम को बढ़ा देता है। ये सभी प्रभाव जल संसाधन प्रबंधन, जलीय जैव विविधता तथा मत्स्य पालन एवं सिंचाई पर निर्भर ग्रामीण आजीविका के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करते हैं।

परंपरागत नियंत्रण विधियाँ, जैसे यांत्रिक नियंत्रण और रासायनिक खरपतवारनाशी, अपर्याप्त या अस्थिर सिद्ध हुए हैं। यांत्रिक नियंत्रण श्रमसाध्य, समयसाध्य और महंगा होता है, विशेषकर बड़े जल निकायों में। इसके अतिरिक्त, वनस्पतिक भागों से पुनः तेजी से वृद्धि होने के कारण यह केवल अस्थायी राहत प्रदान करता है। दूसरी ओर, रासायनिक नियंत्रण से गैर-लक्षित जलीय जीवों पर विषाक्त प्रभाव पड़ने तथा घरेलू, कृषि एवं औद्योगिक उपयोग के जल के प्रदूषित होने का जोखिम रहता है।

साल्विनिया के दुष्प्रभाव:

जल निकायों में साल्विनिया के अत्यधिक प्रसार से अनेक पर्यावरणीय, पारिस्थितिक तथा आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। यह खरपतवार जल की सतह पर घनी एवं मोटी परत बना देता है, जिससे सूर्य का प्रकाश जल की गहराई तक नहीं पहुँच पाता और जलमग्न जलीय वनस्पतियों में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप जलीय पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके साथ ही, घनी खरपतवार परत वायुमंडल और जल के बीच गैसों के

आदान-प्रदान को कम कर देती है तथा पौधों के सड़ने-गलने से जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है, जिससे मछलियों एवं अन्य जलीय जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और कई बार मछलियों की मृत्यु भी हो जाती है। साल्विनिया की मोटी परत नहरों, सिंचाई चैनलों और जल निकासी मार्गों में जल प्रवाह को बाधित कर देती है, जिससे सिंचाई व्यवस्था प्रभावित होती है और जलभराव की समस्या उत्पन्न हो सकती है। जलाशयों और बांधों में यह खरपतवार जलविद्युत उत्पादन से संबंधित उपकरणों और इनटेक चैनलों को अवरुद्ध कर देता है, जिससे विद्युत उत्पादन प्रभावित होता है और रखरखाव लागत बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त, मानसून के दौरान जल प्रवाह बाधित होने के कारण बाढ़ का खतरा भी बढ़ जाता है। इन सभी कारणों से मत्स्य पालन, सिंचाई और जल संसाधनों पर निर्भर ग्रामीण आजीविका पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साल्विनिया के नियंत्रण के लिए यांत्रिक और रासायनिक नियंत्रण विधियाँ महंगी, श्रमसाध्य, अस्थायी तथा पर्यावरण के लिए हानिकारक सिद्ध हुई हैं, इसलिए इसके दीर्घकालीन और प्रभावी प्रबंधन के लिए जैविक नियंत्रण एक पर्यावरण-अनुकूल, किफायती और टिकाऊ समाधान के रूप में अत्यंत उपयुक्त पाया गया है।

इन चुनौतियों के समाधान के रूप में, विशिष्ट पोषक कीट *सिरटोबैगस साल्विनी* का उपयोग करके जैविक नियंत्रण एक वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित, पारिस्थितिक दृष्टि से सुरक्षित एवं लागत प्रभावी समाधान के रूप में उभरा है। यह घुन प्रजाति साल्विनिया के समान ही भौगोलिक क्षेत्रों की मूल निवासी है और इसका उपयोग भारत सहित अनेक देशों में इस खरपतवार के नियंत्रण के लिए सफलतापूर्वक किया गया है। वयस्क कीट साल्विनिया की शीर्ष कलियों को खाते हैं, जिससे इसकी वृद्धि रुक जाती है, जबकि लार्वा राइजोम एवं तनों के अंदर सुरंग बनाकर संरचनात्मक क्षति एवं आंतरिक सड़न उत्पन्न करते हैं। इस दोहरे आक्रमण के परिणामस्वरूप खरपतवार धीरे-धीरे सूख जाता है, ढह जाता है और अंततः पूरी खरपतवार परत समाप्त हो जाती है।

तकनीकी विवरण

जैविक नियंत्रण कीट

सिरटोबैगस साल्विनी एक विशिष्ट घुन है, जो केवल साल्विनिया पर ही जीवित रहता है और इसे नियंत्रित करता है।

कार्य करने की प्रक्रिया

सिरटोबैगस साल्विनी कीट द्वारा साल्विनिया का जैविक नियंत्रण एक प्रभावी और प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें कीट के वयस्क तथा

लार्वा दोनों अवस्थाएँ पौधे को नुकसान पहुँचाकर उसके विकास को रोकती हैं। वयस्क कीट साल्विनिया की शीर्ष कलियों एवं कोमल पत्तियों को खाते हैं, जिससे पौधे की नई वृद्धि रुक जाती है और उसकी वृद्धि दर धीरे-धीरे कम होने लगती है। दूसरी ओर, कीट के लार्वा पौधे के तनों एवं राइजोम के अंदर सुरंग बनाकर आंतरिक ऊतकों को नष्ट कर देते हैं, जिससे पौधे की संरचना कमजोर हो जाती है और उसमें सड़न उत्पन्न हो जाती है। पौधे की आंतरिक संरचना के नष्ट होने से वह धीरे-धीरे पानी

सोखकर भारी हो जाता है, अपनी तैरने की क्षमता खो देता है और अंततः जल की सतह से नीचे डूबने लगता है। इस प्रकार वयस्क कीट द्वारा बाहरी भागों को नुकसान तथा लार्वा द्वारा आंतरिक भागों को नष्ट करने की संयुक्त प्रक्रिया के कारण साल्विनिया का पौधा धीरे-धीरे सूखकर नष्ट हो जाता है और जल सतह पर बनी उसकी घनी परत समाप्त हो जाती है, जिससे जल सतह पुनः साफ हो जाती है और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र सामान्य होने लगता है।

कार्यान्वयन प्रोटोकॉल

घटक	विवरण
कीट छोड़ने की दर	22,500 वयस्क कीट प्रति हेक्टेयर
पूरक रिलीज	3 माह के अंतराल पर
नियंत्रण अवधि	15-18 माह
प्रारंभिक प्रभाव	5-6 माह में दिखाई देता है
नियंत्रण के बाद प्रभाव	जल सतह साफ, ऑक्सीजन बढ़ती है, मत्स्य उत्पादन बढ़ता है।

तकनीकी की कार्यविधि

साल्विनिया के जैविक नियंत्रण हेतु तकनीक की कार्यविधि एक क्रमबद्ध वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले संक्रमित जल निकायों का विस्तृत सर्वेक्षण एवं मानचित्रण किया जाता है, जिसके अंतर्गत संक्रमण के क्षेत्रफल, खरपतवार की सघनता तथा जल निकाय की स्थिति का आकलन किया जाता है। इसके पश्चात जैव नियंत्रण एजेंट *सिरटोबैगस साल्विनी* कीटों को प्रयोगशाला या नियंत्रित परिस्थितियों में बढ़ाया जाता है तथा उन्हें स्थानीय जलवायु एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुसार अनुकूलित किया जाता है ताकि वे क्षेत्र में सफलतापूर्वक स्थापित हो सकें। इसके बाद नियंत्रित टैंक प्रयोग किए जाते हैं, जिनमें टैंकों में साल्विनिया उगाकर विभिन्न घनत्वों पर कीट छोड़े जाते हैं, जिससे कीट छोड़ने की उपयुक्त दर एवं पूरक रिलीज की आवृत्ति निर्धारित की जा सके। जब कीटों की वृद्धि और प्रभावशीलता संतोषजनक पाई जाती है, तब संस्थान में साल्विनिया पौधों पर कीटों का बड़े पैमाने पर संवर्धन (मास मल्टिपिकेशन) किया जाता है। इसके बाद संक्रमित जल

निकायों में कीटों को लगभग 22,500 कीट प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ा जाता है तथा 3 माह के अंतराल पर 3-4 बार पूरक रिलीज की जाती है ताकि कीटों की आबादी तेजी से स्थापित हो सके। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान समय-समय पर निगरानी की जाती है, जिसमें खरपतवार की स्थिति, कीटों की स्थापना, पौधों की क्षति तथा जल सतह की स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है। इस क्रमबद्ध प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कुछ महीनों में साल्विनिया की वृद्धि रुक जाती है और 15-18 महीनों में जल सतह से खरपतवार लगभग समाप्त हो जाता है।

परिणाम एवं समयावधि

- 5-6 महीनों में *साल्विनिया* की वृद्धि रुक जाती है।
- 12 महीनों में खरपतवार काफी कम हो जाता है।
- 15-18 महीनों में जल सतह पूरी तरह साफ हो जाती है।
- जल की गुणवत्ता और अश्वक्सीजन स्तर बढ़ जाता है।
- मत्स्य पालन पुनः शुरू हो जाता है।

प्रदर्शन एवं सफलता के उदाहरण

स्थान	क्षेत्र	राज्य
पडुआ गांव तालाब, कटनी	50 एकड़	मध्य प्रदेश
घोडापेट तालाब, चंद्रपुर	110 एकड़	महाराष्ट्र
जुनोना झील, चंद्रपुर	750 एकड़	महाराष्ट्र
इरई बांध, चंद्रपुर	250 एकड़	महाराष्ट्र
लांजड तालाब, गढ़चिरोली	40 एकड़	महाराष्ट्र
हट्टी तालाब, गढ़चिरोली	150 एकड़	महाराष्ट्र
तलपुरी झील, दुर्ग	40 एकड़	छत्तीसगढ़

प्रभाव एवं अंगीकरण

सतपुड़ा जलाशय (लगभग 2900 एकड़) में इस तकनीक का सफल उपयोग किया गया।

यांत्रिक नियंत्रण की अनुमानित लागत ₹15 करोड़ थी, जबकि जैविक नियंत्रण (₹49 लाख) सस्ता, टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल सिद्ध हुआ।

प्रमुख प्रभाव:

साल्विनिया के जैविक नियंत्रण के बाद जल निकायों में अनेक सकारात्मक प्रभाव देखे गए। खरपतवार की घनी परत समाप्त होने से जल सतह पुनः साफ हो गई, जिससे जल में सूर्य प्रकाश का प्रवेश बढ़ा और जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार हुआ। जल में घुलित ऑक्सीजन की

मात्रा बढ़ने से मछलियों और अन्य जलीय जीवों के लिए अनुकूल वातावरण बना, जिसके परिणामस्वरूप मत्स्य उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। खरपतवार हटने से जल की गुणवत्ता में सुधार हुआ तथा जल का उपयोग सिंचाई, मत्स्य पालन और अन्य घरेलू एवं कृषि कार्यों के लिए अधिक उपयुक्त हो गया। जल निकायों और नहरों में जल प्रवाह सुचारु होने से सिंचाई व्यवस्था में भी सुधार हुआ और किसानों को समय पर पानी उपलब्ध होने लगा। इसके अतिरिक्त, मत्स्य पालन, नाव संचालन, जल प्रबंधन तथा संबंधित गतिविधियों के पुनः शुरू होने से स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर बढ़े और ग्रामीण आजीविका को भी मजबूती मिली। इस प्रकार साल्विनिया के जैविक नियंत्रण से पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिले।

जैव नियंत्रण कीट छोड़े जाने से पहले



जैव नियंत्रण कीट छोड़े जाने के बाद



सतपुड़ा जलाशय, एसटीपीएस, सारनी, मध्य प्रदेश



पडुआ ग्राम तालाब, कटनी, मध्य प्रदेश



तलपुरी झील, जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़



जुनोना झील, चंद्रपुर, महाराष्ट्र

इस तकनीक के लाभ

साल्विनिया के जैविक नियंत्रण की यह तकनीक पर्यावरण के अनुकूल, किफायती तथा दीर्घकालीन समाधान प्रदान करने वाली प्रभावी विधि है। इस तकनीक में उपयोग किया जाने वाला जैव नियंत्रण एजेंट सिरटोबैगस साल्विनी एक विशिष्ट पोषक कीट है, जो केवल साल्विनिया पर ही जीवित रहता है, इसलिए यह अन्य जलीय पौधों, मछलियों या अन्य जीवों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाता और पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है। यह तकनीक यांत्रिक एवं रासायनिक नियंत्रण विधियों की तुलना में कम लागत वाली है, क्योंकि एक बार कीटों को स्थापित करने के बाद उनकी आबादी स्वयं बढ़ती रहती है और बार-बार नियंत्रण उपाय करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस कारण यह एक स्वयं टिकाऊ तकनीक है। यह तकनीक बड़े जलाशयों, झीलों और तालाबों में भी प्रभावी सिद्ध हुई है, जहाँ यांत्रिक या रासायनिक नियंत्रण कठिन और महंगा होता है। इसके अतिरिक्त, प्रारंभिक स्थापना के बाद इस तकनीक में रखरखाव की आवश्यकता बहुत कम होती है। इन सभी विशेषताओं के कारण साल्विनिया के नियंत्रण के लिए यह एक दीर्घकालीन, टिकाऊ और व्यावहारिक समाधान के रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

अपनाने हेतु सिफारिशें

साल्विनिया के जैविक नियंत्रण को प्रभावी ढंग से अपनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशों का पालन करना आवश्यक है। सर्वप्रथम संक्रमित जल निकायों का विस्तृत सर्वेक्षण एवं मानचित्रण किया जाना चाहिए, ताकि संक्रमण के क्षेत्र, खरपतवार की सघनता तथा नियंत्रण की आवश्यकता का सही आंकलन किया जा सके। इसके साथ ही खरपतवार बायोमास का आकलन करना आवश्यक है, जिससे जैव नियंत्रण एजेंट की आवश्यक मात्रा एवं रिलीज की योजना निर्धारित की जा सके। यदि बड़े क्षेत्र में साल्विनिया का संक्रमण हो, तो कीटों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय स्तर पर कीट उत्पादन या संवर्धन इकाई स्थापित करना लाभदायक होता है। इस तकनीक के सफल कार्यान्वयन के लिए मत्स्य विभाग, सिंचाई विभाग, विद्युत उत्पादन इकाइयों तथा स्थानीय प्रशासन के साथ समन्वय स्थापित करना भी आवश्यक है, ताकि जल निकायों का प्रबंधन समन्वित रूप से किया जा सके। इसके अतिरिक्त, कीटों की स्थापना, खरपतवार की स्थिति तथा नियंत्रण की प्रगति का आकलन करने के लिए समय-समय पर निगरानी करना आवश्यक है। इन सभी उपायों को अपनाकर साल्विनिया के जैविक नियंत्रण कार्यक्रम को अधिक प्रभावी, टिकाऊ और सफल बनाया जा सकता है।



खीरे की खेती में ऋतु-वार खरपतवार प्रबंधन

नीरज कुमार प्रजापति¹, संजय कुमार¹, रजनीश सिंह² एवं अवनीश चन्द्र³

¹बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

²तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

³राजकीय महाविद्यालय, जखिनी, वाराणसी (उ.प्र.)

खीरा भारत की एक महत्वपूर्ण सब्जी फसल है जिसकी खेती वर्षभर तीनों ऋतुओं, खरीफ (जून-सितंबर), रबी (अक्टूबर-जनवरी) एवं जायद (फरवरी-मई) में की जाती है। खरपतवारों के कारण खीरे की उपज में 40 से 60 प्रतिशत तक हानि हो सकती है। उचित समय पर एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाने से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि कृषि लागत भी कम होती है। खीरा (*क्युक्यूमिस सटाईवस* एल.) कुकुरबिटेसी कुल की एक प्रमुख सब्जी फसल है। भारत में इसकी खेती लगभग 85,000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में होती है तथा वार्षिक उत्पादन लगभग 14.6 लाख मीट्रिक टन है। इसे सलाद, अचार एवं औषधीय उपयोग के लिए उगाया जाता है। खीरे में 96 प्रतिशत जल, विटामिन सी, विटामिन के पोटेसियम एवं मैग्नीशियम जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। खीरे की फसल पर खरपतवारों का प्रकोप उसके प्रारंभिक जीवनकाल में सर्वाधिक

हानिकारक होता है। फसल के अंकुरण से लेकर 30-35 दिनों की अवस्था तक खरपतवारों के साथ प्रतिस्पर्धा का दौर क्रांतिक अवधि कहलाता है। इस अवधि में यदि खरपतवारों पर नियंत्रण न किया जाए तो उपज में 40 से 60 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। भारत की कृषि जलवायु विविधता के कारण खीरे की खेती तीनों प्रमुख ऋतुओं में की जाती है और प्रत्येक ऋतु में खरपतवारों की प्रजातियाँ, उनकी सघनता एवं नियंत्रण की विधियाँ अलग-अलग होती हैं। अतः ऋतु-वार खरपतवार प्रबंधन की समझ अत्यंत आवश्यक है।

खरपतवारों से हानि - एक दृष्टि खरपतवार फसलों से पोषक तत्व, जल, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। इसके अतिरिक्त ये कीट-व्याधियों के आश्रयदाता भी होते हैं।

हानि का प्रकार	अनुमानित हानि (प्रतिशत)	विवरण
उपज हानि (बिना नियंत्रण)	40-60 प्रतिशत	सम्पूर्ण मौसम खरपतवार रहने पर
क्रांतिक अवधि में हानि	25-45 प्रतिशत	फसल से पहले खरपतवार ग्रहण करते हैं
नाइट्रोजन अवशोषण (खरपतवार)	30-40 किग्रा/हेक्टेयर	बुवाई के 0-35 दिन
जल का उपयोग	2-3 गुना अधिक	कुछ खरपतवार फसल से ज्यादा जल ग्रहण करते हैं
गुणवत्ता में कमी	20-30 प्रतिशत	फल छोटे व विकृत हो जाते हैं
कटाई लागत में वृद्धि	15-25 प्रतिशत	घनी खरपतवार से श्रम बढ़ता है

खीरे की फसल में प्रमुख खरपतवार प्रजातियाँ- खीरे की फसल में पाई जाने वाली खरपतवार प्रजातियों को उनके जीवनकाल एवं वर्गीकरण के

आधार पर निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है:

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार			
स्थानीय नाम	स्थानीय नाम	वानस्पतिक नाम	परिवार ऋतु
बथुआ	चेनोपोडियम एल्बम	चेनोपोडियासी	रबी
हिरनखुरी	कन्वोल्वुलस अर्वेन्सिस	कन्वोल्वुलेसी	खरीफ/जायद
जंगली चौलाई	ऐमारेथस विरिडिस	ऐमारेथसी	खरीफ/जायद
मकोय	सोलनम नाइग्रम	सोलानेसी	खरीफ
कनकौआ	क्लियोम विस्कोसा	कैपरेसी	खरीफ
सत्यानाशी	आर्जीमोन मेक्सिकाना	पापावेरेसी	रबी/जायद
जंगली पालक	रुमेक्स डेंटेटस	पोलीगोनेसी	रबी

घास वर्गीय खरपतवार			
सांवक	इचिनोक्लोआ क्रूस-गैली	पोएसी	खरीफ
मकड़ा घास	डिजिटेरिया सेंगुइनालिस	पोएसी	खरीफ/जायद
दूब घास	सिनोडोन डेक्टाइलॉन	पोएसी	वर्षभर
जंगली जई	अवेना फतुआ	पोएसी	रबी
गेहूँसा	फालारिस माइनर	पोएसी	रबी
मोथा वर्गीय खरपतवार			
मोथा	साइपेरस रोटंडस	साइपेरेसी	खरीफ/जायद
छतरी मोथा	साइपेरस इरिया	साइपेरेसी	खरीफ
जल मोथा	साइपेरस डिफॉर्मिस	साइपेरेसी	खरीफ

खरपतवार-फसल प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवधि- प्रत्येक फसल में एक निश्चित अवधि होती है जब खरपतवारों की उपस्थिति सर्वाधिक हानिकारक होती है। इसे 'क्रांतिक प्रतिस्पर्धा काल' कहते हैं। खीरे में यह

अवधि बुवाई/रोपाई के 10 से 35 दिनों के बीच होती है। यदि इस अवधि में खेत को खरपतवारमुक्त रखा जाए तो 85-90 प्रतिशत उपज-हानि से बचा जा सकता है।

अवधि (बुवाई से दिन)	खरपतवार प्रभाव	अनुशंसित कार्यवाही
0-10 दिन	न्यूनतम प्रभाव	प्री-इमर्जेंस शाकनाशी उपयोग
10-35 दिन	क्रांतिक अवधि - अधिकतम हानि	निराई-गुड़ाई / पोस्ट-इमर्जेंस शाकनाशी
35-60 दिन	मध्यम प्रभाव	एक निराई / मल्लिचंग
60 दिन के बाद	न्यूनतम प्रभाव	फसल की छत्रछाया खरपतवार दबाती है

ऋतु-वार खरपतवार प्रबंधन- भारत में खीरे की खेती तीन प्रमुख ऋतुओं में की जाती है। प्रत्येक ऋतु की जलवायु, मिट्टी की नमी एवं खरपतवार प्रजातियाँ भिन्न होने के कारण प्रबंधन रणनीति भी अलग होती है।

खरीफ ऋतु (जून-सितंबर) - वर्षाकालीन फसल

1. **जलवायु एवं खरपतवार घनत्व एवं हानि:** खरीफ ऋतु में उच्च तापमान (30-40 डिग्री सेल्सियस), अधिक वर्षा (600-900 मि.मी.) एवं उच्च आर्द्रता के कारण खरपतवारों की वृद्धि अत्यन्त तीव्र होती है। इस मौसम में चौड़ी पत्ती वाले एवं घास वर्गीय दोनों प्रकार के खरपतवार जिसमें प्रमुख खरपतवार जंगली चौलाई, सांवक, मकड़ा घास, मोथा, कनकौआ, एवं हिरनखुरी उगते हैं। खरीफ में प्रति वर्गमीटर 40-60 खरपतवार पौधे पाए जाते हैं। खरीफ खीरे में अनियंत्रित खरपतवारों से उपज में 55 प्रतिशत तक हानि हो सकती है।

2. **खरीफ में खरपतवार प्रबंधन की रणनीति**

अ. भूमि तैयारी एवं कृषि उपाय

- गर्मी की गहरी जुताई (मई-जून) करने से खरपतवारों के बीज एवं कंद नष्ट हो जाते हैं।
- बुवाई से पूर्व एक बार हल्की सिंचाई देकर खरपतवारों को अंकुरित करें, फिर उथली जुताई से नष्ट करें। इस विधि को 'स्टेल सीड-बेड तकनीक' कहते हैं।

- सड़ी हुई गोबर की खाद का उपयोग करें, कच्ची खाद में खरपतवार बीज होते हैं।
- प्रमाणित बीजों का उपयोग करें जो खरपतवार-बीज रहित हों।

ब. मल्लिचंग (पलवार)

- काली पॉलिथीन मल्ल (25-50 माइक्रोन) बिछाने से खरपतवार 90-95 प्रतिशत तक नियंत्रित होते हैं। साथ ही मिट्टी की नमी संरक्षित होती है एवं फल मिट्टी से दूर रहता है।
- धान का पुआल, गेहूँ की नाड़, या अन्य जैविक पलवार (5-8 सें.मी. मोटाई) भी प्रभावी है।
- काली पॉलिथीन मल्ल से खरीफ खीरे की उपज में 28-35 प्रतिशत वृद्धि होती है।

स. यांत्रिक/हस्त निराई

- प्रथम निराई-गुड़ाई: बुवाई के 15-20 दिन बाद (खरपतवार 5-8 सें.मी. ऊँचाई पर)।
- द्वितीय निराई-गुड़ाई: बुवाई के 30-35 दिन बाद।
- बेल फैलने के बाद (40 दिन के पश्चात) हस्त निराई संभव नहीं, केवल हाथ से खींचकर निकालें।
- खरीफ में अत्यधिक वर्षा के समय निराई के लिए मजदूर उपलब्ध न हों तो शाकनाशी उपयोग आवश्यक हो जाता है।

द. रासायनिक नियंत्रण (खरीफ)

शाकनाशी	मात्रा (ग्राम/लीटर सक्रिय तत्व/हेक्टेयर)	उपयोग का समय	नियंत्रित खरपतवार
पेन्डीमेथालिन 30 ई.सी.	1.0 किग्रा./हे.	बुवाई के 0-3 दिन (प्री-इमर्जेस)	घास + चौड़ी पत्ती
मेट्रिब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	250-350 ग्राम/हे.	बुवाई के 0-2 दिन (प्री-इमर्जेस)	चौड़ी पत्ती
क्लोरीमुरॉन इथाइल	9 ग्राम/हे.	बुवाई के 20-25 दिन (पोस्ट-इमर्जेस)	चौड़ी पत्ती
फ्लुअजीफॉप-पी-ब्यूटाइल	750 मि.ली./हे.	बुवाई के 20-30 दिन (पोस्ट-इमर्जेस)	केवल घास वर्गीय
क्विजालोफॉप-पी-इथाइल	50-75 ग्राम/हे.	बुवाई के 15-25 दिन (पोस्ट-इमर्जेस)	घास एवं मोथा

महत्वपूर्ण सावधानी: खीरा कुकुरबिटेसी कुल की फसल है जो अनेक शाकनाशियों के प्रति संवेदनशील है। पेन्डीमेथालिन का छिड़काव करते समय यह सुनिश्चित करें कि मिट्टी में पर्याप्त नमी हो अन्यथा प्रभाव कम होगा। पोस्ट-इमर्जेस शाकनाशियों का छिड़काव हमेशा सांयकाल में करें।

रबी ऋतु (अक्टूबर-जनवरी) - शीतकालीन फसल

1. **जलवायु एवं खरपतवार घनत्व एवं हानि:** रबी ऋतु में तापमान कम (15-25 डिग्री सेल्सियस) एवं वायुमंडलीय आर्द्रता मध्यम होती है। इस मौसम में खरपतवारों की वृद्धि खरीफ की अपेक्षा धीमी होती है किंतु कुछ विशेष ठंडक-प्रिय खरपतवार जैसे बथुआ, जंगली पालक एवं जंगली जई अत्यंत प्रबल होते हैं, इसके अतिरिक्त सत्यानाशी, गेहूँसा एवं हिरनखुरी भी प्रमुख खरपतवार हैं। रबी खीरे में खरपतवार घनत्व 20-35 प्रति वर्ग मीटर होता है। रबी खीरे में अनियंत्रित खरपतवार से 35-45 प्रतिशत उपज हानि होती है जो खरीफ से कम परंतु उल्लेखनीय है।

2. रबी में खरपतवार प्रबंधन की रणनीति

अ. कृषि उपाय

- अक्टूबर में बुवाई से पहले खेत की गहरी जुताई करें।
- उचित मेड़-नाली पद्धति अपनाएं जिससे जल निकासी उचित रहे और

खरपतवार प्रकोप कम हो।

- उर्वरक केवल फसल की जड़ क्षेत्र में दें, खुले क्षेत्र में न दें, अन्यथा खरपतवार को भी पोषण मिलेगा।

ब. जैविक मल्लिचंग

- रबी में धान का पुआल, गन्ने की खोई, या बागबानी अवशेष मल्लिच के रूप में उपयोगी हैं।
- 5-6 सें.मी. मोटी जैविक मल्लिच बिछाने से मिट्टी का तापमान बनाए रखने के साथ-साथ खरपतवार भी नियंत्रित होते हैं।
- रबी की ठंड में पारदर्शी पॉलिथीन का उपयोग न करें क्योंकि यह खरपतवार के अंकुरण में सहायक हो सकती है; काली पॉलिथीन का उपयोग करें।

स. यांत्रिक/हस्त निराई

- रबी में खरपतवार वृद्धि धीमी होने के कारण एक से दो निराई पर्याप्त होती है।
- प्रथम निराई: बुवाई के 20-25 दिन बाद।
- द्वितीय निराई (आवश्यकतानुसार): बुवाई के 40-45 दिन बाद।

द. रासायनिक नियंत्रण (रबी)

शाकनाशी	मात्रा	उपयोग का समय	विशेष लक्ष्य
पेन्डीमेथालिन 30 ई.सी.	0.75-1.0 किग्रा./हे.	बुवाई के 0/2 दिन बाद	घास + चौड़ी पत्ती
ट्राइफ्लुरालिन 48 ई.सी.	1.0 किग्रा./हे.	बुवाई से पहले मिट्टी में मिलाएं	घास + चौड़ी पत्ती
ऑक्सिफ्लोरफेन 23.5 ई.सी.	0.15/0.25 किग्रा./हे.	बुवाई के 0/3 दिन (प्री-इमर्जेस)	चौड़ी पत्ती
मेट्रिब्यूजिन 70 डब्ल्यू.पी.	250 ग्राम/हे.	बुवाई के 3 दिन बाद	चौड़ी पत्ती + बथुआ
फ्लुअजीफॉप-पी-ब्यूटाइल	500 मि.ली./हे.	बुवाई के 25/35 दिन बाद	घास वर्गीय

जायद ऋतु (फरवरी-मई) - ग्रीष्मकालीन फसल

1. **जलवायु एवं मोथा -** जायद की विशेष समस्या: जायद ऋतु में तापमान धीरे-धीरे बढ़ता है (20-42 डिग्री सेल्सियस तक) और वर्षा लगभग नहीं होती। सिंचित परिस्थितियों में नमी के कारण

मोथा, हिरनखुरी, एवं मकड़ा घास जैसे खरपतवार गंभीर समस्या बनते हैं। जायद में सिंचाई के साथ खरपतवारों की लहर-दर-लहर वृद्धि देखी जाती है। मोथा की जड़-गाँठें इस ऋतु में सर्वाधिक सक्रिय रहती हैं। मोथा को 'खरपतवारों का राजा' कहा जाता है।

एक पौधे से मात्र 120 दिनों में 1900 नई जड़-गाँठें बन सकती हैं। यह शाकनाशियों के प्रति अत्यंत सहनशील होता है एवं इसकी जड़ें 20-30 सें.मी. गहराई तक जाती हैं। मोथा से जायद खीरे की उपज में 30-50 प्रतिशत हानि संभव है।

2. जायद में खरपतवार प्रबंधन

अ. जल प्रबंधन एवं खरपतवार नियंत्रण

- **ड्रिप सिंचाई अपनाएं:** इससे केवल फसल की जड़ में जल मिलता है, खरपतवार के बीज क्षेत्र में नमी नहीं मिलती।
- ड्रिप सिंचाई से खरपतवार संख्या में 60-70 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है।

- थाला विधि से सिंचाई में पूरे खेत में नमी जाती है जो खरपतवारों को प्रोत्साहित करती है, अतः इससे बचें।

ब. मल्लिचंग - जायद में अनिवार्य

- जायद में काली पॉलिथीन मल्लिचंग तापमान नियंत्रण एवं खरपतवार नियंत्रण दोनों के लिए आदर्श है।
- मल्लिचंग से मिट्टी का तापमान 3-5 डिग्री सेल्सियस कम रहता है जो खीरे की जड़ों के लिए लाभदायक है।
- जैविक मल्लिचंग (5-8 सें.मी.) जायद में नमी बनाए रखने एवं मोथा की कंदगाँठों को रोकने में सहायक है।

स. रासायनिक नियंत्रण (जायद - मोथा प्रबंधन सहित)

शाकनाशी	मात्रा	उपयोग का समय	विशेष प्रभाव
पेन्डीमेथालिन 30 ई.सी.	1.0-1.25 किग्रा./हे.	बुवाई के 0-3 दिन बाद	घास + चौड़ी पत्ती
हेलोसल्फ्यूरॉन मिथाइल	27-53 ग्राम/हे.	बुवाई के 15-20 दिन बाद	मोथा (उत्तम)
इमेजेथापायर 10 एस.एल.	75-100 ग्राम/हे.	बुवाई के 15-25 दिन बाद	मोथा + चौड़ी पत्ती
क्विजालोफॉप-पी-इथाइल 5 ई.सी.	50-75 ग्राम/हे.	बुवाई के 20-30 दिन बाद	घास वर्गीय
फ्लुअजीफॉप-पी-ब्यूटाइल	750 मि.ली./हे.	बुवाई के 20-30 दिन बाद	घास वर्गीय

नोट: हेलोसल्फ्यूरॉन मिथाइल मोथा नियंत्रण के लिए सर्वाधिक प्रभावी शाकनाशी है जिसे खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर ने भी प्रमाणित किया है। इसका प्रयोग करते समय 0.1 प्रतिशत स्टिकर/सर्फैक्टेंट मिलाना आवश्यक है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

किसी एक विधि पर निर्भर न रहते हुए विभिन्न विधियों के संयोजन

से खरपतवारों का स्थायी एवं प्रभावी प्रबंधन किया जाता है। इसे ही एकीकृत खरपतवार प्रबंधन कहते हैं।

विधि	तकनीक	प्रभावशीलता	लागत (रु./हे.)
निवारक विधि	प्रमाणित बीज, स्वच्छ यंत्र, खाद की सफाई	आधारभूत नियंत्रण	500-1000
कृषि-जन्य विधि	गहरी जुताई, फसल चक्र, सघन बुवाई	30-50 प्रतिशत कमी	1000-2000
यांत्रिक विधि	हस्त-निराई, खुरपी, व्हील-हो	70-85 प्रतिशत नियंत्रण	3000-5000
पलवार (मल्लिचंग)	काली पॉलिथीन, जैविक पलवार	85-95 प्रतिशत नियंत्रण	8000-15000
जैविक विधि	फसलावरण, हरी खाद, एलिलोपैथी	20-40 प्रतिशत कमी	500-1500
रासायनिक विधि	प्री+पोस्ट इमर्जेंस शाकनाशी	80-95 प्रतिशत नियंत्रण	1500-3000
समन्वित विधि	उपरोक्त सभी का संयोजन	90-98 प्रतिशत नियंत्रण	5000-8000

शाकनाशी उपयोग में आवश्यक सावधानियाँ

रासायनिक शाकनाशियों का उपयोग यदि सही तरीके से न किया जाए तो फसल को भारी नुकसान हो सकता है। खीरा एक संवेदनशील फसल है, अतः निम्न बातों पर विशेष ध्यान दें:

- शाकनाशी का चयन खरपतवार की प्रजाति के अनुसार करें - घास वर्गीय खरपतवारों के लिए ग्रासिसाइड एवं चौड़ी पत्ती के लिए ब्रॉडलीफ किलर उपयोग करें।
- प्री-इमर्जेंस शाकनाशी का छिड़काव बुवाई के 24-72 घंटे के भीतर मिट्टी में पर्याप्त नमी होने पर करें।
- पोस्ट-इमर्जेंस शाकनाशी का छिड़काव सुबह 8 बजे से पहले या शाम 4 बजे के बाद करें।
- पम्प को अच्छी तरह धोकर ही दूसरी फसल पर उपयोग करें - अवशेषी शाकनाशी खीरे को नुकसान कर सकते हैं।

- शाकनाशी के साथ उचित मात्रा में स्टिकर (0.05-0.1 प्रतिशत) मिलाने से प्रभावशीलता 15-25 प्रतिशत बढ़ जाती है।
- कभी भी अनुशंसित मात्रा से अधिक शाकनाशी का उपयोग न करें - इससे मिट्टी में अवशेष बनता है जो अगली फसल के लिए हानिकारक है।
- शाकनाशी छिड़काव के समय सुरक्षात्मक उपकरण (दस्ताने, मास्क, चश्मा) पहनें।

- छिड़काव के बाद 6-8 घंटे बारिश न हो, ऐसा मौसम देखकर ही छिड़काव करें।

फसल चक्र एवं खरपतवार प्रबंधन

उचित फसल चक्र अपनाने से खरपतवारों की संख्या में स्वाभाविक रूप से कमी आती है। खीरे के लिए अनुशंसित फसल चक्र निम्न हैं:

फसल चक्र	मौसम क्रम	खरपतवार नियंत्रण लाभ
खीरा → गेहूँ → मूंग	खरीफ-रबी-जायद	मोथा एवं ब्रॉडलीफ दोनों में कमी
खीरा → सरसों → खीरा	खरीफ-रबी-जायद	सरसों की एलिलोपैथी से खरपतवार कम
खीरा → मेथी/धनिया → खीरा	खरीफ-रबी-जायद	मसाला फसलों से मोथा नियंत्रण
मक्का अंतरफसल	खरीफ सहफसल	छत्रछाया से खरपतवार दबाव कम

जैविक एवं वैकल्पिक खरपतवार नियंत्रण

1. **एलिलोपैथिक फसलें:** कुछ पौधे ऐसे रासायनिक पदार्थ छोड़ते हैं जो पड़ोसी खरपतवारों की वृद्धि रोकते हैं। खीरे के साथ इनका उपयोग उपयोगी है:
 - सूरजमुखी: बाड़ पर लगाने से 40-50 प्रतिशत खरपतवार घटते हैं।
 - सरसों: मृदा में अवशेष छोड़ने पर खरपतवार अंकुरण 30-45 प्रतिशत कम।
 - मेथी: हरी खाद के रूप में जोतने से मोथा 25 प्रतिशत कम।

2. **बायोहर्बिसाइड:** 'कॉर्नेक्सिस्टार' (फोमा मैक्रोस्टोमा) नामक कवक पर आधारित जैविक शाकनाशी परीक्षण स्तर पर उपयोगी पाया गया है। भारत में इसे अभी अनुमति नहीं मिली है किंतु भविष्य में यह विकल्प उपयोगी हो सकता है।
3. **गहरी जुताई एवं सौरीकरण:** मई-जून में पारदर्शी पॉलिथीन बिछाकर 4-6 सप्ताह सौरीकरण करने से मिट्टी की ऊपरी 10 सें.मी. परत में खरपतवार बीज का अंकुरण 70-85 प्रतिशत तक कम हो जाता है। यह विधि जायद की बुवाई से पहले विशेष उपयोगी है।

ऋतु-वार एकीकृत खरपतवार प्रबंधन - संक्षिप्त कार्ययोजना

कार्य	खरीफ (जून-सित.)	रबी (अक्टू.-जन.)	जायद (फर.-मई)
भूमि तैयारी	गर्मी जुताई + स्टेल् सीडबेड	शरद जुताई + पाटा	ग्रीष्म जुताई + सौरीकरण
मल्लिचंग	काली पॉलिथीन/पुआल	जैविक मल्लिच/काली पॉलिथीन	काली पॉलिथीन (अनिवार्य)
प्री-इमर्जेंस शाकनाशी	पेन्डीमेथालिन 1.0 किग्रा./हे.	पेन्डीमेथालिन 0.75 किग्रा./हे.	पेन्डीमेथालिन 1.25 किग्रा./हे.
प्रथम निराई	15-20 बुवाई के बाद	20-25 बुवाई के बाद	15-20 बुवाई के बाद
द्वितीय निराई	30-35 बुवाई के बाद	40-45 बुवाई के बाद	30-35 बुवाई के बाद
पोस्ट-इमर्जेंस शाकनाशी	फ्लुअजीफॉफ/क्लोरीमुरॉन	फ्लुअजीफॉफ	हेलोसल्फ्यूरॉन (मोथा हेतु)
विशेष समस्या	जंगली चौलाई/सांवक	बथुआ/जंगली पालक	मोथा/हिरनखुरी
अपेक्षित उपज हानि (बिना नियंत्रण)	50-60 प्रतिशत	35-45 प्रतिशत	40-55 प्रतिशत



खीरे में काली पॉलिथीन मल्ल



हस्त निराई-गुड़ाई



शाकनाशी का छिड़काव



बथुआ



हिरनखुरी



जंगली चौलाई



सांवक



मंकड़ा घास



मोथा



सरसों की सहफसल



ड्रिप सिंचाई



गर्मी की गहरी जुताई

निष्कर्ष:

खीरे की खेती में खरपतवार प्रबंधन एक बहु-आयामी चुनौती है जो ऋतु, जलवायु एवं खेत की परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। उचित समय पर एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाने से उपज में 45-60 प्रतिशत की वृद्धि, गुणवत्ता में सुधार एवं उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी आती है। खरपतवार प्रबंधन का मूल सिद्धांत यह है कि फसल की 'क्रांतिक अवधि'

(बुवाई के 10-35 दिन) में खेत अवश्य खरपतवारमुक्त रखा जाए। काली पॉलिथीन मल्ल एवं ड्रिप सिंचाई के संयोजन से लागत अधिक होते हुए भी दीर्घकालीन लाभप्रदता सर्वाधिक रहती है। रासायनिक शाकनाशियों का उपयोग कृषि विशेषज्ञों की सलाह से एवं सही मात्रा में करें। जैविक एवं यांत्रिक विधियों के साथ संयोजन ही टिकाऊ एवं पर्यावरण-मित्र खरपतवार प्रबंधन की दिशा में सही कदम है।



कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतंत्र नहीं है, जब तक यह अपनी भाषा में बात नहीं करता।

- महात्मा गांधी

हिन्दी से किसी भारतीय भाषाको भय नहीं है। यह सबकी सहोदर है।

- महादेवी वर्मा

जलवायु परिवर्तन के युग में खरपतवार नियंत्रण की नई चुनौतियां

शिवानी उपाध्याय

पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

भारतीय कृषि आज दोहरी चुनौती का सामना कर रही है। एक ओर बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन बनाए रखना आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन कृषि उत्पादन प्रणाली को निरंतर प्रभावित कर रहा है। अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, बार-बार आने वाली सूखा एवं बाढ़ जैसी परिस्थितियाँ फसल उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। लेकिन जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल फसलों तक सीमित नहीं है। खेतों में फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले खरपतवार भी बदलती जलवायु के अनुरूप स्वयं को ढाल रहे हैं, जिससे उनका नियंत्रण पहले की अपेक्षा अधिक कठिन होता जा रहा है।

खरपतवार कृषि उत्पादन में सबसे बड़ी जैविक बाधाओं में से एक हैं। अनुमान है कि यदि खरपतवारों का नियंत्रण न किया जाए तो प्रमुख फसलों में 20 से 50 प्रतिशत तक उपज हानि हो सकती है। भारत में धान, गेहूँ, मक्का, सोयाबीन, कपास तथा दलहनी फसलों में खरपतवारों के कारण होने वाली आर्थिक क्षति अरबों रुपये प्रतिवर्ष आंकी जाती है। अब जलवायु परिवर्तन के कारण यह समस्या और अधिक जटिल होती जा रही है।

जलवायु परिवर्तन और खरपतवार: एक नया समीकरण

विगत कुछ दशकों में पृथ्वी के औसत तापमान में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है। इसके साथ ही वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की मात्रा भी बढ़ी है। वैज्ञानिकों का मानना है कि बदलती जलवायु केवल फसलों के विकास को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि खरपतवारों की वृद्धि, प्रजनन, प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता और भौगोलिक वितरण को भी प्रभावित करती है।

खरपतवार सामान्यतः अत्यधिक अनुकूलनशील होते हैं। अधिकांश खरपतवारों में तीव्र वृद्धि, अधिक बीज उत्पादन, प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता तथा तेजी से विकसित होने की प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि बदलती जलवायु परिस्थितियों का लाभ वे कई बार फसलों से अधिक प्रभावी ढंग से उठा लेते हैं।

वैज्ञानिक अध्ययनों से संकेत मिला है कि बढ़ते तापमान के कारण अनेक खरपतवार प्रजातियाँ नए क्षेत्रों में फैल रही हैं। जिन क्षेत्रों में पहले कुछ विशिष्ट खरपतवार नहीं पाए जाते थे, वहां अब उनकी उपस्थिति दर्ज की जा रही है। इसके परिवर्तनस्वरूप किसानों को ऐसे खरपतवारों का सामना करना पड़ रहा है। जिनके नियंत्रण का अनुभव उनके पास नहीं है।

बढ़ता कार्बन डाइ-ऑक्साइड स्तर: फसलों के लिए वरदान या खरपतवारों के लिए अवसर?

वातावरण में बढ़ती CO_2 सांद्रता को सामान्यतः पौधों की वृद्धि

के लिए लाभकारी माना जाता है। परंतु यह लाभ सभी पौधों को समान रूप से नहीं मिलता। अनेक शोधों से पता चला है कि कुछ खरपतवार प्रजातियाँ बढ़ी हुई CO_2 का उपयोग फसलों की तुलना में अधिक कुशलता से कर सकती हैं।

इसके परिणामस्वरूप खरपतवारों में निम्न परिवर्तन देखे जा सकते हैं अधिक जैवभार उत्पादन, तीव्र वृद्धि दर, अधिक बीज उत्पादन और संसाधनों के लिए बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा।

ऐसी स्थिति में फसल और खरपतवार के बीज प्रतिस्पर्धा का संतुलन खरपतवारों के पक्ष में जा सकता है। विशेष रूप से चौड़ी पत्ती वाले कई खरपतवार भविष्य में और अधिक आक्रामक हो सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन आक्रामक खरपतवारों के प्रसार को भी बढ़ावा दे सकता है। भारत में गाजरघास (*पार्थेनियम हिस्टोफोरस*), लैंटाना (*लैंटाना कैमरा*) तथा जलकुंभी जैसे खरपतवार पहले से ही समस्या बने हुए हैं। बढ़ता तापमान और परिवर्तित वर्षा पैटर्न इन प्रजातियों को नए क्षेत्रों में स्थापित होने में सहायता प्रदान कर सकता है। कई आक्रामक खरपतवारों में अत्यधिक बीज उत्पादन क्षमता एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की शक्ति होती है। इसलिए वे स्थानीय वनस्पतियों तथा कृषि प्रणाली दोनों के लिए खतरा बन सकते हैं।

शाकनाशी प्रतिरोध: उभरती हुई वैश्विक चुनौती

यदि जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में किसी एक समस्या को सबसे गंभीर माना जाए, तो वह है शाकनाशी प्रतिरोध। पिछले कई दशकों से एक ही प्रकार के खरपतवारनाशकों के बार-बार उपयोग के कारण खरपतवारों ने उनके प्रति प्रतिरोध विकसित कर लिया है।

भारत में गेहूँ की फसल में गेहूँ का मामा (*फैलेरिस माइनर*) इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है। इसी प्रकार धान में भी कुछ खरपतवार प्रजातियों में प्रतिरोध की घटनाएं सामने आई हैं।

जलवायु परिवर्तन इस समस्या को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है:

- खरपतवारों की वृद्धि अवधि बढ़ सकती है।
- अधिक पीढ़ियाँ विकसित हो सकती हैं।
- प्रतिरोधी पौधों के चयन की गति बढ़ सकती है।
- शाकनाशी की प्रभावशीलता प्रभावित हो सकती है।

यदि समय रहते समुचित रणनीति नहीं अपनाई गई, तो भविष्य में अनेक खरपतवारों का नियंत्रण अत्यंत कठिन हो सकता है।

संरक्षण कृषि को जलवायु-स्मार्ट कृषि का महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। इसमें न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष संरक्षण तथा फसल चक्र अपनाने पर बल दिया जाता है। यद्यपि संरक्षण कृषि मिट्टी के स्वास्थ्य और जल संरक्षण के लिए लाभकारी है परंतु इसके साथ खरपतवार प्रबंधन की नई चुनौतियां भी सामने आती हैं। कम जुताई की स्थिति में कुछ खरपतवारों के बीज मिट्टी की ऊपरी सतह पर बने रहते हैं, जिससे उनके अंकुरण की संभावना बढ़ सकती है।

हालांकि दूसरी ओर फसल अवशेषों की मल्व परत कई खरपतवारों के अंकुरण को भी दबा सकती है। इसलिए संरक्षण कृषि में खरपतवार प्रबंधन के लिए क्षेत्र विशिष्ट रणनीतियां विकसित करना आवश्यक है।

समेकित खरपतवार प्रबंधन: भविष्य का रास्ता

विशेषज्ञों का मानना है कि समेकित खरपतवार प्रबंधन भविष्य की आवश्यकता है। यह विभिन्न नियंत्रण विधियों के संतुलित उपयोग पर आधारित है।

इसमें शामिल हैं:

- फसल चक्र
- प्रतिस्पर्धी किस्मों का चयन
- समय पर बुवाई
- यांत्रिक नियंत्रण
- जैविक उपाय
- विवेकपूर्ण शाकनाशियों का उपयोग

यह प्रणाली किसी एक उपाय के साथ निर्भरता कम करती है और दीर्घकालिक टिकाऊ समाधान प्रदान करती है।

डिजिटल कृषि के विकास के साथ खरपतवार प्रबंधन में भी तकनीकी क्रांति आ रही है। आधुनिक कैमरे, ड्रोन, सेंसर और कृत्रिम

बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियां, खेतों में खरपतवारों की पहचान और निगरानी को अधिक सटीक बना रही हैं। आज कई देशों में ऐसे स्मार्ट स्प्रेयर विकसित किए जा रहे हैं जो केवल खरपतवार की पहचान होने पर ही रसायन का छिड़काव करते हैं। इससे रसायनों की खपत कम होती है और लागत घटती है। भारत में भी ड्रोन आधारित कृषि सेवाओं का विस्तार हो रहा है। भविष्य में ये तकनीकें विशेष रूप से बड़े खेतों और किसान उत्पादक संगठनों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

हाल के वर्षों में विश्व स्तर पर जलवायु परिवर्तन और खरपतवारों के संबंध पर शोध में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वैज्ञानिक यह समझने का प्रयास कर रहे हैं कि बदलते तापमान, CO₂ स्तर और वर्षा पैटर्न में विभिन्न खरपतवार प्रजातियों को किस प्रकार प्रभावित करेंगे। साथ ही, कई देशों में शाकनाशियों के प्रतिरोध की निगरानी, आक्रामक खरपतवारों की भविष्यवाणी तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निर्णय सहायता प्रणालियों पर कार्य किया जा रहा है। इन प्रयासों का उद्देश्य किसानों को समय रहते चेतावनी देना और वैज्ञानिक प्रबंधन रणनीतियां उपलब्ध कराना है।

जलवायु परिवर्तन ने खरपतवार नियंत्रण को कृषि विज्ञान की सबसे जटिल चुनौतियां में से एक बना दिया है। बदलता तापमान, बढ़ती CO₂ सांद्रता, अनियमित वर्षा, आक्रामक प्रजातियों का प्रसार और खरपतवारनाशक प्रतिरोध जैसी समस्याएं भविष्य की कृषि को प्रभावित करेंगी। ऐसे समय में पारंपरिक नियंत्रण उपायों के साथ आधुनिक तकनीकों और समेकित प्रबंधन रणनीतियों का समन्वय अत्यंत आवश्यक है। किसानों, वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और कृषि विस्तार तंत्र को मिलकर कार्य करना होगा ताकि जलवायु परिवर्तन के इस युग में खाद्य सुरक्षा और कृषि स्थिरता सुनिश्चित की जा सके। आने वाले वर्षों में वही कृषि प्रणाली सफल होगी जो, बदलती जलवायु के साथ स्वयं को अनुकूलित करते हुए खरपतवारों की चुनौती का वैज्ञानिक और टिकाऊ समाधान खोज सके।



लोकतंत्र हिन्दी के बिना चल नहीं सकता और यदि चलता है तो झूठ है।

- जैनेन्द्र कुमार

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

- बकिम चन्द्र चटोपाध्याय

दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन

मनोज कुमार तरवरिया¹, उमेश पटले¹, मुकेश कुमार मीणा², भारती परमार¹ एवं रोहिताश मीणा³

¹राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

³भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

अनाज के बाद दलहन एक मुख्य फसल है, जो हमारे देश में दलहनी फसलों की खेती लगभग 275 लाख हेक्टेयर में होती है, जिनमें लगभग 255 लाख टन वार्षिक उत्पादन होता है। यह आहार में प्रोटीन का सबसे सस्ता स्रोत है। हरित क्रांति के बाद, भारत में दलहन का उत्पादन कई वर्षों से विभिन्न जैविक और अजैविक कारकों के कारण स्थिर बना हुआ है। इन जैविक कारकों में खरपतवार प्रमुख हैं, जो दलहनी फसलों की उपज में भारी कमी का कारण बन रहा है। भारत में प्राचीन काल से ही दलहनी फसलों का विशेष महत्व है, क्योंकि ये न केवल प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती हैं। परंतु दलहनी फसलें प्रारंभिक अवस्था में धीमी वृद्धि करती हैं, जिससे वे खरपतवारों से अधिक प्रभावित होती हैं। दलहनी फसलों में अरहर, मूंग, उड़द मुख्यतः खरीफ मौसम में उगाई जाती हैं, जबकि चना, मसूर, राजमा और मटर रबी मौसम में उगाई जाती हैं। हमारे देश के कई क्षेत्रों में मूंग और उड़द की खेती जायद में की जाती है। खरपतवार फसल के साथ-साथ पानी, पोषक तत्व, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे कृषि उत्पादों की कुल वार्षिक हानि में खरपतवारों द्वारा लगभग 45 प्रतिशत, कीटों से 30 प्रतिशत, पादप रोगों से 20 प्रतिशत तथा अन्य कारकों द्वारा 5 प्रतिशत क्षति होती है। असिंचित क्षेत्रों में, खरपतवार दलहनी फसलों से तीव्र प्रतिस्पर्धा करके भूमि में निहित नमी एवं पोषक तत्वों के अधिकांश भागों को अवशोषित कर लेते हैं। फलस्वरूप फसल की विकास गति धीमी पड़ जाती है तथा पैदावार में कमी आ जाती है। खरीफ मौसम में अधिक तापमान एवं नमी के कारण रबी मौसम की

अपेक्षा अधिक खरपतवार उगते हैं। इनका समय पर नियंत्रण नहीं होने से दलहनी फसलों की बढ़वार में काफी धीमी हो जाती है। इससे उपज पर भी असर पड़ता है। हमारे संतुलित पोषण आहार में लगभग 60-80 ग्राम दाल प्रति व्यक्ति प्रतिदिन आवश्यक है, लेकिन वर्तमान में इसकी उपलब्धता केवल लगभग 45-55 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ही है, जिसका मुख्य कारण प्रति हेक्टेयर उपज में कमी आना।

खरीफ एवं रबी दलहनी फसलों के प्रमुख खरपतवार

खरीफ फसलों में उत्पादकता सीमित होने का एक प्रमुख जैविक कारण खरपतवारों की समस्या है। रबी फसलों की तुलना में खरपतवारों से खरीफ फसलों को अधिक हानि होती है। खरपतवारों द्वारा फसल में होने वाली कमी - जलवायु, मौसम, मिट्टी, सिंचाई, खरपतवारों के प्रकार और उनकी संख्या पर निर्भर करती है।

खरपतवारों की समस्या दलहनी फसलों में अधिक होती है, क्योंकि ये नमी, तापमान, हवा और पोषक तत्वों के लिए फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं। इस प्रतिस्पर्धा के कारण फसल की पैदावार में 15-50% तक कमी आ सकती है। इसलिए फसल के प्रारंभिक 15-45 दिनों में खरपतवार नियंत्रण बहुत ही आवश्यक है। दलहनी फसलों की खेती खरीफ एवं रबी दोनों मौसमों में की जाती है। इन फसलों में उगने वाले खरपतवारों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है जिनका वर्णन सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी 1 : विभिन्न दलहनी फसलों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

खरपतवारों की श्रेणी	खरीफ मौसम के खरपतवार	रबी मौसम के खरपतवार
सकरी पत्ती वाले खरपतवार	इकाइनोक्लोआ कोलोना (संवा), साइनोडॉन डेक्टीलोनो (दूब घास), इलुसिन इंडिका (इंडियन गूस ग्रास), डिजीटेरिया सैन्युनेलिस (क्रेब ग्रास), सितैरिया ग्लाऊका (बनरा)	फेलेरिस माइनर (गुल्ली डंडा / गेहूँ का मामा), अवेना फतुआ (जंगली जई), साइनोडॉन डेक्टीलोन (दूब घास)
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	युफोर्बिया जेनीकुलाटा (दूधी), फाईसेलिस मिनिमा (ग्राउंड चेरी), ट्रायन्थमा पोस्टलार्कस्ट्रम (पत्थरचटा), कामेलिना बेघालेनसिस (कनकवा/केना), एजीरेटम कोनीज्वाडिस (महकुआ), फाईसेलिस मिनिमा (वन मकोय), सिलोसिया अर्जेन्सिया (सफेद मुर्ग), फाइलेन्थस निलरी (हजारदाना)	कान्वोल्वुलस अवेंसिस (हिरनखुरी), चैनोपोडियम एल्बम (बधुआ), एस्कोडिलस टेन्यूफोलियस (प्याजी), एनागोलिस अरवेनसिस (कृष्णनील), कान्वोल्वुलस आरवेनसिस (हिरनखुरी), आर्जेमोन मैक्सीकानो (सत्यानाशी), लेथाइरस सेटाईवा (जंगली मटर), विसिया सटाइवा (अकरी)
मोथा कुल के खरपतवार	साइप्रस रोटंडस (मोथा)	साइप्रस रोटंडस (मोथा)

खरपतवारों से हानियाँ

खरपतवार फसल के साथ-साथ उगकर मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों और नमी को तेजी से ग्रहण कर लेते हैं। खरीफ मौसम में उच्च तापमान और अधिक नमी के कारण रबी मौसम की तुलना में अधिक खरपतवार उगते हैं, जिसके कारण फसलों को पर्याप्त पोषक तत्व और नमी नहीं मिल पाती। साथ ही ये खरपतवार फसल को आवश्यक प्रकाश और स्थान से भी वंचित रखते हैं। यदि समय पर इनकी रोकथाम न की जाए, तो उत्पादन में भारी कमी हो सकती है। इसके अतिरिक्त, खरपतवार फसलों में लगने वाले रोगजनक जीवाणु और कीटों को भी आश्रय देते हैं। कुछ खरपतवारों के बीज फसल के बीज में मिलकर उसकी गुणवत्ता और बाजार मूल्य को भी कम कर देते हैं।

खरपतवार प्रबंधन

मुख्य रूप से फसल की प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 15 से 45 दिनों के मध्य फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना जरूरी है। खेत में खरपतवारों के प्रभाव को कम करने के लिए एक से अधिक विधियों को अपनाना आवश्यक है। इनमें नियन्त्रणकारी क्रियाएं, कृषि क्रियाएं, यान्त्रिक क्रियाएं, जैविक क्रियाएं एवं रासायनिक क्रियाएं आदि का प्रयोग इस तरह करें कि भूमि की उत्पादकता एवं उर्वरता प्रभावित न हो तथा मानव सहित अन्य किसी भी जीव-जन्तुओं, पशु-पक्षियों एवं वांछित पेड़-पौधों को किसी भी प्रकार का नुकसान न हो और साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहे। जैविक खेती में उत्पादन हानि को कम करने एवं खरपतवारों द्वारा होने वाले अन्य दुष्प्रभावों को रोकने के लिए निम्न विधियाँ जो आई.डब्ल्यू.यू.एम. में समयानुसार एवं क्रमानुसार अपनाई जाती हैं:

बचावकारी उपाय

- बुआई के लिए खरपतवार बीज रहित साफ-सुथरे बीजों का उपयोग करें।
- कृषि कार्य में उपयोग होने वाले सभी उपकरण और मशीनों को उपयोग में लाने से पहले तथा उपयोग के बाद साफ कर लें।
- जिस खेत में खरपतवार का प्रकोप हो उसकी मृदा दूसरे खेत में न डालें।
- पशुओं को खरपतवार के बीजों से मुक्त चारा खिलाएं तथा पशुओं को खरपतवार वाले क्षेत्र से होकर बिना खरपतवार वाले क्षेत्र में जाने दें।
- खेत की मेड़ और सिंचाई नालियों को खरपतवार से मुक्त रखें।
- फसल कटाई के समय फसल के बीज के साथ खरपतवार के बीज को जाने से रोकें।
- खेत के चारों ओर ऐसी हेज कतारें लगायें जो हवा द्वारा वितरित होने वाले खरपतवार के बीजों को खेत में आने से रोक सकें।

कृषिगत या सस्य विधियाँ:- इसमें कम लागत एवं पर्यावरण अनुकूल तरीके जैसे फसल चक्र, उचित पौध आबादी, अन्तः फसल, संरक्षित जुताई इत्यादि तरीके अपनाए जा सकते हैं।

किस्म का चयन:- खरपतवार नियंत्रण हेतु ऐसी फसल किस्मों का चयन करना चाहिए, जो शीघ्र अंकुरण करने वाली तथा अधिक क्षेत्र घेरने वाली

हों। ऐसी फसल किस्में खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती हैं। शीघ्र एवं तीव्र वृद्धि करने वाली फसलों में खरपतवारों के साथ प्रभावी रूप से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता अधिक होती है, जिससे खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता है।

बुआई का समय:- बुआई के समय में परिवर्तन करके खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। किसी विशेष खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए फसल की बुआई से 10-15 दिन पूर्व पलेवा करने से खरपतवार उग आते हैं। इन उगे हुए खरपतवारों को जुताई अथवा हल्की खेती द्वारा नष्ट करने के पश्चात फसल की बुआई करना लाभकारी होता है। इस विधि से फसल में खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता है।

फसल चक्र:- फसल चक्र लम्बे समय के लिए खरपतवार नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण होता है। किसी खेत में लगातार एक ही प्रकार की फसल उगाने से उस फसल से संबंधित खरपतवारों का दबाव बढ़ जाता है, क्योंकि उनके अंकुरण एवं वृद्धि के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनी रहती हैं। फसल चक्र में परिवर्तन कर विभिन्न फसलों को उगाने से खरपतवारों की अंकुरण क्षमता एवं वृद्धि प्रभावित होती है। भिन्न-भिन्न फसलों के लिए अपनाई जाने वाली कर्षण क्रियाएँ, जैसे भूपरिष्करण, बुआई का समय तथा फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा, खरपतवारों के जीवन चक्र को बाधित कर देती हैं, जिससे उनका प्रभावी नियंत्रण हो जाता है।

यांत्रिक विधियाँ

खरपतवार नियंत्रण की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। इस विधि में खरपतवारों का नियंत्रण हाथ से, हस्तचालित यंत्रों व जल आदि द्वारा किया जाता है। यांत्रिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण हेतु नये विकसित किये गये उन्नत कृषि यंत्रों जैसे कोनोवीडर, व्हील-हो, मोटरचालित वीडर, आदि का उपयोग भी किया जा सकता है। यांत्रिक विधियाँ निम्न प्रकार से हैं:

- भूपरिष्करण
- खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना
- हस्तचालित यंत्रों से निराई-गुड़ाई

जैविक विधियाँ

पलवार या मल्लिचंग:- मल्लिचंग खरपतवार नियंत्रण की एक सरल और किफायती विधि है। इसके द्वारा वार्षिक और बारहमासी दोनों प्रकार के खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जाता है। मल्लिचंग, खरपतवारों के बीजों के अंकुरण को रोककर, खरपतवारों को दबाकर, मिट्टी की नमी के वाष्पीकरण को कम करके तथा मिट्टी के तापमान को बनाए रखकर फसल की वृद्धि में सहायक होती है। यह प्रकाश संचार एवं वायु संचार को रोक देता है प्राकृतिक जैविक सामग्री के साथ-साथ प्लास्टिक शीट का भी उपयोग मल्लिचंग के रूप में किया जा सकता है। जैविक आच्छादन के रूप में भूसा, पुआल, सुखी घास, सूखी पत्तियाँ, फसल अवशेष आदि का उपयोग किया जा सकता है। इस विधि से प्रभावी खरपतवार नियंत्रण होता है। इस पद्धति से खरपतवार नियंत्रण के अतिरिक्त मृदा की उर्वराशक्ति में भी वृद्धि होती है।

रासायनिक विधियाँ:-

दलहनी फसलों में खरपतवार नियंत्रण के लिए रासायनिक खरपतवार नियंत्रण सबसे सस्ता एवं किफायती विकल्प है, क्योंकि यह अत्यधिक प्रभावी होता है, व्यापक क्षेत्र में कार्य करता है, प्रयोग में सरल है तथा उन क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी होता है जहाँ श्रम की कमी हो या श्रम महंगा हो और अंतर-फसल संचालन संभव न हो। इस विधि को

अपनाने से प्रति हेक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की बचत होती है। यह बुवाई से पूर्व की जुताई की लागत को कम करता है, खरपतवारों को उनके मूल स्थान पर ही नष्ट कर देता है तथा झाड़ीदार एवं बारहमासी खरपतवारों को प्रभावी रूप से नियंत्रित करता है। आशिक और असलम (2014) के अनुसार, रासायनिक खरपतवार नियंत्रण विधि से दलहन फसलों की उपज में 10 से 50 प्रतिशत तक वृद्धि हुई। (सारणी 2)

सारणी 2. दलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी रसायन

दलहनी फसलें	खरपतवारनाशी	रसायन मात्रा (ग्राम सक्रिय तत्व है.)	प्रयोग का समय
अरहर, मूंग, उर्द, लोबिया	पेण्डीमेथिलीन	750-1000	बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व
मूंग	सोडियम एसी फ्लूरोफेन 24 एस.सी.	1250	बुआई के 25-30 दिन बाद
मसूर	पेण्डीमेथिलीन	1000	उगने से पहले या बुवाई के बाद
चना	पेण्डीमेथिलीन	1000	उगने से पहले या बुवाई के बाद
अरहर, मूंग, उर्द, लोबिया	इमेजाथाइपर	50-100	बुआई के 18-20 दिन बाद
मूंग, उर्द, लोबिया	इमेजाथाइपर इमेजामॉक्स	60	बुआई के 18-20 दिन बाद
मूंग	पेण्डीमेथिलीन+इमेजाथाइपर	750	बुआई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व



**भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार के द्वारा एकता
स्थापित करने वाले सच्चे भारतबंधु हैं।**

- महर्षि अरविन्द घोष

**सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और
लिपि का प्रयोग किया जाता है।**

- भारतेंदु हरिश्चन्द्र

हिन्दी अपने गुणों से राष्ट्रभाषा है। हिन्दी पढ़ना हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य है।

- लाल बहादुर शास्त्री

उड़द की फसल में समन्वित खरपतवार प्रबंधन

निशा महान, लोकनाथ सिंह एवं विनोद कुमार पांडेय
बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी

उड़द खरीफ ऋतु की एक मुख्य दलहनी फसल है, जिसकी खेती संपूर्ण भारत में बड़े पैमाने पर की जाती है। खरीफ ऋतु की फसलों में खरपतवारों का अधिक प्रकोप होता है, जिससे फसलों के उत्पादन में आर्थिक क्षति होती है। खरपतवार फसलों में उगने वाले अवांछनीय पौधे होते हैं, जो फसल उत्पादन में 35 से 50% नुकसान पहुंचाते हैं। उड़द की फसल को बुवाई के 30 से 50 दिन बाद तक खरपतवार मुक्त रखना चाहिए क्योंकि इन दिनों खरपतवारों की अधिक मात्रा होने से उड़द की उपज में 15 से 35% तक की कमी आ जाती है। फसल उत्पादन में सबसे ज्यादा हानि खरपतवारों के कारण ही होती है, क्योंकि खरपतवार फसलों के साथ मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व, नमी और प्रकाश इत्यादि के लिए प्रतिस्पर्धा करके फसलों की वृद्धि व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। जिससे फसल की उत्पादकता का गुणवत्ता दोनों की हानि होती है।

परिचय

उड़द खरीफ ऋतु की दलहनी फसल है, जो कम समय में पककर तैयार हो जाती है। उड़द को काला चना (विग्ना मुंगो एल.) के रूप में भी जाना जाता है। उड़द देश भर में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण दलहनी फसलों में से एक है। यह फसल प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के लिए प्रतिरोधी है। काला चना भारतीय आहार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसमें भरपूर मात्रा में प्रोटीन (25%), फाइबर, विटामिन (विशेषकर बी-कॉम्प्लेक्स) तथा कैल्शियम, आयरन जैसे खनिज पाए जाते हैं, जो पाचन सुधारने और स्वास्थ्य के लिए अच्छे होते हैं। दाल के अलावा, इससे कचौरी, पापड़, इडली, डोसा बनाने के साथ-साथ इसका उपयोग पौष्टिक चारे के रूप में विशेषकर दुधारू पशुओं के लिए किया जाता है। उड़द को ज्वार, बाजरा, अरहर और गन्ना इत्यादि फसलों के साथ सह फसल तथा मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है। कम अवधि की फसल होने के कारण इसे कैच फसल के रूप में भी उगाया जाता है, जिससे किसानों को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होता है। उड़द की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु पाए जाते हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में स्थिर करके मृदा की उर्वरता में सुधार करते हैं।

फसलों में खरपतवारों का उचित प्रबंध उन्नत फसल तकनीकी का महत्वपूर्ण घटक है। समन्वित खरपतवार प्रबंधन का उद्देश्य खरपतवारों की संख्या में कमी लाकर इसके दुष्प्रभाव से मुख्य फसल की पैदावार पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभाव को कम करना है। दलहनी फसलों की धीमी बढ़वार के कारण इनमें खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है। भारत में निराई-गुड़ाई करके खरपतवारों का उन्मूलन किया जाता रहा है जो

खरपतवार नियंत्रण की पुरानी व कारगर तकनीकी है, परंतु पिछले दशक से कृषि कार्यों के लिए मजदूरों की कमी के कारण खरपतवारों का प्रकोप अधिक बढ़ गया है। जिसको समन्वित खरपतवार प्रबंधन से कम किया जा सकता है। समन्वित खरपतवार प्रबंधन में खरपतवारों की संख्या को सीमित करने के लिए यांत्रिक, भौतिक, जैविक और रासायनिक विधियों की संस्तुति एक साथ की जाती है।



उड़द की फसल में उगने वाले खरपतवार

उड़द की खेती वर्षा व ग्रीष्म दोनों ऋतुओं में की जाती है, परंतु उड़द खरीफ की दलहनी फसल है। जिस कारण इसमें खरपतवारों का प्रकोप भी अधिक होता है, क्योंकि वर्षा, अधिक आर्द्रता, उच्च तापमान जैसे कारक खरपतवारों की वृद्धि व विकास के लिए अनुकूल होते हैं। खरपतवारों की संख्या अधिक होने के कारण यह पोषक तत्वों, नमी व प्रकाश के लिए फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा विभिन्न हानिकारक कीट पतंगों को आश्रय प्रदान करते हैं। उड़द की फसल में निम्न प्रकार के खरपतवार उगते हैं :-

- **सकरी पत्ती वाले खरपतवार-** कोदो (एलेयूसिन इंडिका), सावां (इचिनोक्लोआ कोलोना), दूब घास (साइनोडोन डैक्टीलोन), क्रैब घास (डिजिटेरिया सैगुइनेलिस), मार्वेल घास (डाइकैथियम एनुलैटम), जॉहनसन घास (सोरघम होलेपेंस), कुश घास (एराग्रोस्टिस टेनेला), बनरा (सेटारिया ग्लोका) और मौंथा (साइप्रस रोटेंडस) इत्यादि।



दूबघास



मोंथा

- **चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार** - पत्थरचटा (ट्राइन्थिमा मोनोगाइना), लहसुआ (डिगेरा आवेंसिस), महकुआ (एगोराटम कोनिजाइट्स), कनकवा (कोमेलिना बैंगालेंसिस), रसभरी (फिसालिस मिनिया), हजारदाना (फाइलेंथस निरूरी), जंगली चौलाई (एमरेंथस विरिडिस), तिपतिया (ऑक्सैलिस लैटिफोलिया), बड़ी दुधी

(यूफोर्बिया हिरिटा), सफेद मुर्ग (सेलोसिया अर्जेंटिया), कुल्फा (पोर्टुलाका ओलेरासिया), भांगड़ा (एक्लिप्टा अल्बा), दूधिया (यूफोर्बिया हेलियोस्कोपिया), जंगली ककरी (कुकमिस ट्राइगोनस) इत्यादि।



तिपतिया



जंगली चौलाई



हजारदाना



भांगड़ा



रसभरी

समन्वित खरपतवार प्रबंधन

- **गर्मियों की गहरी जुताई** - खेतों की जुताई करना पारंपरिक खेती का अभिन्न अंग है। रबी ऋतु की फसलों की कटाई के बाद ग्रीष्म ऋतु में खेतों की गहरी जुताई करने से उपस्थित खरपतवारों के बीज ऊपरी

सतह पर आ जाते हैं तथा अधिक तापमान के कारण निष्क्रिय हो जाते हैं। बेहतर परिणाम के लिए यह क्रिया 20 से 25 दिन बाद दोहराना चाहिए। 5 से 7 वर्षों तक लगातार यह प्रक्रिया करने से खरपतवारों के प्रकोप को काफी हद तक सीमित किया जा सकता है।

- **मृदा सूर्यीकरण** - यह खरपतवार नियंत्रण की नवीनतम प्रणाली है, जो खरपतवारों और कीटों के नियंत्रण के लिए उपयोग की जाती है। यह विधि उन क्षेत्रों के लिए अधिक लाभप्रद है, जहां ग्रीष्म ऋतु में तापमान 40 से 45 डिग्री सेल्सियस होता है। इन क्षेत्रों में मृदा में उचित नमी होने पर पारदर्शी पॉलिथीन की चादर से मृदा को ढक दिया जाता है परिणाम स्वरूप मृदा का तापमान सामान्य तापमान से 8 से 10 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है। जिससे खरपतवारों के बीज व कंद नष्ट हो जाते हैं। यह प्रक्रिया 25 से 30 दिनों तक करने से प्रभावी परिणाम मिलते हैं।
- **शुद्ध बीज व पौधों की उचित संख्या** - आधारीय या प्रमाणित बीज की बुवाई करनी चाहिए तथा बीज हमेशा विश्वसनीय स्रोतों से खरीदना चाहिए, जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धि न हो। इसके साथ ही बीज की सही मात्रा का प्रयोग करना भी अत्यंत आवश्यक है अतः संस्तुति के अनुसार प्रति वर्ग मीटर में न्यूनतम पौधों की संख्या व ज्यामिति दोनों खरपतवार के साथ फसल की अच्छी प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक हैं।
- **फसल चक्र** - यह खरपतवारों को नियंत्रित करने का प्राकृतिक तरीका है। फसल चक्र में विभिन्न जीवन चक्र व जड़ तंत्र प्रणाली वाली फसलों को उगाया जाता है, जिससे खरपतवारों के दुष्परिणाम को कम किया जा सकता है। दलहनी फसलों के बाद तिलहनी व अनाज वाली फसलों को उगाने से खरपतवारों की संख्या को कम किया जा सकता है।
- **अतः फसल प्रणाली** - ज्वार-उड़द, अरहर-उड़द, बाजरा-उड़द इन फसलों को अंतर फसल के रूप में उगाने से खरपतवारों की संख्या में कमी आ जाती है। जिसके अंतर्गत पौधों की बुवाई न केवल मुख्य फसल के लिए लाभदायक होती है अपितु खरपतवार नियंत्रण

में भी महत्वपूर्ण है। इस प्रणाली से खरपतवारों का प्रकोप 50% तक कम किया जा सकता है।

- **संरक्षित खेती** - इस विधि में पूर्व में उगाई गई फसल के अवशेष एक तिहाई हिस्सा खेत में ही छोड़ दिया जाता है जिससे खरपतवारों की संख्या में कमी आ जाती है।

वार्षिक घास व चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए-

- फ्लूक्लोरलीन नामक दवा की 0.75 से 1.0 किग्रा मात्रा को 1500 से 2000 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के पूर्व प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- एलाक्लोर नामक दवा की 2 से 2.5 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 1 से 3 दिन बाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- इमाजेथापर नामक दवा की 0.05 से 0.10 किलोग्राम मात्रा को 500 से 1000 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 20 से 25 दिन बाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से सभी प्रकार के खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है।
- क्यूजालोफोप इथाईल नामक दवा की 0.1 किलोग्राम मात्रा को 2000 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के 15 से 20 दिन बाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से वार्षिक घासों का नियंत्रण किया जा सकता है।
- ऑक्साडाइजोन नामक दवा की 0.25 किलोग्राम मात्रा को 1000 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई करने के 0 से 3 दिन बाद प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से सभी प्रकार के खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।



**हिन्दी वह धागा है जो विभिन्न मातृभाषा रूपी फूलों को पिरोकर
भारतमाता के लिए सुंदर हार का सृजन करेगा।**

- डॉ. जाकिर हुसैन

**मेरी आंखें वह दिन देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से
कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा समझने और बोलने लगेंगे।**

- महर्षि दयानंद

खरपतवार : पशुपालन में कम लागत, अधिक पोषण का स्रोत व प्राकृतिक चारा प्रणाली में भूमिका

लालचन्द कुमावत¹, सी.एम. यादव¹, अशोक कुमार सामोता², पूजा कुमारी मीना²,
अनिता कुमारी मीणा² एवं आंचल करोल²

¹कृषि विज्ञान केन्द्र, भीलवाड़ा-।

²राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रस्तावना

खरपतवार सामान्यतः कृषि उत्पादन को हानि पहुँचाने वाले अवांछित पौधे माने जाते हैं, परन्तु पारंपरिक खेती और पशुपालन प्रणाली में इनकी उपयोगिता अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। विशेषकर भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। दुधारू पशुओं, छोटे जंतुओं तथा कार्यशील बैलों की उत्पादकता मुख्यतः उनके पोषण पर निर्भर करती है। सामान्यतः पशुओं को हरा चारा, सूखा चारा, भूसा, दाना, खल, आदि दिए जाते हैं खरपतवार पशुओं के लिए एक सस्ती, आसानी से उपलब्ध और पोषक चारे का स्रोत हैं। आधुनिक समय में जब गुणवत्तापूर्ण चारे की कमी, सूखे का बढ़ता प्रभाव, मृदा क्षरण, तथा चारे की बढ़ती लागत जैसे मुद्दे सामने आते हैं, तब खरपतवारों का उपयोग पशु पोषण में एक व्यावहारिक समाधान व पशुओं के लिए एक महत्वपूर्ण वैकल्पिक चारा स्रोत के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

अनेक वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि पशुपालन के दृष्टिकोण से इनमें से कई खरपतवार जैसे चिनोपोडियम, अमरेन्थस, साइनोडॉन, पर्सलेन, पोआ, इचिनोक्लोवा, कैक्टस, पैराघास आदि में प्रोटीन, कच्चा रेशा, खनिज (मिनरल्स), विटामिन तथा ऊर्जा की मात्रा पर्याप्त स्तर पर पाई जाती है तथा इनमें से कई खरपतवार स्वादिष्ट, उच्च पोषण-समृद्ध, पाचक तथा आसानी से उपलब्ध होते हैं। विशेष रूप से अमरबेल, दूब, बथुआ, नेपियर घास, करधनिया, भटकटैया, सेंघटी, नागफनी के मुलायम भाग आदि पशुओं के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इस प्रकार ये खरपतवार न केवल पशु दूध उत्पादन, वजन वृद्धि और स्वास्थ्य सुधार में सहायक हैं बल्कि चारे की कमी के समय अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

इस लेख में खरपतवारों के पोषण मूल्य, उनके वर्गीकरण, पशुपालन में उपयोग, पोषण-विश्लेषण, लाभ हानि, सावधानियाँ, और भविष्य की उपयोगिता पर विस्तृत चर्चा की गई है।

खरपतवार क्या हैं ?

खरपतवार वे पौधे हैं जो मुख्य फसल के साथ उगते हैं और

अवांछित माने जाते हैं। परंतु कई खरपतवार तेजी से बढ़ने वाले, पोषक तत्वों से भरपूर और पर्यावरणीय परिस्थितियों में अनुकूलनशील होते हैं।

प्रमुख विशेषताएँ -

- तेज वृद्धि
- कम देखरेख में भी हरियाली
- सूखे में भी उत्पादन
- पोषण तत्वों का उच्च संचय
- सर्वाहारी पशुओं द्वारा पसंद किए जाना
- बीज, जड़, तना द्वारा पुनर्जनन

पशुपोषण में खरपतवार की भूमिका -

1. हरित चारे का प्राकृतिक स्रोत: वर्षा के दौरान खेतों के किनारों, खाली भूमि, बांधों, नहर किनारों पर उपलब्ध।
2. मिनरल (खनिज) व विटामिन का अच्छा स्रोत: कई खरपतवार जैसे बथुआ आदि में कैल्शियम, आयरन व विटामिन ए और सी अधिक होते हैं।
3. चारे की कमी की समस्या दूर करने में सहायक: कई राज्यों में खरीफ-रबी के बीच चारे की भारी कमी पड़ती है। इस समय खरपतवार सस्ता विकल्प देते हैं।
4. फाइबर की पर्याप्त मात्रा पाचन को बेहतर बनाता है।
5. प्रोटीन की महत्वपूर्ण मात्रा उदाहरण- बथुआ में क्रूड प्रोटीन 12-18% तक।
6. कम लागत → अधिक लाभ: लागत लगभग शून्य जबकि पोषण स्तर उच्च।

महत्वपूर्ण खरपतवारों का पोषण विश्लेषण

खरपतवारों के उपयोग की सावधानियाँ

- सही मात्रा: यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि जानवरों को

खरपतवारों की सही मात्रा में ही खिलाया जाए, क्योंकि अधिक मात्रा में सेवन करने से पाचन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं।

- **विशेषज्ञ की सलाह:** यदि आप अपने जानवरों को खरपतवारों के पौधे खिलाने पर विचार कर रहे हैं, तो पशु चिकित्सक से सलाह लेना सबसे अच्छा है। वह आपको सही मात्रा और उपयोग के तरीके के बारे में बता सकते हैं।
- **विशेष परिस्थितियाँ:** कुछ मामलों में, खरपतवारों का उपयोग करने से पहले सावधानी बरतनी चाहिए, जैसे कि यदि जानवर बीमार हो या कोई अन्य स्वास्थ्य समस्या हो।
- **जहरीले और नुकसानदायक खरपतवारों को पहचानें:** उन खरपतवारों की पहचान करें जो पशुओं के लिए विषैले होते हैं, जैसे कि रैगवर्ट या लैम्ब्सक्वार्टर, और उन्हें कभी न खिलाएं।
- 20-30% मिश्रित चारा बनाएं।
- फफूंदी लगे खरपतवार कदापि न खिलाएं।
- दुग्ध पशुओं में धीरे-धीरे सेवन बढ़ाएं।
- **बीजों को नष्ट करें:** चारा पीसने से बड़े बीजों की जीवन क्षमता कम हो जाएगी, लेकिन छोटे, सख्त बीज बचे रहेंगे। इन बीजों को निष्क्रिय करने के लिए, पशुओं के गोबर को खाद में बदलें या चारे को उबालें।
- सावधानी से मिश्रण तैयार करें अगर आप चारा मिला रहे हैं, तो सुनिश्चित करें कि खरपतवार के बीजों से कोई संदूषण न हो।

- ताजा और स्वस्थ चारा चुनें पशुओं को खिलाने से पहले सुनिश्चित करें कि चारा खरपतवारों से मुक्त हो और उसमें जहरीले खरपतवार न हों।
- बीज-प्रदूषित भूसे से बचें अगर भूसे में खरपतवार के बीज हैं, तो इसे खिलाने से पहले उबालें ताकि बीजों की जीवन क्षमता नष्ट हो सके।
- **खरपतवार की फूल आने से ठीक पहले चराई करें:** लक्षित खरपतवार को फूल आने से ठीक पहले चराएं ताकि बीज उत्पादन कम हो सके। यह खरपतवारों की आबादी को नियंत्रित करने का एक प्रभावी तरीका है।

खरपतवार संग्रह तकनीक व ध्यान रखने योग्य बातें

- खेत और नहर किनारों से ताजा हरा खरपतवार चुनना
- सुबह-शाम कटाई
- धूप में 1-2 घंटे मुरझाकर खिलाना
- सूखे मौसम में चारा-संग्रह व भंडारण
- साइलेज व हे में खरपतवारों का मिश्रण

निष्कर्ष

खरपतवार जिन्हें किसान अक्सर बेकार समझकर नष्ट कर देते हैं, वास्तव में उच्च गुणवत्ता वाला, कम लागत वाला, पोषक तत्वों से भरपूर चारा होते हैं। यदि सही प्रजातियों की पहचान कर उनका वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया जाए, तो ये पशुओं की उत्पादकता, स्वास्थ्य और किसानों की आर्थिक स्थिति को अत्यंत लाभ पहुंचा सकते हैं।



भारतीय भाषाएं नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी। हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है। हमें राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी बिना हमारा काम चल नहीं सकता।

- रवीन्द्र नाथ ठाकुर

इतने बड़े देश में जहाँ इतनी भाषाएं हैं वहाँ देश की एकता के लिए एक कड़ी की आवश्यकता है। कोई भाषा ऐसी हो, जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिलाजुला कर रख सकें। इसलिए हिन्दी को बढ़ावा देना सबका काम है।

- श्रीमती इंदिरा गांधी

सतत कृषि हेतु औषधीय एवं सुगंधित पौधों से प्राप्त शाकनाशियों के उपयोग की संभावनाएं एवं चुनौतियां

सीमा शर्मा¹, मोहिंदर कुमार ब्रह्मी², यूर्मिला कुमारी² और विवेक शर्मा¹

¹उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर,

²उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, थुनाग, मंडी, डॉ. वाई.एस. परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हि.प्र.)

खरपतवार विश्वस्तर पर फसल उत्पादन के लिए सबसे गंभीर समस्याओं में से एक है, जो कि पोषक तत्वों, पानी, प्रकाश और जगह के लिए मुख्य फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं और काफी हद तक प्रभावित भी करते हैं। हमारे किसान पारंपरिक खरपतवारनाशकों में मुख्य रूप से कृत्रिम खरपतवारनाशक प्रयोग करते हैं, जो प्रभावी तो हैं, लेकिन उनसे बहुत सी गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। लम्बे समय तक इनके उपयोग से मिट्टी, पानी तथा खाद्य पदार्थों में इनके अवशेषों का रह जाना, मनुष्यों और पशुओं के लिए विषाक्तता का डर, खरपतवार कुल में बदलाव तथा खरपतवार-प्रतिरोधी प्रकारों का पैदा होना आदि समस्याएँ तेजी से बढ़ रही हैं। इसलिए आज के समय में हमें ऐसे टिकाऊ विकल्पों की आवश्यकता है जो खाद्य पदार्थों और मिट्टी में रासायनिक भार को कम करने के साथ साथ किसानों की उत्पादकता भी बनाए रखे। वैज्ञानिक अब प्राकृतिक या पौध-आधारित खरपतवारनाशकों (फाइटो-हर्बिसाइड) के प्रयोग को अधिक महत्व दे रहे हैं क्योंकि ये हमारे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य के अनुकूल हैं। प्रकृति में जितने भी पौधे हैं उनमें कुछ न कुछ औषधीय गुण होते हैं लेकिन सभी पौधे सुगन्धित नहीं हैं इसलिए सुगन्धित पौधों को भी यहाँ शामिल किया गया है। औषधीय एवं सुगन्धित पौधों पर आधारित शाकनाशी एक अहम भूमिका निभाते हैं। ये पौधे जैव-सक्रिय यौगिक या एलीलोकैमिकल्स उत्पन्न करते हैं जो खरपतवार बीजों के अंकुरण व वृद्धि को रोक सकते हैं। ये यौगिक जड़ों के विसर्जन, अवक्षालन, वाष्पीकरण या अपघटन के माध्यम से निकलते हैं। इनमें एल्केलॉइड, फिनाॅल्स, टरपेनॉयड्स, ग्लूकोसिनोलेट्स, आइसोथायोसाइनेट्स, क्विनोन्स आदि फाइटोटॉक्सिन शामिल हैं, जिनमें प्रबल शाकनाशी क्षमता होती है। कुछ

औषधीय पौधों के अर्क जैसे कैलोट्रोपिस, वाइटेक्स, होलर्रहना, सिम्बोपोगॉन इत्यादि खरपतवारों में भारी कमी लाते हैं और कई शोध कार्यों में इनका प्रभाव कृत्रिम खरपतवारनाशकों के बराबर पाया गया है। रासायनिक खरपतवारों के प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती चिंता भी प्राकृतिक खरपतवारनाशकों के प्रति शोध बढ़ने का एक प्रमुख कारण है। पौधों पर आधारित ये उत्पाद बायोडिग्रेडेबल होने के साथ पर्यावरण के लिए सुरक्षित और जैविक खेती व छोटे किसानों के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। टिकाऊ कृषि, पर्यावरण संरक्षण व मनुष्य के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए भी रासायनिक निर्भरता को कम करने और पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता है। अतः प्राकृतिक खरपतवारनाशक कृषि के लिए बदलते पर्यावरण परिवेश में सतत कृषि के लिए सुरक्षित, कम लागत और स्थायी समाधान के रूप में विकल्प रखते हैं।

पौध-आधारित शाकनाशी:

पौध-आधारित शाकनाशी पौधों से प्राप्त पदार्थ, रस या अर्क होते हैं जिनमें प्राकृतिक फाइटोटॉक्सिक गुण होते हैं, जो खरपतवार के बीज अंकुरण, वृद्धि तथा विकास को रोकने और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को कम करना में सक्षम होते हैं। इन्हें फाइटो-हर्बिसाइड भी कहा जाता है। ये वार्षिक तथा बहुवर्षीय दोनों प्रकार के खरपतवारों पर अवरोधक प्रभाव रखते हैं। इनका प्राकृतिक स्रोत इन्हें बायोडिग्रेडेबल, कम विषाक्त और पर्यावरण-अनुकूल बनाता है, जिससे ये जैविक खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। ये जैव-अवक्रमणीय होते हैं, पर्यावरण में कम समय टिकते हैं और कम लागत या जैविक खेती आदि प्रणालियों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं।

सारणी 1: औषधीय एवं सुगन्धित पौधों पर आधारित शाकनाशी

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	सामान्य नाम	कुल (परिवार) का नाम	प्रमुख वनस्पतिक यौगिक
1	सिम्बोपोगोन सिट्रेटस	नींबू घास	घास कुल (पोएसी)	सिट्रल, जेरानियल
2	सिम्बोपोगोन विंटरियनस	सिट्रोनेला	घास कुल (पोएसी)	सिट्रोनेलाल, जेरानियल
3	मेंथा पाइपरिता	पिपरमिंट	सेज कुल (लैमिएसी)	मेंथॉल, मेंथोन
4	सिन्नामोमम कैम्फोरा	कपूर	लॉरिल कुल (लॉरसी)	कैम्फर, लिनालूल
5	सिन्नामोमम वेरम	दालचीनी	लॉरिल कुल (लॉरसी)	सिनामाल्डिहाइड, यूजेनॉल
6	एलो वेरा	घृतकुमारी	एलो कुल (एस्फोडेलेसी)	एलोइन, फ्लवोनोइड्स
7	स्वीटेनिया महागोनी	महोगनी	महोगनी कुल (मीलिएसी)	स्वेटीनिन, फ्लेवोनोइड्स
8	युक्लिप्टस ग्लोब्युलस	सफेदा	मिर्तल कुल (मर्टेसी)	यूकेलिप्टोल, अल्फा-पाइनीन

9	हाइपरिकम पेरफोरेटम	बसंत	सेंट जॉन्स वॉर्ट कुल (हाइपरिसेसी)	हाइपरिफोरिन, हाइपरिसिन
10	मेंथा आर्वेसिस	जापानी पुदीना	सेज कुल (लैमिसेसी)	मेन्थॉल, मेंथोन
11	मेंथा स्पाइकाटा	स्पीयर मिंट	सेज कुल (लैमिसेसी)	कार्वोन, लिमोनीन
12	थाइमस वल्गारिस	बनजवाइन	सेज कुल (लैमिसेसी)	थायमोल, कार्बाक्रोल
13	क्रोकस सैटिवस	केसर	आइरिस कुल (इरिडेसी)	क्रोसीन, सैफ्रानाल
14	रुटा ग्रेवोलेंस	सद्ब	नींबू कुल (रूटेसी)	ग्रावेलिन, फूरानोकौमारिस
15	कैनाबिस सैटिवा	भांग	भांग कुल (कैनेबेसी)	फाइटोकैनाबिनोइड्स, टरपीन्स
16	लैवेन्डुला अंगुस्टिफोलिया	लैवेंडर	सेज कुल (लैमिसेसी)	लिनालूल, लिनालिल एसिटेट
17	क्राइसोपोगोन जिजानियोइड्स	खसखस	घास कुल (पोएसी)	खुसिमोल, वेटिवोन
18	एंड्रोग्राफिस पैनीकुलेटा	कालमेघ	अडूसा कुल (एकेंथेसी)	एंड्रोग्राफोलाइड
19	टैजेटिस एरेक्टा	गेंदा	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	थायोफीन
20	साल्विया रोजमैरिनस	रोजमेरी	सेज कुल (लैमिसेसी)	कानॉसिक एसिड, कैम्फर
21	आर्टेमिसिया एनुआ	नागदौना	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	आर्टेमिसिन
22	आर्टेमिसिया स्कोपेरिया	झाऊ	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	यूकेलिप्टोल, अल्फा-पाइनीन
23	मैट्रिकैरिया कमोमिला	बाबुना	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	बिसाबोलॉल, कैमजुलीन
24	अथातोदा वासिका	वसाका अडूलसा	अडूसा कुल (एकेंथेसी)	वैसीसिन, वैसीसिनोन
25	आजादिराक्टा इंडिका	नीम	महोगनी कुल (मीलिएसी)	निम्बिन, एजाडिराक्टिन
26	सेन्टरिया डिफ्यूजा	डिफ्यूज नैपवीड	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	फ्लावोनोइड्स, नाइसिन
27	कैलोट्रोपिस जाइगेंटिया	अक/मदार	मदार कुल (एपोसाइनेसी)	कार्डेनोलाइड, टेरपेनॉइड्स
28	होलर्रिहना एंटीडिसेंटेरिका	कुर्ची	मदार कुल (एपोसाइनेसी)	कोनेसिन, होलारेनिन
29	आइपोमिया कार्निया	बुश मॉर्निंग ग्लोरी	शकरकंद कुल (कन्वॉल्युलेसी)	अल्कलॉइड्स, फ्लेवोनोइड्स
30	लैंटाना कैमारा	पंचफूली	सगवान कुल (वर्बिनेसी)	फ्लावोनोइड्स, ट्राइटरपेनॉयड्स
31	ल्युकास एस्पेरा	द्रोणपुष्पी	सेज कुल (लैमिसेसी)	टरपेनॉयड्स, फ्लावोनोइड्स
32	कैसिया तोरा	चक्रमर्द	दलहन कुल (फैबेसी)	एंथ्राक्विनोन्स
33	टैबर्नैमोन्टाना कोरोनरिया	चांदनी	मदार कुल (एपोसाइनेसी)	अल्कलॉइड्स, फ्लेवोनोइड्स
34	टैजेटिस माइन्टूटा	जंगली गेंदा	गेंदा कुल (एस्टेरेसी)	ओसिमेनॉन्स, टैजेटोन, थायोफीन्स
35	वाइटेक्स नेगुंडो	निर्गुन्डी	सेज कुल (लैमिसेसी)	सेस्क्वटैरपीन्स, फिनोलिक एसिड्स

पौध-आधारित शाकनाशियों के प्रकार:

1. **अर्क आधारित शाकनाशी:** ये पौधों के विभिन्न भाग जैसे पत्तियों, तनों, छाल, जड़ों, बीजों या संपूर्ण पौध से तैयार किए जाने वाले अर्क हैं। इनमें फिनोलिक, एल्कलॉइड, फ्लेवोनॉइड, सैपोनिन, टरपेनोइड और ग्लाइकोसाइड जैसे अनेक जैव सक्रिय तत्व होते हैं, जो खरपतवार के बीज अंकुरण को कम करते हैं, जड़-तना की वृद्धि को रोकते हैं तथा प्रकाश-संश्लेषण, श्वसन, कोशिका विभाजन जैसी प्रक्रियाएं जो किसी भी पौधे के विकास के लिए

आवश्यक हैं उन्हें रोकती हैं। सरल अर्क छोटे किसानों के लिए कम लागत वाले विकल्प हैं। विभिन्न शोध कार्यों में कैलोट्रोपिस, वाइटेक्स, होलर्रिहना और आइपोमिया आदि के अर्क ने खरपतवार बायोमास को कम किया है और कभी-कभी यांत्रिक निराई जितना प्रभाव भी दिखाया है।

2. **उड़नशील तेलों पर आधारित शाकनाशी:** सुगन्धित पौधों से प्राप्त ये वाष्पशील, लिपोफिलिक तेल (मोनोटरपेन, सेस्क्विटरपेन) कोशिका झिल्ली को नष्ट करके, श्वसन को बाधित करके तथा

ऑक्सीडेटिव तनाव उत्पन्न करते हैं। इनकी वाष्पशीलता के कारण ये संपर्क-आधारित हर्बिसाइड के रूप में प्रभावी हैं, परंतु स्थायित्व बढ़ाने हेतु माइक्रो-एन्कैप्सुलेशन या बेहतर फॉर्मुलेशन की आवश्यकता होती है। उदाहरण: सिम्बोपोगोन, यूक्लिप्टस, ओसीमम, टैजेटेस के तेल आदि।

3. **एलीलोकैमिकल-आधारित शाकनाशी:** ये एकल शुद्ध यौगिक होते हैं जो एलीलोकैमिकल प्रभावों के लिए उत्तरदायी हैं- जैसे लिप्टोस्पर्मोन, एडलैथोन, पेलागोनिक एसिड, सॉरगोलियोन, विभिन्न क्विनोन तथा ग्लूकोसिनोलेट/आइसोथायोसायनेट आदि।
4. **पौध-अवशेष आधारित शाकनाशी:** इसमें ताजी जैविक सामग्री, कटे पत्ते या किसी पौधे के अवशेषों को मल्व या मिट्टी में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। अपघटन के दौरान इनमें से एलीलोकैमिकल पदार्थ निकलते हैं, जो खरपतवार उभरने और प्रारंभिक वृद्धि को रोकते हैं। यह तरीका कम लागत वाला है और जैविक खेती के अनुरूप है - उदाहरण: टैबर्नेमेटाना, लैंटाना जैसी पौधों का उपयोग।
5. **किण्वित और जैव-सक्रिय हर्बल फॉर्मुलेशन:** किण्वन द्वारा तैयार किए गए अर्कों में एलीलोकैमिकल की उपलब्धता और जैविक सक्रियता बढ़ जाती है। किण्वन से अतिरिक्त अवरोधक यौगिक भी बनते हैं। इनका उपयोग पारंपरिक कृषि व प्राकृतिक खेती प्रणालियों में किया जाता है। प्रभावशीलता किण्वन प्रक्रिया व सूक्ष्मजीव समुदाय पर निर्भर करती है।
6. **संयुक्त एवं फॉर्म्युलेटेड फाइटो-हर्बिसाइड्स एवं बायोहर्बिसाइड हाइब्रिड्स:** आधुनिक पद्धतियाँ पौध-जनित यौगिकों को सूक्ष्मजीवों या कम डोज के सिंथेटिक हर्बिसाइड्स के साथ मिलाकर तैयार की जाती हैं, जिससे प्रभाव बढ़ता है, स्थायित्व सुधरता है और लक्ष्य क्षेत्र विस्तृत होता है। माइक्रो-एन्कैप्सुलेशन व एडजुवेंट्स इनके फैलाव व प्रभाव को सुधारते हैं तथा अस्थिरता को घटाते हैं।

हर्बल हर्बिसाइड्स के उपयोग की संभावनाएँ:

- **पर्यावरण अनुकूल एवं स्वास्थ्य लाभ:** ये जैव-अवक्रमणीय होते हैं और मिट्टी, पानी व खाद्य पदार्थों में कम अवशेष छोड़ते हैं, जिससे मानव व पर्यावरणीय जोखिम घटता है। इसलिए जैविक खेती व छोटे किसानों के लिए उपयुक्त हैं।
- **स्थानीय उपलब्धता एवं कम लागत:** कई पौध सामग्री स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होती हैं, जिन्हें किसान सरल विधियों से तैयार कर सकते हैं और उनकी लागत कम हो जाती है।
- **बहु-लक्ष्यित क्रियाविधियाँ:** बहु-लक्ष्यित क्रियाविधियाँ (जैसे झिल्ली क्षति, श्वसन अवरोध, हार्मोन असंतुलन) हर्बिसाइड प्रतिरोधक क्षमता को कम कर सकती हैं।

- **एकीकृत खरपतवार प्रबंधन के अनुकूल:** इसे अन्य खरपतवार विरोधी नियंत्रणों के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है।
- **बाजार व नीति सार्थक:** रसायन-मुक्त कृषि व वन-हेल्थ की अवधारणा से जैव-आधारित समाधानों की मांग बढ़ी है, जो अनुसंधान व व्यावसायिक विकास को प्रोत्साहन देती है।
- हरित प्रौद्योगिकियों के लिए पसंदीदा विकल्प जैसे जैविक खेती।

हर्बल हर्बिसाइड्स की चुनौतियाँ:

- **परिवर्तनीय प्रभाव व स्थायित्व की कमी:** प्रयोगशाला में प्रभावी होने के बावजूद फील्ड में वाष्पशीलता, प्रकाश-विघटन आदि के कारण कम समय के लिए जमीन पर रहते हैं जिससे प्रभाव भी कम हो जाता है।
- **फॉर्मुलेशन व अधिक उत्पादन बढ़ाने की चुनौतियाँ:** उद्योग स्तर पर स्थिर व प्रभावी फॉर्मुलेशन विकसित करना महंगा व जटिल है।
- **विषाक्तता की संभावनाएँ:** कुछ आवश्यक तेल व एलीलोकैमिकल उच्च सांद्रता पर मानव या पशु स्वास्थ्य के सन्दर्भ में मुश्किल पैदा कर सकते हैं।
- **अन्य वनस्पति पर प्रभाव का डर:** कई फाइटो-हर्बिसाइड्स गैर-चयनात्मक होते हैं और सभी पौधों पर प्रभाव डालते हैं।
- **नियामक बाधाएँ:** फाइटो-हर्बिसाइड्स के लिए भी विस्तृत डेटा की कमी है जो किसी भी उत्पाद को बाजार में लाने के लिए अति महत्वपूर्ण है।
- कुछ रासायनिक खरपतवारनाशियों की अपेक्षा अधिक महंगे हैं।

निष्कर्ष: पौध आधारित शाकनाशी, रसायनिक शाकनाशियों के अपेक्षा आशाजनक, पर्यावरण-अनुकूल और टिकाऊ विकल्प के रूप में उभर रहे हैं। औषधीय पौधों से प्राप्त ये उत्पाद - पौध अर्क, उड़नशील सुगंधित तेल, एलीलोकैमिकल तथा जैवमल्व आदि कई क्रियाविधियों के माध्यम से खरपतवारों को नियंत्रित करते हैं। इनका प्राकृतिक स्रोत इन्हें पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित बनाता है, तथा जैव-अवक्रमणीयता और कम अवशेष इन्हें जैविक व लघु-सीमांत कृषि के लिए उपयुक्त बनाती है। हालाँकि, क्षेत्रीय परिस्थितियों में इनकी प्रभावशीलता में भिन्नता, कम स्थायित्व, जटिल फॉर्मुलेशन तथा कभी-कभी गैर-लक्ष्य विषाक्तता जैसी चुनौतियाँ इनके व्यापक उपयोग में बाधा बनती हैं। व्यावसायीकरण हेतु मानकीकरण, विषाक्तता मूल्यांकन तथा नियामक अनुपालन भी आवश्यक है। यदि उन्नत फॉर्मुलेशन तकनीकों, नियंत्रित-रिलीज प्रणालियों, बहु-स्थलीय परीक्षणों तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन में इनके संयोजन को बढ़ावा दिया जाए, तो ये पौध सतत कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये रासायनिक उपयोग को घटाते हुए कृषि-पर्यावरण की रक्षा करने और रेसिलिएंट एग्रोइकोसिस्टम बनाने में सहायक साबित हो सकते हैं।



जंगली जई (अवेना फुतुआ) - रबी फसलों में एक उभरती प्रमुख खरपतवार समस्या और इसका वैज्ञानिक प्रबंधन

अरुणा मेहता, यूर्मिला कुमारी, गरिमा एवं कशिश वालिया

वानिकी महाविद्यालय, डॉ. वाई. एस. परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हि.प्र.)

परिचय

जंगली जई (अवेना फुतुआ) सर्दी के मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख अनाज फसलों में पाई जाने वाली एक अत्यंत आक्रामक खरपतवार है। यह मूल रूप से यूरोप और एशिया की निवासी प्रजाति है, लेकिन बीजों की मिलावट, कृषि मशीनरी की आवाजाही, अनाज व्यापार और प्राकृतिक प्रसार के कारण अब विश्वभर में फैल चुकी है। इसकी उच्च प्रजनन क्षमता, बीजों की दीर्घायु, व्यापक अनुकूलन क्षमता और आनुवांशिक विविधता इसे एक अत्यंत सफल और विनाशकारी खरपतवार बनाती है। इसे विश्व के शीर्ष विनाशकारी खरपतवारों में शामिल किया गया है और 55 से अधिक देशों में फैलकर 20 से अधिक महत्वपूर्ण फसलों की उत्पादकता को प्रभावित करती है। गेहूँ, जौ, धान और अलसी जैसी फसलों में इसकी उपस्थिति गंभीर प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करती है और फसलों की उत्पादकता को लगभग 70 प्रतिशत तक कम कर सकती है, जिससे कृषि उत्पादन, किसानों की आय और अनाज आपूर्ति-श्रृंखला पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसकी वैश्विक सफलता का मुख्य कारण इसकी उच्च आनुवांशिक विविधता, फिनोटाइपिक प्लास्टिसिटी, अलग अलग जलवायु और कृषि प्रणालियों में अनुकूलन क्षमता और मिट्टी के बीज बैंक में लंबे समय तक जीवित रहने की क्षमता है, जिसके कारण यह विश्वभर में एक प्रमुख कृषि-खरपतवार के रूप में स्थापित हो गई है। जंगली जई फसलों के साथ पानी, पोषक तत्व और प्रकाश के लिए तेज प्रतिस्पर्धा करती है, जिससे फसल की वृद्धि और उपज में सीधा प्रभाव पड़ता है। इसके बीजों में असमान परिपक्वता और परिवर्ती बीज-निष्क्रियता जैसी विशेषताएँ होती हैं। कुछ बीज जल्दी पककर मिट्टी के बीज-भंडार को बढ़ाते हैं, जबकि देर से पकने वाले बीज कटाई के समय अनाज में मिलकर गुणवत्ता और बाजार मूल्य को कम कर देते हैं। बीजों का आकार अनाज जैसा होने के कारण इन्हें सामान्य मशीनों से साफ करना भी मुश्किल होता है। इस खरपतवार की एक और गंभीर समस्या है शाकनाशी प्रतिरोध। समान क्रिया-विधि वाले शाकनाशियों के लगातार उपयोग से कई देशों में जंगली जई ने प्रतिरोध विकसित कर लिया है, जिससे रासायनिक नियंत्रण और भी चुनौतीपूर्ण हो गया है। साथ ही, इसका फसल-अनुकरण गुण इसे फसल के पौधों के बीच छिपने और पहचान से बचने में मदद करता है। इन सभी कारणों से जंगली जई का प्रबंधन एक जटिल कार्य है, जिसके लिए समेकित खरपतवार प्रबंधन रणनीतियाँ अत्यंत आवश्यक हैं। इनमें स्वच्छ बीज का उपयोग, कृषि मशीनरी की सफाई, शाकनाशियों के क्रिया-वर्गों का रोटेशन उपयुक्त समय पर छिड़काव, फसल चक्र, और बेहतर कृषि पद्धतियों का अपनाना

शामिल है। उचित प्रबंधन से इस खरपतवार के प्रसार पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है और फसल उत्पादकता की रक्षा की जा सकती है।

वनस्पतिक विवरण

जंगली जई घासकुल की एकवर्षीय पौध प्रजाति है, जिसकी जड़ें अत्यधिक विस्तृत रेशेदार तंत्र बनाती हैं। इसकी पत्तियाँ सपाट होती हैं और रैखिक-बाणाकार आकार की होती हैं, जिनका अग्रभाग अक्सर बाएँ से दाएँ दिशा में हल्का-सा मुड़ जाता है। इसके पुष्पक्रम झुके हुए स्पाइकलेट्स से बने होते हैं, जिनमें दो से तीन फूले होते हैं और इनके बाहरी हिस्से पर कंठनुमा आँन होते हैं। प्रत्येक पैनिकल सामान्यतः लगभग 100 बीज उत्पन्न करता है, जिनका रंग भूरे से काले तक हो सकता है। जमीन पर गिरने के बाद इन आँन का बार-बार सूखना और गीला होना, बीज को मिट्टी में “डिल” करने यानी भीतर पहुँचाने में मदद करता है, जहाँ यह 4-5 वर्ष तक जीवित रह सकता है।

फसल अनुकरण: जंगली जई समशीतोष्ण क्षेत्रों में गेहूँ, जौ और ओट जैसी फसलों के लिए एक गंभीर खरपतवार है। इसका मुख्य कारण इसकी इन फसलों के जैसी बनावट, वृद्धि की आदत, बीज का आकार और आकृति और पकने का समय अपनाकर खुद को खेत में छुपा लेती है। इस विशेष प्रकार के अनुकरण को रूसी वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव के नाम पर वाविलोवियन मिमिक्री कहा जाता है। इससे जंगली जई को दो तरह के लाभ मिलते हैं - पहला, आक्रामक अनुकरण के कारण यह नए खेतों में आसानी से फैल जाती है और दूसरा, प्रजनन संबंधी अनुकरण के कारण इसके बीज तेजी से फैलते हैं और खेत में इसकी संख्या लगातार बढ़ती रहती है। इस तरह, फसल अनुकरण जंगली जई को नियंत्रण में रखना कठिन बनाता है।

अनाज फसलों पर जंगली जई का प्रभाव: जंगली जई अनाज फसलों की उपज और गुणवत्ता पर गंभीर नकारात्मक प्रभाव डालती है क्योंकि यह फसल के साथ पोषक तत्व, पानी और सूर्य प्रकाश के लिए तीव्र प्रतिस्पर्धा करती है। फसल की उपज पर होने वाली हानि मुख्य रूप से जंगली जई के घनत्व और इसके अंकुरण समय पर निर्भर करती है। यदि जंगली जई का घनत्व अधिक हो और यह फसल से पहले अंकुरित हो, तो उपज में भारी कमी आती है, जबकि देर से अंकुरित होने पर हानि अपेक्षाकृत कम होती है। कई प्रयोगात्मक निरीक्षणों में यह पाया गया है कि जंगली जई की अधिकता से गेहूँ और जौ जैसी फसलों की उपज में लगभग 20 से 50 प्रतिशत तक की गिरावट संभव है। इसके अतिरिक्त, जंगली जई फसल की गुणवत्ता को भी प्रभावित करती है, जिससे अनाज के प्रोटीन एवं ग्लूटेन की

मात्रा घटती है तथा दाने के आकार और भार में कमी आती है। यह खरपतवार शीघ्र बीज झाड़कर मिट्टी में बीज भंडार को बढ़ाती है देर से उगने वाले पौधे, कटाई के समय फसल में मिलकर अनाज की शुद्धता तथा भंडारण गुणवत्ता को भी कम कर देते हैं।

जंगली जई का प्रजनन एवं प्रसार: जंगली जई एक अत्यधिक प्रजननशील खरपतवार है, जो केवल बीजों द्वारा फैलती है। इसका फूलन जून से अक्टूबर तक होता है और फसल के ऊपर पैनिकल दिखाई देते हैं। यह प्रजाति मुख्यतः स्वपरागित है, हालांकि लगभग 12 प्रतिशत परागण क्रियाएँ भी दर्ज की गई हैं। जंगली जई का एक स्वस्थ पौधा बिना प्रतिस्पर्धा के 2,000 बीज उत्पन्न कर सकता है, जबकि प्रतिस्पर्धी फसलों में यह संख्या 200-450 बीज तक घट जाती है। बीज धीरे-धीरे मिट्टी की सतह पर गिरते हैं। कटाई से पहले लगभग 66 प्रतिशत और कटाई के दौरान लगभग 20 प्रतिशत बीज गिरते हैं। प्राकृतिक प्रसार 1 से 3 मीटर प्रति मीटर वर्ष तक सीमित होता है, लेकिन कृषि गतिविधियों से यह 30 मीटर या अधिक फैल सकता है। बीज दो प्रमुख चरणों में अंकुरित होते हैं सितंबर-नवंबर और मार्च-मई। बीज का अंकुरण न्यूनतम 3 डिग्री सेल्सियस और अधिकतम 17 डिग्री सेल्सियस तापमान में संभव है, जबकि 6-7 डिग्री सेल्सियस पर अंकुरण की दर सर्वोत्तम रहती है। जल्दी अंकुरित पौधे अधिक टिलर और बीज उत्पन्न करते हैं।

बीज सुषुप्तावस्था: ताजे बीज प्रारंभ में सुषुप्त होते हैं। गर्म और शुष्क भंडारण से धीरे-धीरे सुषुप्तावस्था समाप्त होती है। मिट्टी में दबे बीज लगभग 3 महीने तक सुषुप्त रहते हैं। बीजों में उपस्थित ह्यग्रोस्कोपिक ऑन मिट्टी की सतह पर रहने वाले बीजों को जमीन में धंसने में मदद करता है। सुषुप्तावस्था पर बीज की स्थिति, जाति और जलवायु प्रभाव डालते हैं। सुषुप्तावस्था के कारण बीज विभिन्न समय पर अंकुरित होते हैं, जिससे कुछ पौधे शाकनाशी नियंत्रण से बच जाते हैं। जल्दी अंकुरित पौधे मिट्टी में बीज भंडार बढ़ाते हैं, जबकि देर से अंकुरित पौधे कटाई के समय खेत में फैलते हैं और अनाज में बीज मिलावट का कारण बनते हैं।

प्रबंधन के उपाय: जंगली जई फसलों में एक अत्यंत आक्रामक खरपतवार है, जिसका उच्च प्रजनन क्षमता और बीज प्रसार फसल उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। 1960 के दशक से इस प्रजाति में शाकनाशी प्रतिरोध देखा गया है, जिससे पारंपरिक रासायनिक नियंत्रण सीमित प्रभावी हो गया। इस चुनौती से निपटने के लिए एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाया जाता है, जिसमें कल्चरल, यांत्रिक, रासायनिक और जैविक उपायों का समग्र उपयोग किया जाता है। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन केवल वर्तमान खरपतवार आबादी को नियंत्रित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि मिट्टी में उपस्थित बीज बैंक को घटाकर भविष्य में खरपतवार प्रकोप की संभावना को भी प्रभावी रूप से कम करता है। यह रणनीति खरपतवार की जीवविज्ञान, प्रजनन चक्र तथा कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र को ध्यान में रखकर विकसित की जाती है, जिससे फसलों में उपज हानि न्यूनतम रहती है, दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता में वृद्धि होती है तथा पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है।

सस्य खरपतवार नियंत्रण

- **स्वच्छता:** जंगली जई अत्यधिक बीज उत्पादक खरपतवार है, इसलिए इसका प्रभावी नियंत्रण बीज स्रोतों को समाप्त करने और स्वच्छ खेतों में इसके प्रवेश को रोकने पर आधारित है। इसके लिए प्रमाणित स्वच्छ बीज, साफ कृषि यंत्रों का उपयोग तथा खेत में उगे पौधों को बीज बनने से पहले नष्ट करना आवश्यक है। साथ ही, खेत की मेड़ों और गैर-फसली क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धी बहुवर्षीय घासों बनाए रखना तथा आवश्यकता अनुसार समय पर कटाई या चयनित शाकनाशी का प्रयोग, जंगली जई के फैलाव को प्रभावी रूप से रोकता है।
- **जुताई संचालन:** जुताई संचालन जंगली जई की जनसंख्या गतिकी पर गहरा प्रभाव डालते हैं। परंपरागत जुताई के दौरान मिट्टी में होने वाली तीव्र हलचल जंगली जई के बीजों को गहराई में दफन कर देती है, जिससे उनकी सुषुप्तावस्था बढ़ जाती है और वे मिट्टी में लंबे समय तक जीवित बने रहते हैं। बाद की जुताई क्रियाएँ इन दफन बीजों को पुनः मिट्टी की सतह पर ला सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप अंकुरण में वृद्धि होती है तथा फसल में संक्रमण और प्रतिस्पर्धा की तीव्रता बढ़ जाती है। इसके विपरीत, न्यूनतम जुताई अथवा नो-टिल प्रणालियों में जंगली जई के बीज अधिकांशतः मिट्टी की सतह पर ही बने रहते हैं। ऐसी स्थिति में तापमान एवं नमी में होने वाले मौसमी उतार-चढ़ाव, सूक्ष्मजीवों की सक्रियता तथा कीट-पोषण के संयुक्त प्रभाव से बीजों का अपेक्षाकृत शीघ्र क्षय होता है। परिणामस्वरूप, मिट्टी में विद्यमान बीज भंडार में क्रमिक किंतु उल्लेखनीय कमी देखी जाती है। समग्र रूप से, संरक्षण जुताई अथवा नो-टिल प्रणाली को जंगली जई के दीर्घकालीन, सतत एवं पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन के लिए एक प्रभावी रणनीति माना जाता है।
- **बीज दर:** फसल की बीज दर बढ़ाने से फसल की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ती है, जिससे जंगली जई की वृद्धि, बायोमास और बीज उत्पादन दब जाता है, और गेहूँ, जौ, ओट और कैनोला में उपज बढ़ती है। हालांकि, एक निश्चित बीज घनत्व के बाद लाभ स्थिर हो जाता है और अत्यधिक उच्च बीज दर आर्थिक रूप से उचित नहीं होती।
- **बुवाई का समय:** बुवाई का समय फसल और खरपतवार की प्रतिस्पर्धा को प्रभावित करता है। बुवाई में देरी करने से शुरुआती जंगली जई को नियंत्रित किया जा सकता है, विशेषकर भारी संक्रमण वाले खेतों में, क्योंकि इससे पूर्व-बुवाई जुताई या हर्बिसाइड का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, जंगली जई कई समूह में अंकुरित होती है और बुवाई में देरी से फसल की उपज कम हो सकती है, इसलिए आम तौर पर जल्दी बुवाई करना और उच्च बीज दर अपनाना खरपतवार नियंत्रण और बेहतर आर्थिक लाभ के लिए अधिक प्रभावी होता है। देरी से बुवाई केवल अत्यधिक संक्रमण वाले खेतों में भविष्य के बीज भंडार को कम करने में मदद करती है।

- **फसल चक्र:** फसल चक्र जंगली जई के जीवन चक्र को तोड़कर और मिट्टी के बीज भंडार को कम करके इसके नियंत्रण में मदद करता है। कैनोला, दलहनी या ज्वार जैसी विविध फसलें शामिल करने से फसल की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ती है और विभिन्न शाकनाशियों का उपयोग किया जा सकता है। शोधों से पता चलता है कि गेहूँ की लगातार एकल फसल और बार-बार एक प्रकार के शाकनाशी के उपयोग से जंगली जई का बीज भंडार नहीं घटता, तब वैकल्पिक फसलें या फेलो अवधि बीज भंडार को प्रभावी ढंग से घटाती हैं। सर्वोत्तम नियंत्रण के लिए जंगली जई के पौधों को बीज बनने से पहले हटाना आवश्यक है। इसके अलावा, ग्रीन/ब्राउन मैन्थोरिंग, चारा या साइलेज के लिए फसलों को सम्मिलित करना आर्थिक लाभ के साथ-साथ खरपतवार के नियंत्रण में भी सहायक होता है।

यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण: भौतिक या यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण में विभिन्न यंत्रों द्वारा खरपतवारों को उखाड़ना अथवा मिट्टी में दबाना शामिल है। यंत्र की संरचना के अनुसार ये क्रियाएँ एक साथ या अलग-अलग प्रभावी हो सकती हैं। वीड हैरोइंग तथा पंक्तियों के बीच जुताई इसके प्रमुख उपाय हैं, जिनसे 40 से 90 प्रतिशत तक खरपतवार नियंत्रण संभव बताया गया है। फ्लेक्स-टाइन हैरो का उपयोग शीतकालीन गेहूँ में वार्षिक खरपतवारों के नियंत्रण में प्रभावी पाया गया है, जबकि बहुवर्षीय खरपतवारों पर इसका प्रभाव सीमित रहता है। बुवाई से पूर्व, टाइन कल्टीवेशन द्वारा जंगली जई के मिट्टी स्थित बीज भंडार में जुताई की तुलना में अधिक तेजी से कमी लाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त, पॉलीथीन शीट द्वारा मिट्टी का सौरकरण भी जंगली जई के प्रभावी नियंत्रण की एक सफल भौतिक विधि सिद्ध हुई है।

हार्वेस्ट वीड सीड कंट्रोल: अन्न की कटाई के दौरान आधुनिक हार्वेस्टर फसल के दानों को अवशेषों से अलग करते हैं, जिससे अनजाने में खरपतवार के बीज खेत में फैलते हैं और संक्रमण जारी रहता है। हार्वेस्ट वीड सीड कंट्रोल एक ऐसी रणनीति है, जो कटाई के समय खरपतवार के बीज इकट्ठा कर उन्हें नष्ट करती है, ताकि वे मिट्टी में लौटकर पुनः अंकुरित न हों। यह विधि बीज भंडार को कम करने और भविष्य में खरपतवार जनसंख्या को नियंत्रित करने का प्रभावी तरीका है।

जैविक नियंत्रण: जैविक खरपतवार नियंत्रण में सूक्ष्मजीवी एजेंटों का उपयोग किया जाता है, जो रासायनिक शाकनाशियों का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प हैं। बहुतायत जैविक नियंत्रण तकनीक में जंगली जई-विशिष्ट रोगकारक या सूक्ष्मजीवों का बड़े पैमाने पर उत्पादन कर उन्हें उच्च मात्रा में प्रभावित क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। हाल के अध्ययनों में पत्तियों पर लागू रोगजनकों के साथ-साथ मिट्टी में रहने वाले सूक्ष्मजीवों, विशेषकर राइजोबैक्टीरिया, को घास-प्रजाति के खरपतवारों के नियंत्रण में उपयोगी पाया गया है। अच्छा हुआ बैक्टीरियल सुपरनेटेंट में कई ऐसे महत्वपूर्ण घटक होते हैं जो खरपतवारों को दबाने में मदद करते हैं। इसलिए जैविक खरपतवार नियंत्रण के अनुसंधान में प्रभावी और

त्वरित जाँच विधियों की आवश्यकता होती है, ताकि इन उपयोगी घटकों की पहचान जल्दी और सही तरीके से की जा सके।

रासायनिक नियंत्रण: 1940 के दशक में फिनॉक्सी एसिटिक अम्ल की खोज के बाद से शाकनाशियों ने फसल उत्पादन में विश्व-भर में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जंगली जई का नियंत्रण वर्षों से विभिन्न शाकनाशियों द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता रहा है। इस खरपतवार के प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रारंभिक पोस्ट-इमर्जेंस अवस्था में ACCase तथा ALS अवरोधक शाकनाशियों का प्रयोग आवश्यक होता है। एराइल ऑक्सीफेनॉक्सीप्रोपियोनेट (APP) और साइक्लोहेक्सानेडायोन (CHD) वर्ग के शाकनाशी जंगली जई के नियंत्रण में सामान्यतः उपयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ग्लाइफोसेट, बाबर्न, डाइफेंजोकोएट, क्लोरोफेनप्रॉप, लिन्यूरॉन, मेट्रिब्यूजिन, मोनोलिन्यूरॉन तथा मेटाक्लोरॉन जैसे शाकनाशी भी जंगली जई के विरुद्ध प्रभावी पाए गए हैं। हालाँकि, अन्य तकनीकों की तरह शाकनाशियों के उपयोग में भी सुरक्षा एवं पर्यावरणीय चिंताएँ तथा शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों का विकास जैसी चुनौतियाँ मौजूद हैं। जंगली जई विश्व की 15 प्रमुख शाकनाशी-प्रतिरोधी खरपतवार प्रजातियों में शामिल है। ACCase अवरोधक शाकनाशियों के प्रति प्रतिरोधी जंगली जई बायोटाइप्स ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चिली, फ्रांस, दक्षिण अफ्रीका, स्पेन, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य अमेरिका में कृषि उत्पादन के लिए गंभीर खतरा बन चुके हैं। शाकनाशी प्रतिरोध की घटनाओं में वृद्धि मुख्यतः नए उत्परिवर्तनों के चयन तथा जंगली जई के बीजों की अधिक गतिशीलता के कारण होती है, जिसमें बीज प्रसार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रतिरोधी जंगली जई जनसंख्या के प्रबंधन में शाकनाशियों का चक्रीकरण तथा वैकल्पिक नियंत्रण विधियों का उपयोग विशेष रूप से प्रभावी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न एवं उपयुक्त सस्य विधियों को रासायनिक नियंत्रण के साथ एकीकृत करना शाकनाशी प्रतिरोध के चयन दबाव को कम करता है और उपलब्ध शाकनाशियों की प्रभावशीलता को लंबे समय तक बनाए रखने में सहायक होता है।

निष्कर्ष: जंगली जई एक अत्यधिक आक्रामक खरपतवार है, जिसकी उच्च प्रजनन क्षमता, लंबी बीज जीवन अवधि, व्यापक अनुकूलन, अनुवंशिक विविधता, फसल नकल और शाकनाशी प्रतिरोध इसे फसलों के लिए गंभीर खतरा बनाती हैं। यह खरपतवार फसल के समान आकारिक और विकासात्मक लक्षण प्रदर्शित करता है, जिससे इसकी पहचान और नियंत्रण जटिल हो जाता है। प्रभावी प्रबंधन के लिए एकीकृत खरपतवार प्रबंधन दृष्टिकोण आवश्यक है, जिसमें सस्य, भौतिक, जैविक और रासायनिक उपायों का संयोजन शामिल होता है। हार्वेस्ट वीड सीड कंट्रोल, न्यूनतम जुताई, फसल अनुक्रमण, शाकनाशी चक्रण और समयबद्ध नियंत्रण रणनीतियाँ इसकी बीज बैंक और प्रजनन क्षमता को सीमित करती हैं। सतत एवं बहुआयामी प्रबंधन से फसल की उपज संरक्षित रहती है, खरपतवार प्रतिरोध का विकास नियंत्रित होता है तथा दीर्घकालिक कृषि स्थिरता सुनिश्चित होती है।



कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस) आधारित खरपतवार प्रबंधन: सटीक कृषि की ओर एक क्रांतिकारी कदम

सोनाली सिंह¹, पी.के. मुखर्जी¹, अनामिका पांडे¹ और अमन महलोत्रा²

¹भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

²इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ कृषि न केवल खाद्य सुरक्षा का आधार है, बल्कि करोड़ों लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन भी है। परंतु बदलते जलवायु परिदृश्य, अनिश्चित मानसून, श्रम की लगातार बढ़ती कमी तथा उत्पादन लागत में वृद्धि ने भारतीय कृषि को एक जटिल मोड़ पर ला खड़ा किया है। इन सभी चुनौतियों के बीच खरपतवार फसल उत्पादन के लिए सबसे गंभीर और लगातार बनी रहने वाली समस्याओं में से एक हैं। यदि समय पर और प्रभावी खरपतवार नियंत्रण न किया जाए, तो वे प्रमुख फसलों की उपज को 30 से 70 प्रतिशत तक प्रभावित कर सकते हैं, विशेषकर धान, गेहूँ, मक्का और दलहनी फसलों में।

खरपतवार फसलों के साथ-साथ जल, पोषक तत्व, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिससे न केवल उपज घटती है, बल्कि फसल की गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पारंपरिक खरपतवार नियंत्रण विधियाँ अब इन चुनौतियों का दीर्घकालिक समाधान प्रदान करने में सीमित सिद्ध हो रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) आधारित खरपतवार प्रबंधन प्रणाली सटीक, टिकाऊ एवं भविष्य-उन्मुख कृषि की दिशा में एक क्रांतिकारी विकल्प के रूप में उभर रही है।

भारतीय कृषि में खरपतवार नियंत्रण मुख्यतः

यांत्रिक, रासायनिक और जैविक विधियों पर आधारित रहा है। हाथ से निराई-गुड़ाई और यांत्रिक उपकरणों द्वारा नियंत्रण लंबे समय तक प्रभावी रहा, किंतु बढ़ती मजदूरी दर और श्रम की अनुपलब्धता ने इसकी व्यवहारिकता को सीमित कर दिया है। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण ने अल्पकाल में उत्पादन बढ़ाया, परंतु इसके दीर्घकालिक प्रभाव गंभीर रहे हैं। बार-बार शाकनाशियों के प्रयोग से खरपतवारों में प्रतिरोधकता विकसित हो गई है। जैविक खरपतवार नियंत्रण पर्यावरण-अनुकूल अवश्य है, किंतु इसकी धीमी क्रियाविधि और सीमित प्रभावशीलता के कारण इसे व्यापक रूप से नहीं अपनाया जा सका।

एआई मॉडल, डेटा संरचना और सॉफ्टवेयर इकोसिस्टम

कृत्रिम बुद्धिमत्ता ऐसी तकनीक है, जो मशीनों को सोचने, सीखने और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है। कृषि में एआई का उपयोग केवल यंत्रिकरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह डेटा-आधारित निर्णय प्रणाली के रूप में विकसित हो रहा है। खेत से प्राप्त पौधों की छवियाँ, मौसमीय आँकड़े, मिट्टी की स्थिति और प्रबंधन इतिहास जैसे डेटा का विश्लेषण कर एआई प्रणाली सटीक अनुशंसाएँ प्रदान करती है। खरपतवार प्रबंधन में एआई की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि खरपतवारों की पहचान, उनकी प्रजाति और स्थानीय वितरण पारंपरिक तरीकों से सटीक रूप से संभव नहीं होता। एआई आधारित

खरपतवार प्रबंधन प्रणाली की सफलता उच्च गुणवत्ता वाले डेटा और प्रभावी मॉडल प्रशिक्षण पर निर्भर करती है। ड्रोन, मोबाइल कैमरा, फील्ड सेंसर और सैटेलाइट से प्राप्त चित्रों के माध्यम से बड़े पैमाने पर डेटा संग्रह किया जाता है। मशीन लर्निंग और डीप लर्निंग आधारित संरचनाएँ पौधों की आकृति, रंग और बनावट के आधार पर फसल और खरपतवार में अंतर करना सीखती हैं। जीआईएस आधारित प्लेटफॉर्म खेत-स्तर पर खरपतवार मानचित्र तैयार करने में सहायक होते हैं।

एआई आधारित खरपतवार पहचान प्रणाली कंप्यूटर विज्ञान तकनीक का उपयोग कर खेत की सतह की निरंतर इमेजिंग करती है। पौधों की पत्तियों की संरचना, आकार और रंग जैसे लक्षणों के आधार पर प्रणाली यह निर्धारित करती है कि कौन-सा पौधा फसल है और कौन-सा खरपतवार। कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि प्रशिक्षित एआई मॉडल 90-95 प्रतिशत तक की सटीकता के साथ प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों की पहचान कर सकते हैं। इस तकनीक का प्रमुख लाभ यह है कि यह केवल खरपतवार की उपस्थिति ही नहीं, बल्कि उनकी प्रजाति, घनत्व और स्थानिक वितरण की जानकारी भी प्रदान करती है।

स्मार्ट स्प्रेडिंग और सटीक शाकनाशी प्रयोग

एआई आधारित स्मार्ट स्प्रेडिंग प्रणाली केवल उन स्थानों पर शाकनाशी का छिड़काव करती है, जहाँ खरपतवार की वास्तविक उपस्थिति दर्ज होती है। कैमरा और सेंसर आधारित प्रणाली खरपतवार की पहचान कर संबंधित नोजल को सक्रिय करती है। इससे शाकनाशी उपयोग में 70-90 प्रतिशत तक की कमी संभव है, जबकि नियंत्रण दक्षता बनी रहती है। यह तकनीक उत्पादन लागत घटाने के साथ-साथ पर्यावरणीय प्रदूषण को भी कम करती है।

ड्रोन और सैटेलाइट आधारित खरपतवार निगरानी

ड्रोन आधारित तकनीक खेत के ऊपर उड़कर उच्च-रिजॉल्यूशन तस्वीरें एकत्र करती है, जिनका एआई द्वारा विश्लेषण किया जाता है। मल्टी-स्पेक्ट्रल इमेजिंग के माध्यम से खरपतवार और फसल के बीच सूक्ष्म अंतर भी पहचाने जा सकते हैं। सैटेलाइट आधारित निगरानी बड़े क्षेत्र में खरपतवार प्रसार के रुझानों को समझने में सहायक होती है।

स्वायत्त रोबोटिक वीडिंग प्रणाली

एआई आधारित स्वायत्त रोबोटिक वीडिंग प्रणाली यांत्रिक नियंत्रण की नई पीढ़ी है। ये रोबोट खेत में स्वतः चलकर फसल और खरपतवार में अंतर करते हैं तथा केवल खरपतवार को यांत्रिक या लेजर तकनीक से नष्ट करते हैं। इन प्रणालियों से 90-95 प्रतिशत तक खरपतवार नियंत्रण दक्षता प्राप्त की जा सकती है, वह भी बिना रसायनों के प्रयोग के।

स्मार्ट खरपतवार प्रबंधन (Smart Weed Management)

तीन प्रमुख तकनीकें | Three Key Technologies

1 AI आधारित खरपतवार पहचान



कैमरा और सेंसर द्वारा छवि संग्रह

डीप लर्निंग और मशीन लर्निंग

रियल-टाइम पहचान और वर्गीकरण

95%+ सटीकता | 95%+ Accuracy

2 रोबोटिक्स (Robotics)



खेतों में नेविगेट और पहचान

भौतिक निष्कासन या लक्षित छिड़काव

सीधे खरपतवार पर हर्बिसाइड प्रयोग

90% रसायन बचत | 90% Saved

3 ड्रोन (Drones)



बड़े खेत में खरपतवार हॉटस्पॉट मैपिंग

लक्षित स्पॉट उपचार (Spot Treatment)

मल्टी-स्पेक्ट्रल इमेजिंग और विश्लेषण

Real-Time | तत्काल निगरानी

मुख्य लाभ (Key Benefits)

1

रसायनों का कम उपयोग (Reduced Chemical Use)

केवल खरपतवारों पर छिड़काव से रासायनिक बहाव का खतरा घटता है

2

शाकनाशी प्रतिरोध से बचाव (Combats Resistance)

लक्षित प्रयोग से अंधाधुंध रसायनों के उपयोग को रोकता है

3

अधिक फसल उपज (Higher Crop Yields)

खरपतवारों को कुशलता से हटाने से फसल-खरपतवार प्रतिस्पर्धा कम होती है

4

पर्यावरणीय स्थिरता (Environmental Sustainability)

कम शाकनाशी उपयोग और बेहतर संसाधन दक्षता से टिकाऊ कृषि

90%

रसायन बचत (Chemical Saved)

95%+

पहचान सटीकता (Detection Accuracy)

Real-Time

तत्काल प्रतिक्रिया (Instant Response)

सतत और पर्यावरण-अनुकूल कृषि की ओर एक क्रांतिकारी कदम | Towards Sustainable Agriculture

क्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय केस स्टडी

तेलंगाना में मारुत ड्रोन द्वारा कपास की फसल में एआई युक्त ड्रोन का प्रयोग कर 70% तक रसायनों की बचत हुई। कर्नाटक में तारटन सेंस का ब्रिज बोट प्रयोग कर छोटे किसानों ने हाथ से निराई-गुड़ाई पर होने

वाला खर्च 40% तक कम किया। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, अमेरिका और यूरोप में स्मार्ट स्प्रेइंग प्रणालियों से रसायन लागत में 80 प्रतिशत तक की बचत दर्ज की गई है।



चित्र 2: ड्रोन और रोबोटिक युक्त खरपतवार प्रबंधन

सतत कृषि और जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में एआई की भूमिका

एआई आधारित खरपतवार प्रबंधन प्रणाली सतत कृषि के आर्थिक, पर्यावरणीय और सामाजिक तीनों स्तंभों को सुदृढ़ करती है। लक्षित नियंत्रण से मिट्टी और जल गुणवत्ता बनी रहती है तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में अप्रत्यक्ष कमी आती है। बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप समय पर हस्तक्षेप संभव हो पाता है।

भारत में नीतियाँ, संस्थागत पहल और तकनीकी पारिस्थितिकी तंत्र

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कृषि तकनीकों को अपनाने के लिए हाल के वर्षों में नीतिगत स्तर पर ठोस प्रयास किए गए हैं। “डिजिटल कृषि मिशन (2021-25)” के अंतर्गत एआई, ड्रोन, जियो-इन्फॉर्मेटिक्स और डेटा प्लेटफॉर्म को कृषि निर्णय प्रणाली से जोड़ने पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा इसके अंतर्गत कार्यरत संस्थान एआई आधारित फसल प्रबंधन पर अनुसंधान कर रहे हैं। सरकारी योजनाओं जैसे प्रधानमंत्री एवं किसान ड्रोन पहल के माध्यम से ड्रोन और स्मार्ट उपकरणों की उपलब्धता को बढ़ावा दिया जा रहा है।

सीमाएँ, चुनौतियाँ और व्यावहारिक यथार्थ

एआई आधारित खरपतवार प्रबंधन प्रणाली जितनी आकर्षक दिखाई देती है, उतनी ही व्यावहारिक चुनौतियाँ भी इसके साथ जुड़ी हुई हैं। सबसे बड़ी चुनौती उच्च प्रारंभिक लागत है, जो छोटे और सीमांत किसानों के लिए इसे अपनाना कठिन बनाती है। तकनीकी प्रशिक्षण की कमी भी एक गंभीर समस्या है। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट कनेक्टिविटी और बिजली आपूर्ति की अनिश्चितता इस तकनीक के व्यापक प्रसार में बाधक बनती है। डेटा की गुणवत्ता और स्थानीयकरण भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। यह तकनीक तेजी से विकसित हो रही है, फिर भी कुछ चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं—

- **लागत:** स्वायत्त रोबोट और उन्नत सेंसिंग उपकरणों में प्रारंभिक निवेश काफी अधिक हो सकता है, जिससे सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में इसके अपनाने में बाधा आती है।
- **तकनीकी जटिलता:** इन प्रणालियों के सफल क्रियान्वयन के लिए संचालन, डेटा की व्याख्या और रखरखाव से संबंधित तकनीकी ज्ञान आवश्यक होता है।

- **कनेक्टिविटी:** रीयल-टाइम डेटा प्रोसेसिंग और उपकरणों के बीच संचार के लिए 5जी और 6जी जैसे मजबूत नेटवर्क की आवश्यकता होती है, जो दूरस्थ कृषि क्षेत्रों में एक बड़ी चुनौती हो सकती है।
- **डेटा और प्रशिक्षण:** सटीक एआई मॉडल के निर्माण और प्रशिक्षण के लिए बड़ी मात्रा में उच्च-गुणवत्ता वाला, लेबल किया गया इमेज डेटा चाहिए, जिसे एकत्र करना समय-साध्य और महंगा होता है।

भविष्य की दिशा और तकनीकी रोडमैप

भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित खरपतवार प्रबंधन प्रणाली और अधिक एकीकृत, स्वचालित और सुलभ होने की संभावना है। 5जी और उन्नत संचार तकनीकों के माध्यम से खेत से वास्तविक समय में डेटा प्राप्त कर तुरंत विश्लेषण और हस्तक्षेप संभव होगा। एआई, IoT और रोबोटिक्स का एकीकृत मॉडल विकसित होकर पूरी तरह स्वचालित खरपतवार पहचान और नियंत्रण प्रणाली का मार्ग प्रशस्त करेगा। कृषि शिक्षा और विस्तार प्रणाली में एआई आधारित पाठ्यक्रमों का समावेश भविष्य की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

निष्कर्ष – सटीक और टिकाऊ कृषि की ओर

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित खरपतवार प्रबंधन आधुनिक कृषि के समक्ष उपस्थित जटिल चुनौतियों का एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है। यह प्रणाली पारंपरिक तरीकों की सीमाओं को पार करते हुए सटीक, समयबद्ध और संसाधन-कुशल हस्तक्षेप को संभव बनाती है। लक्षित नियंत्रण के माध्यम से रसायनों की खपत में कमी, लागत में बचत और पर्यावरणीय संरक्षण जैसे लाभ इसे भविष्य की कृषि के लिए अत्यंत प्रासंगिक बनाते हैं। हालाँकि, यह स्पष्ट है कि एआई आधारित खरपतवार प्रबंधन कोई त्वरित या सार्वभौमिक समाधान नहीं है। इसकी सफलता तकनीकी अनुकूलन, प्रशिक्षण, नीति समर्थन और किसानों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। यदि अनुसंधान संस्थान, सरकार, निजी क्षेत्र और किसान मिलकर इस दिशा में कार्य करते हैं, तो यह तकनीक भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, टिकाऊ और जलवायु-स्मार्ट बनाने में निर्णायक भूमिका निभा सकती है।

अंततः एआई आधारित खरपतवार प्रबंधन केवल तकनीकी प्रगति का प्रतीक नहीं, बल्कि कृषि के भविष्य की दिशा का संकेत है— एक ऐसी दिशा, जहाँ विज्ञान, डेटा और पर्यावरणीय चेतना मिलकर खेती को नई ऊँचाइयों तक ले जा सकते हैं।



**मैं कहता हूँ कि आप अपनी भाषा में बालें, अपनी भाषा में लिखें।
उनको गरज होगी तो वे हमारी बात सुनेंगे। मैं अपनी बात अपनी
भाषा में कहूँगा। जिसको गरज होगी वह सुनेगा। आप इस प्रतिज्ञा के
साथ काम करेंगे, तो हिन्दी भाषा का दर्जा बढ़ेगा।**

- महात्मा गांधी

गाजरघास: एक अत्यंत हानिकारक खरपतवार-वन्य जीवों पर प्रभाव और इसका प्रबंधन

यूमिला कुमारी¹, गरिमा¹, अरुणा मेहता¹, कशिश वालिया¹, मीरा देवी², अंजलि वर्मा³ एवं सीमा शर्मा⁴

¹डॉ. वाई एस परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय थुनाग, मंडी (हि.प्र.)

²कृषि विज्ञान केंद्र, डॉ. वाई एस परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हि.प्र.)

³डॉ. वाई एस परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन (हि.प्र.)

⁴डॉ. वाई एस परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय नेरी, हमीरपुर, (हि.प्र.)

परिचय

गाजरघास एक दुर्जेय आक्रामक प्रजाति है, जिसे वैज्ञानिक रूप से *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* के नाम से जाना जाता है, एक वार्षिक खरपतवार है जिसकी उत्पत्ति मैक्सिको, मध्य अमेरिका और संयुक्त राज्य अमेरिका के खाड़ी तट क्षेत्रों में हुई थी। चित्र 1 यह बीसवीं सदी के मध्य

में, संभवतः आयातित गेहूँ के साथ भारत में अनजाने में प्रवेश कर गया। अपने तीव्र प्रसार और अत्यधिक हानिकारक प्रभावों के कारण, इसे आज भारत की वन्यजीव और कृषि पारिस्थितिकी के लिए सबसे आक्रामक खरपतवार में से एक माना जाता है।



चित्र 1- सड़क किनारे प्राकृतिक वन क्षेत्र में गाजरघास



चित्र 2- कृषि फसल के मध्यक्षेत्र में फैली गाजरघास

गाजरघास न केवल कृषि फसलों (चित्र 2) की पैदावार को कम करता है, बल्कि यह वन क्षेत्रों, घास के मैदानों और वन्यजीव अभ्यारण्यों में भी तेजी से फैल रही है, जहाँ यह देशी वनस्पतियों, पशुधन और वन्यजीवों के स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर और बहुआयामी खतरा बन गई है।

इस लेख का उद्देश्य गाजरघास के वन्यजीवों और उनके आवासों पर पड़ने वाले गंभीर प्रभावों का विश्लेषण करना और इसके प्रभावी और टिकाऊ प्रबंधन के लिए वैज्ञानिक और व्यावहारिक रणनीतियों का अवलोकन करना है।

पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस एक वार्षिक, सीधा बढ़ने वाला शाकीय पौधा है, जो लगभग 2 मीटर तक ऊँचा हो सकता है। (चित्र 3) इसका तना अत्यधिक शाखाओं वाला होता है, जिस पर सूक्ष्म रोएँ होते हैं, और उम्र बढ़ने पर यह लकड़ी जैसा हो जाता है। इसके युवा पौधे हल्के हरे रंग के, गहरी खंडित और खंडों वाली पत्तियों का एक आधारिक रोसेट (गुच्छ) बनाते हैं, जिनकी लंबाई लगभग 30 सेंटीमीटर तक हो सकती है। तने के बढ़ने पर ये पत्तियाँ धीरे-धीरे छोटी होती जाती हैं।

पौधे में पत्ती-कक्षों पर छोटी, क्रीमी-सफेद रंग की पुष्प-मंजरीय कलियाँ पाई जाती हैं। यह पौधा कम पोषक-तत्वों वाली मिट्टी में भी तेजी से बढ़ता है, बहुत तीव्र गति से प्रजनन करता है और अन्य पौधों की वृद्धि को बाधित करने वाला मजबूत एलीलोपैथिक पदार्थ स्रावित करता है। इसके बीज पानी, हवा, वाहनों, पशुओं तथा मशीनरी के माध्यम से आसानी से फैल जाते हैं।



चित्र 3- गाजरघास का पुष्पित पौधा

वन्यजीव आवासों पर गाजर घास का आक्रमण

गाजरघास एक अवसरवादी पौधा है जो मुख्य रूप से विक्षुब्ध क्षेत्रों जैसे सड़क के किनारे, खाली पड़े भूखंडों और वन किनारों पर आक्रमण करता है। यह खास तौर पर उन क्षेत्रों को निशाना बनाता है जहाँ मिट्टी की ऊपरी परत हट गई हो या जहाँ वनस्पति आवरण कमजोर हो।

जैव विविधता का क्षरण

गाजरघास का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव जैव विविधता का क्षरण है।

- **देशी वनस्पतियों का विस्थापन:** गाजरघास एक बार स्थापित होने के बाद, यह एक सघन छत्र बनाता है जो सूर्य के प्रकाश को जमीन तक पहुँचने से रोकता है। यह इसकी उच्च प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता का परिणाम है।
- **ऐलेलोपैथी (ऐलेलोकेमिकल्स) द्वारा विषैलापन:** गाजरघास से पार्थेनिन नामक एक शक्तिशाली ऐलेलोकेमिकल स्रावित होता है। यह रसायन आस-पास की मिट्टी में मिल जाता है और कई देशी घास, झाड़ियों और छोटे पौधों के बीजों के अंकुरण और विकास को रोकता है। यह क्रिया वन पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक पुनरुत्पादन चक्र को तोड़ देती है।
- **चारागाहों का विनाश:** यह खरपतवार तेजी से घास के मैदानों और खुले वन क्षेत्रों पर हावी हो जाता है, जिससे वन्यजीवों (जैसे हिरण, नीलगाय, जंगली भैंस) और पशुधन के लिए उपलब्ध पौष्टिक चारे की गुणवत्ता और मात्रा में भारी कमी आती है।

मिट्टी और जल संसाधनों पर प्रभाव

- **मिट्टी की संरचना में बदलाव:** गाजरघास के सघन विकास से मिट्टी में कुछ आवश्यक पोषक तत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है और मिट्टी की जल धारण क्षमता प्रभावित हो सकती है।
- **जल हानि में वृद्धि:** सघन रूप से उगने पर यह खरपतवार अन्य पौधों की तुलना में अधिक पानी का उपयोग कर सकता है, जिससे जलीय तनाव बढ़ता है, खासकर शुष्क और अर्ध-शुष्क वन क्षेत्रों में।
- **वन्यजीवों के स्वास्थ्य पर सीधा खतरा:** गाजरघास के संपर्क में आने या इसके उपभोग से वन्यजीवों और पशुधन के स्वास्थ्य पर सीधे और गंभीर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं।

विषाक्तता और पाचन समस्याएं

- **पशुधन विषाक्तता:** गाजरघास में मौजूद पार्थेनिन और अन्य विषैले ट्राइटरपेनॉइड्स पशुधन के लिए जहरीले होते हैं। हालाँकि जंगली जानवर सामान्यतः इसे खाने से बचते हैं, लेकिन चारे की कमी होने पर वे इसे खाने के लिए मजबूर हो सकते हैं।

- **दूध और मांस की गुणवत्ता पर असर:** यदि पशु इसे खा लेते हैं, तो उनके दूध और मांस में कड़वा स्वाद आ जाता है और विषाक्त पदार्थों की उपस्थिति के कारण यह उपभोग के लिए असुरक्षित हो सकता है।

एलर्जी और त्वचा रोग

- **संपर्क जिल्दशोथ:** इस पौधे के पराग कण और पत्तियाँ अत्यधिक एलर्जिक होती हैं।
- **जंगली जानवरों में त्वचा रोग:** गाजरघास के सघन झाड़ियों से गुजरने वाले जंगली जानवरों (जैसे लोमड़ी, सियार, छोटे शाकाहारी) में त्वचा की एलर्जी, घाव और गंभीर जिल्दशोथ (डर्माइटिस) देखा गया है। इसके पराग कण हवा के माध्यम से फेफड़ों में पहुँचकर श्वसन संबंधी समस्याएं भी पैदा कर सकते हैं।

कीट-पतंगों और पक्षियों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव

- **कीटों के आवास का नुकसान:** गाजरघास देशी पौधों को विस्थापित कर देती है, जिससे उन विशेषज्ञ कीटों को नुकसान होता है जो केवल विशिष्ट देशी पौधों पर भोजन या प्रजनन के लिए निर्भर होते हैं। इससे खाद्य श्रृंखला टूट जाती है।
- **पक्षी आवासों की हानि:** सघन गाजरघास की वृद्धि घोंसले बनाने वाली पक्षी प्रजातियों के लिए उपयुक्त स्थान और भोजन के स्रोत (बीज, कीट) को नष्ट कर देती है।

गाजरघास का प्रभावी प्रबंधन और नियंत्रण: गाजरघास का प्रबंधन एक बहु-आयामी चुनौती है जिसके लिए एकीकृत खरपतवार प्रबंधन दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से वन और वन्यजीव क्षेत्रों में जहाँ रासायनिक नियंत्रण सीमित होना चाहिए।

भौतिक और यांत्रिक नियंत्रण: वन्यजीव क्षेत्रों में यह सबसे सुरक्षित विधि है, लेकिन यह श्रम-गहन है।

- **हाथ से उखाड़ना:** छोटे आक्रमणों और वन नर्सरी में फूल आने से पहले पौधों को जड़ सहित उखाड़ना प्रभावी होता है। उखाड़ने वाले श्रमिकों को दस्ताने, मास्क और पूरे शरीर को ढकने वाले कपड़े पहनना अनिवार्य है ताकि एलर्जी से बचा जा सके।
- **नियमित कटाई:** बड़े क्षेत्रों में, इसे फूल आने से पहले नियमित रूप से काटना बीजों के उत्पादन को काफी कम कर सकता है।
- **जलाना:** कुछ क्षेत्रों में नियंत्रित तरीके से जलाना प्रभावी हो सकता है, लेकिन यह वन्यजीवों और मिट्टी के लिए हानिकारक हो सकता है, इसलिए इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण (सीमित उपयोग)

वन्यजीव अभ्यारण्यों और प्राकृतिक वनों में शाकनाशियों के

प्रयोग से सख्त परहेज करना चाहिए। इसका प्रयोग केवल बहुत सीमित क्षेत्रों (जैसे सड़क किनारे, बाड़ के पास) और तब ही किया जाना चाहिए जब अन्य विधियाँ असफल हों।

- **प्रयुक्त शाकनाशी:** आम तौर पर ग्लाइफोसेट या एट्राजीन का उपयोग किया जाता है, लेकिन इन्हें पर्यावरण पर पड़ने वाले न्यूनतम प्रभाव को ध्यान में रखते हुए चुना जाना चाहिए।

जैविक नियंत्रण (सबसे टिकाऊ समाधान)

जैविक नियंत्रण गाजरघास के दीर्घकालिक और टिकाऊ प्रबंधन के लिए सबसे उपयुक्त विधि है, खासकर बड़े वन क्षेत्रों में।

- **जाड़गोग्रामा बाइकोलोराटा भृंग:** यह मेक्सिको से लाया गया एक विशेष भृंग है जिसे भारत में गाजरघास के नियंत्रण के लिए सफलतापूर्वक जारी किया गया है।
- **क्रियाविधि:** इस भृंग के वयस्क और लार्वा दोनों गाजर घास की पत्तियों को खाते हैं, जिससे पौधे का प्रकाश संश्लेषण बाधित होता है और अंततः पौधा मर जाता है। यह कीट गाजरघास के लिए विशिष्ट है और अन्य फसलों या देशी पौधों को नुकसान नहीं पहुँचाता।
- **प्रतिस्पर्धी वनस्पति:** कुछ तीव्र वृद्धि वाली पौधें (जैसे मेक्सिकन सूरजमुखी या चकौड़ा) गाजरघास की जगह ले सकती हैं। इन प्रतिस्पर्धी पौधों को उन क्षेत्रों में उगाना चाहिए जहाँ से गाजरघास को हटाया गया हो, ताकि मिट्टी का आवरण बना रहे और गाजरघास दोबारा न पनपे।

पुनर्वनीकरण और पुनर्वास

खरपतवार हटाए जाने के तुरंत बाद, मिट्टी को गाजर घास के बीजों के लिए खुला नहीं छोड़ना चाहिए।

- **देशी प्रजातियों का रोपण:** तुरंत देशी घास, झाड़ियों और पेड़ों को लगाना चाहिए ताकि वे मिट्टी को ढक लें और गाजरघास को पुनर्स्थापित होने का अवसर न दें। यह न केवल खरपतवार को नियंत्रित करता है, बल्कि वन्यजीवों के आवास का पुनर्वास भी करता है।

निष्कर्ष

गाजरघास (*पार्थेनियम हिस्टोफोरस*) एक पर्यावरणीय संकट है जो वन्यजीवों के आवास, स्वास्थ्य और भारत की जैव विविधता को गंभीर रूप से चुनौती दे रहा है। इसके प्रबंधन के लिए स्थायी प्रतिबद्धता और सामुदायिक भागीदारी की आवश्यकता है। वन्यजीव क्षेत्रों में, जैविक नियंत्रण और पुनर्वास के साथ भौतिक या यांत्रिक नियंत्रण पर जोर देना चाहिए। केवल एक एकीकृत, वैज्ञानिक और पर्यावरण के अनुकूल दृष्टिकोण ही गाजर घास के खतरे को कम कर सकता है और भारत के वन और वन्यजीव पारिस्थितिकी तंत्र को उनके प्राकृतिक गौरव को बहाल करने में मदद कर सकता है। यह प्रबंधन न केवल पर्यावरण की सुरक्षा है, बल्कि मानव और पशु स्वास्थ्य की रक्षा के लिए भी एक आवश्यक कदम है।



अपनी मातृभाषा बंगला में लिखकर मैं बंगबंधु तो हो गया, किन्तु भारतबंधु मैं तभी हो सकूँगा जब भारत की राष्ट्रभाषा में लिखूँगा।

- बंकिम चन्द्र चटर्जी

राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं है मेरे विचार में हिन्दी ही ऐसी भाषा है।

- लोकमान्य तिलक

घर के आंगन में जैसे तुलसी दल या सुहागन के माथे पर बिन्दी, देवता के मुकुट पर जैसे फूल वैसे ही भारत के भाल पर हिन्दी।

- गोविन्द प्रसाद श्रीवास्तव

खण्ड-ख

मधुमक्खियाँ और टिकाऊ कृषि: एक संतुलित पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण

अनुराग शर्मा¹, मीरा देवी¹, अमित विक्रम¹, आरती शुक्ला¹,
रेनू कपूर², इंद्र देव³ एवं राजेश्वर सिंह चंदेल³

¹कृषि विज्ञान केंद्र, सोलन

²क्षेत्रीय बागवानी और प्रशिक्षण केंद्र, जाछ

³डॉ. वाई एस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी सोलन

मधुमक्खियाँ कृषि फसलों की प्रमुख परागणकर्ता हैं और फसल उत्पादन से जुड़े उत्पादक परागणकर्ता नेटवर्क को मूलभूत सेवाएँ प्रदान करती हैं। वे शहद और अन्य मूल्यवान उत्पादों के उत्पादन के लिए जिम्मेदार हैं, लेकिन साथ ही कई खाद्य फसलों के परागण का कार्य भी करती हैं, जिससे फसल की उपज में सुधार और फसल की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। मधुमक्खियाँ पारिस्थितिक अखंडता के पहलुओं का समर्थन करके और रासायनिक आदानों पर कम निर्भरता के माध्यम से कृषि प्रणालियों की स्थिरता में प्रत्यक्ष योगदान देती हैं और मधुमक्खी पालन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं, ग्रामीण समुदायों और मानव कल्याण को सकारात्मक लाभ भी प्रदान करती हैं। स्थायी कृषि प्रणालियों में उनके महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद, मधुमक्खियों की आबादी वर्तमान में कीटनाशकों के उपयोग, जलवायु परिवर्तन और बीमारियों के कारण कई और गंभीर खतरों में है, और उनकी गिरावट वैश्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य के लिए एक सीधा खतरा है। यह लेख कृषि प्रणालियों में मधुमक्खियों के योगदान, पर्यावरण के लिए उनके लाभों, उनके खतरों और संरक्षण रणनीतियों का आकलन करता है, और एक संतुलित और स्थायी कृषि पारिस्थितिकी तंत्र प्राप्त करने के उनके अंतर्निहित मश्वडल पर जोर देता है।

मुख्य शब्द: मधुमक्खियाँ, परागण, सतत कृषि, जैव विविधता, मधुमक्खी पालन, फसल उत्पादकता

परिचय

मधुमक्खियाँ (*एपिस मेलिफेरा* और स्थानीय *एपिस* प्रजातियाँ) वैश्विक कृषि और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शहद उत्पादन के अलावा, उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान परागण में है, जो फसल की पैदावार, जैव विविधता और कृषि प्रणालियों के लचीलेपन को बढ़ाता है। भारत का मधुमक्खी पालन उद्योग मुख्यतः दो पालतू मधुमक्खी प्रजातियों, *एपिस मेलिफेरा* और *ए. सेराना*, के इर्द-गिर्द घूमता है, जो व्यावसायिक मधुमक्खी पालन का केंद्रबिंदु हैं। इसके अलावा, चार जंगली मधुमक्खी प्रजातियाँ भी हैं – *ए. डोर्सटा*, *ए. लेबोरियोसा* (*ए. डोर्सटा* के समानार्थी), *ए. फ्लोरिया*, और *ए.*

एंड्रेनिफॉर्मिस (*ए. फ्लोरिया* के समानार्थी) – जो शहद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा भी उत्पादित करती हैं। इनके परिवार में तीन सदस्य होते हैं। परिवार की मुखिया रानी मधुमक्खी के अतिरिक्त श्रमिक और ड्रोन मक्खियाँ भी परिवार का अभिन्न सदस्य होती हैं। मधुमक्खियों के एक मौन गृह (परिवार) में औसतन 40 से 80 हजार मधुमक्खियाँ होती हैं, जिनमें से एक रानी मधुमक्खी एवं सौ नर (ड्रोन) और शेष मादा (श्रमिक) मधुमक्खियाँ होती हैं, जो परिवार के सदस्यों की संख्या में 95 प्रतिशत से भी ज्यादा होती हैं। मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित गतिविधि है, जो एकीकृत कृषि व्यवस्था (आईएफएस) के तहत ग्रामीण क्षेत्र में किसान/भूमिहीन मजदूरों द्वारा की जा रही है। भारत में मधुमक्खी पालन क्षेत्र पिछले कुछ वर्षों में काफी विकसित हुआ है, जो शहद और अन्य मधुमक्खी उत्पादों की बढ़ती माँग के साथ-साथ कृषि में परागण की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण है। 12.26 लाख से ज्यादा मधुमक्खी कालोनियों और 10,000 पंजीकृत मधुमक्खी पालकों के साथ, भारत दुनिया के अग्रणी शहद उत्पादक देशों में से एक है। भारत विश्व स्तर पर शीर्ष पांच शहद उत्पादकों में शामिल है, जिसका वार्षिक उत्पादन 2023 में लगभग 1.25 लाख मीट्रिक टन था। भारत सालाना लगभग 70,000 मीट्रिक टन शहद का निर्यात करता है, जिससे रूपए 900-1,000 करोड़ का राजस्व प्राप्त होता है। अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब और बांग्लादेश शहद के सबसे प्रमुख निर्यातक देश हैं। एक कॉलोनी स्थापित करने की लागत ₹ 2,500 से ₹ 5,000 के बीच होती है। उचित प्रबंधन के साथ, 50 कॉलोनियों का रखरखाव करने वाले किसान शहद उत्पादन, मोम निष्कर्षण और परागण सेवाओं से सालाना ₹4-6 लाख की आय अर्जित कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन और घटती परागण आबादी के संदर्भ में, मधुमक्खी प्रबंधन को टिकाऊ कृषि में एकीकृत करना लगातार महत्वपूर्ण होता जा रहा है। कृषि सभ्यता की नींव है और यह आमतौर पर प्रकृति के शांत और परिश्रमी प्रतिनिधियों – मधुमक्खियों – पर निर्भर करती है। इन पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता; ये छोटे परागणकर्ता दुनिया भर में खाद्य प्रणालियों की उत्पादकता और स्थिरता पर जबरदस्त प्रभाव डालते हैं। एक

फूल से दूसरे फूल तक पराग स्थानांतरित करके, मधुमक्खियाँ निषेचन प्रक्रियाओं को संचालित करती हैं और फलों के सेट को निर्धारित करने, बीज निर्माण को स्थिर करने और सभी फसलों की उपज को प्रभावित करने में मदद करती हैं। मधुमक्खियाँ कुशल परागणकर्ता के रूप में कार्य करके कृषि उत्पादकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि दुनिया भर में लगभग 75-80% खाद्य फसलें पशु परागण पर निर्भर करती हैं, और भारत में 90 से अधिक प्रमुख फसलों के परागण में मधुमक्खियाँ योगदान देती हैं। सरसों में मधुमक्खी परागण से बीज की उपज में 20-25% की वृद्धि होती है, जबकि सूरजमुखी में, यह तेल की मात्रा और उपज दोनों में 30-40% की वृद्धि करता है। इसी प्रकार, सेब में मधुमक्खियों द्वारा पर-परागण से फलों के लगने और उनकी गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे उपज में 45-60% की वृद्धि होती है। मधुमक्खियों की गतिविधि से लीची को भी लाभ होता है, जिससे फलों की उपज में 15-20% की वृद्धि होती है। स्थायी कृषि में, मधुमक्खियाँ परागण रसायनों पर निर्भरता कम करने और उपज की गुणवत्ता बढ़ाने में मदद करके पर्यावरणीय अखंडता और स्थिरता का समर्थन करती हैं। हालाँकि, आधुनिक कृषि पद्धतियों, आवास विनाश, कीटनाशकों के संपर्क और जलवायु परिवर्तन के कारण, मधुमक्खी आबादी निरंतर खतरों का सामना कर रही है और पारिस्थितिक तंत्रों और खाद्य प्रणालियों की भविष्य की व्यवहार्यता के लिए चिंताएँ पैदा कर रही हैं। पारिस्थितिक वैधता और स्थायी कृषि प्रणालियों, दोनों के लिए मधुमक्खियों की भूमिका को स्वीकार करना और उसकी रक्षा करना महत्वपूर्ण है।



रानी मधुमक्खी के साथ *एपिस सेराना* कॉलोनी

मधुमक्खी-अनुकूल सतत कृषि को बढ़ावा देना

- पुष्प विविधता और फसल चक्र:** विविध फसलें, फूलों की सीमाएँ और आवरण फसलें लगाने से मधुमक्खियों के लिए निरंतर भोजन संसाधन उपलब्ध होते हैं। मधुमक्खी का पोषण पराग और मकरन्द है, जो इन्हें फूलों से प्राप्त होता है इसलिए मधुमक्खी पालकों या कृषकों को चाहिए, कि वे मधुमक्खी पालन को अपनाने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि किस माह में किस वनस्पति से नेक्टर एवं पराग बहुतायत से मिलते रहेंगे जिससे वर्ष भर बिना किसी रुकावट के

कृषि में मधुमक्खियों की भूमिका

मधुमक्खियाँ प्रकृति की छोटी शिल्पकार हैं जो कृषि और पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा देने के लिए काम करती हैं। मधुमक्खियों की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परागण करना है। सेब, बादाम, सरसों, सूरजमुखी और तिपतिया घास जैसी फसलें, जो अपनी परागण सेवाओं के लिए मूल्यवान हैं, मधुमक्खियों की गतिविधि से अधिक उपज देंगी। वे फलों के आकार, रंग, बनावट और पोषण को बढ़ाकर गुणवत्ता में भी सुधार करती हैं। मधुमक्खियाँ पर-परागण को बढ़ावा देती हैं, जिससे पौधों में आनुवंशिक विविधता बढ़ती है और इस प्रकार फसलों की कीटों, रोगों और पर्यावरणीय तनावों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। आनुवंशिक विविधता टिकाऊ कृषि प्रणालियों और इनपुट पर अत्यधिक निर्भरता के बिना कृषि लचीलापन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। मधुमक्खियाँ टिकाऊ आजीविका के विकास को भी बढ़ावा देती हैं। मधुमक्खी पालन गतिविधियों के माध्यम से, ग्रामीण समुदाय शहद, मोम और अन्य उप-उत्पादों के माध्यम से अपनी आय में वृद्धि कर पाते हैं, जिससे कृषि पद्धतियों में व्यवहार्यता और समावेशन बढ़ता है। जो किसान मधुमक्खी-अनुकूल पद्धतियों को अपनाते हैं, जैसे फूलों वाली आवरण फसलें लगाना, बाड़ लगाना और कम कीटनाशकों का उपयोग करना, वे भी भावी पीढ़ियों के लिए मिट्टी की उर्वरता और कृषि उत्पादकता को बनाए रखकर अपने खेत की स्थिरता में सुधार करते हैं।



रानी मधुमक्खी के साथ *एपिस मेलीफेरा* कॉलोनी

मधुमक्खियों का पालन किया जा सके। पराग एवं नेक्टर प्राकृतिक रूप से प्राप्त नहीं होने की अवस्था में मधुमक्खियों को चीनी के घोल के रूप में कृत्रिम भोजन दिया जाता है, जिससे मात्र मधुमक्खियाँ जीवन निर्वाह ही कर पाती हैं। सरसों, तोरिया, धनियाँ, सौंफ, नींबू, अरहर, लीची, सहजना, करौंदा, बरसीम, कटहूगीय सब्जी, यूकेलिप्टस, करंज, आंवला, मूंग, शीशम, सूरज मुखी, नीम, खैर, मेंहदी, ज्वार, बाजरा, जवांसा, कटेरी, रोहिडा, लिसोडा, अनार, खेजडी, बांसा इत्यादि वनस्पतियों में पराग व मकरन्द प्रचुर मात्रा में मिलता है।



फसल विविधता

2. **प्राकृतिक खेती और जैविक पद्धतियाँ:** जीवामृत, मल्लिचंग, बापसा और जैविक कीट नियंत्रण का उपयोग परागणकों को नुकसान पहुंचाए बिना मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाता है। प्राकृतिक या जैविक खेती ने तिलहन रेपसीड और सूरजमुखी के खिलने के बीच फूलों की कमी की अवधि में श्रमिक संतान उत्पादन और वयस्क मधुमक्खियों की संख्या, दोनों में वृद्धि पाई गयी है।
3. **एकीकृत कीट और परागण प्रबंधन:** यांत्रिक और जैविक कीट नियंत्रण को प्राथमिकता दें। फूल वाले पौधों पर कोई भी कीटनाशक और माइटनाशक, का इस्तेमाल करने से बचें। साथ ही, आस-पास के खिलते हुए पौधों, जिनमें खरपतवार भी शामिल हैं, पर कीटनाशकों के रिसाव से बचें। परागण-सुरक्षित रासायनिक विकल्पों का प्रयोग करें। जहाँ पौधे फूल रहे हों, जिनमें खरपतवार भी शामिल हैं, वहाँ कीटनाशकों या माइटनाशकों को कवकनाशकों के साथ टैंक मिक्स न करें। फूल खिलने के दौरान या जब खेत में मधुमक्खियों की गतिविधि अधिक हो, तब कवकनाशकों के साथ सहायक पदार्थ न मिलाएँ, जब तक कि उत्पाद लेबल या कीटनाशक नियमों में सहायक पदार्थ मिलाने का निर्देश न दिया गया हो। मधुमक्खियों, या इनके छत्तों वाली जगहों पर सीधे किसी भी कीटनाशक का छिड़काव न करें। यह भी सुनिश्चित करें कि मधुमक्खी के छत्तों वाली जगहों के पास होने पर एप्लिकेटर नोजल बंद कर दे या छिड़काव से पहले छत्ते या मधुमक्खियों के बक्सों को उस जगह से हटा दिया जाए।
4. **प्राकृतिक आवासों का निर्माण:** बाड़ों की पंक्तियों, जंगली फूलों की पट्टियों और घोंसले के स्थानों का रख रखाव। कई देशी मधुमक्खियाँ अकेली रहती हैं और ज़मीन, खोखले तनों या सूखी लकड़ी में घोंसला बनाती हैं। मिट्टी की दीवारों, सूखे पेड़ों और अच्छी मिट्टी जैसी प्राकृतिक विशेषताओं को संरक्षित करें, या घोंसला बनाने के लिए कृत्रिम मधुमक्खी बक्से स्थापित करें। ज़मीन पर घोंसला

बनाने वाली मधुमक्खियों की सुरक्षा के लिए जुताई कम करें।

मधुमक्खियों के स्वास्थ्य, पर्यावरणीय और आर्थिक लाभ

शहद, मोम, प्रोपोलिस, रॉयल जेली और पराग मूल्यवान उत्पाद हैं जो ग्रामीण आजीविका के साधन प्रदान करते हैं और कृषक समुदायों में उद्यमशीलता के व्यवहार को बढ़ावा देते हैं। मधुमक्खी उत्पाद जैसे मधु, रायलजेली व पराग के सेवन से मानव स्वस्थ एवं निरोगित होता है, मधु का नियमित सेवन करने से तपेदिक, अस्थमा, कब्जियत, खून की कमी, रक्तचाप की बीमारी नहीं होती है। रायल जेली का सेवन करने से ट्यूमर नहीं होता है और स्मरण शक्ति व आयु में वृद्धि होती है। मधु मिश्रित पराग का सेवन करने से प्रास्ट्रेटाइटिस की बीमारी नहीं होती है। मौनी विष से गाठिया, बताश व कैंसर की दवायें बनायी जाती हैं। बी-थैरेपी से असाध्य रोगों का निदान किया जाता है। मधुमक्खियाँ पुष्पीय पौधों के प्रजनन, जैव विविधता को बनाए रखने, पारिस्थितिकी तंत्र को स्थिर करने और जीवित रहने के लिए पुष्पीय पौधों पर निर्भर अनगिनत जीवों का पोषण करने के लिए आवश्यक हैं। जंगली पौधों का परागण मृदा अपरदन को भी रोकता है, कार्बन अवशोषण को बढ़ाता है और खाद्य जाल को मज़बूत करता है – जो पर्यावरणीय स्थिरता के महत्वपूर्ण घटक हैं। मधुमक्खियों के बिना, कई पारिस्थितिकी तंत्र शांत हो जाएँगे और उनके साथ ही रहेंगे, जिससे पारिस्थितिक विविधता कम हो जाएगी। आर्थिक दृष्टि से, मधुमक्खियाँ हर साल स्थानीय और वैश्विक कृषि अर्थव्यवस्था में अरबों का योगदान देती हैं। फसलों की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार के अलावा, मधुमक्खियाँ मधुमक्खी पालन के माध्यम से किसानों के लिए अतिरिक्त आय के स्रोत भी प्रदान करती हैं। मधुमक्खियाँ स्थिरता के सार को परिभाषित कर सकती हैं, जिसका अर्थ है जैव विविधता संरक्षण और आर्थिक विकास को जोड़कर, हमारी आवश्यकताओं को इस तरह से पूरा करना जिससे प्रकृति के संतुलन को कोई नुकसान न पहुँचे। मधुमक्खियों की सुरक्षा न केवल पर्यावरण की भलाई के लिए एक कार्य है, बल्कि यह हमारे विश्व के स्वास्थ्य और संपदों में एक दीर्घकालिक निवेश भी है।

मधुमक्खी आबादी के लिए खतरे

मधुमक्खियाँ हमारे पारिस्थितिकी तंत्र और अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं, फिर भी दुनिया भर में मधुमक्खियों की आबादी में तेजी से और चिंताजनक गिरावट आ रही है, जिसका कृषि और खाद्य सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। इसके कई कारण हैं और ये आपस में जुड़े हुए हैं – ये आधुनिक कृषि पद्धतियों, आवास विनाश और जलवायु अस्थिरता से उत्पन्न होते हैं।

कीटनाशक

रासायनिक कीटनाशकों का व्यापक उपयोग, विशेष रूप से नियोनिकोटिनोइड्स का उपयोग, मधुमक्खियों की मृत्यु और मृत्यु दर में प्रमुख योगदान कारक रहा है।

आवास विनाश

मधुमक्खियों ने अपने प्राकृतिक आवास खो दिए हैं, और जब फूलों वाले पौधे और घोंसले बनाने के संसाधन कम हो जाएंगे, तो मधुमक्खियों के पास कॉलोनियों को बनाए रखने के लिए आवश्यक पोषण स्तर को बनाए रखने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं होगा।

जलवायु परिवर्तन

उच्च तापमान, वर्षा में अप्रत्याशित परिवर्तन, तथा पुष्पीय पौधों के खिलने के पैटर्न में परिवर्तन ने मधुमक्खियों के परस्पर निर्भर जीवन चक्र को गंभीर रूप से बाधित कर दिया है।

कृषि पद्धतियाँ

मधुमक्खियों की आबादी पर गहन उत्पादन प्रणालियों, कीटनाशकों के प्रयोग और एकल-फसल कृषि के अन्य पहलुओं का भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ एक बड़े क्षेत्र में उगाए जाने वाले पौधों की किस्मों को सीमित करती हैं, और इस प्रकार मधुमक्खियों को उपलब्ध फूलों की संख्या भी कम होती है। उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से होने वाले प्रदूषण के नकारात्मक प्रभावों में से एक पौधों में पोषक तत्वों में परिवर्तन है जो रस और पराग की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। इसके अलावा, बड़े पैमाने पर मशीनीकृत खेती और रसायनों का अत्यधिक प्रयोग मूल रूप से मधुमक्खियों और उनके पर्यावरण के लिए सीधा खतरा पैदा करता है।

प्रदूषण

प्रदूषण, जिसमें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण शामिल हैं, मधुमक्खियों के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय है। भारी धातुएँ, कीटनाशक और औद्योगिक रसायन कुछ ऐसे प्रदूषक हैं जो मधुमक्खियों के भोजन स्रोतों और आवासों को प्रभावित करते हैं। मधुमक्खियाँ प्रतिरक्षा दमन से प्रभावित होती हैं; प्रदूषित वातावरण मधुमक्खियों की प्रतिरक्षा प्रणाली को कमजोर करके उन्हें बीमार बना देता है। इसके अलावा, प्रकाश प्रदूषण मधुमक्खियों के सामान्य जीवन को

प्रभावित करता है, जिसमें उनकी भोजन की तलाश और अंधेरे में चलने की क्षमता शामिल है।

रोग और परजीवी

मधुमक्खी रोग और परजीवी, जैसे कि वरोआ डिस्ट्रक्टर माइट, नोसेमा फंगस, और कई वायरल रोग, नियमित रूप से मधुमक्खी आबादी को प्रभावित कर रहे हैं। ये रोगाणु मधुमक्खियों के प्रतिरक्षा स्वास्थ्य को कमजोर करते हैं और इस प्रकार अन्य प्रकार के तनावों से निपटने की उनकी क्षमता को कमजोर करते हैं। व्यावसायिक परागण के लिए प्रबंधित मधुमक्खी कालोनियों के आवागमन से अक्सर रोगों का प्रसार सुगम होता है, जिससे विभिन्न मधुमक्खी आबादियों के बीच रोगाणुओं का स्थानांतरण होता है।

मधुमक्खियों के संरक्षण के लिए रणनीतियाँ

कृषि को बनाए रखने और पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित रखने के लिए मधुमक्खियों की रक्षा करना महत्वपूर्ण है। कुछ प्राथमिक रणनीतियों में एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) के साथ कीटनाशकों के कम उपयोग, फूलों वाली फसलों, जंगली फूलों की खेती और मधुमक्खियों के लिए साल भर रस की उपलब्धता सुनिश्चित करके मधुमक्खी-अनुकूल कृषि पद्धति को बढ़ावा देना शामिल है। आवास की क्षति और विखंडन ने मधुमक्खियों की आबादी को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। आवासों का संरक्षण यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि मधुमक्खियों को अपने पर्यावरण में आवश्यक सभी चीजें उपलब्ध हों। फसल के खेतों को जंगली फूलों की पट्टियों में बदलना, देशी घास के मैदानों का संरक्षण और वन संरक्षण जैसे उपाय मधुमक्खियों के लिए पुष्प स्रोतों और घोंसले के आवासों की उपलब्धता सुनिश्चित कर सकते हैं। शहर भी परागण के अनुकूल उद्यान और पार्क बनाकर यह भूमिका निभा सकते हैं। कृषि पद्धतियाँ मधुमक्खियों के स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। जैविक उत्पादन क्षमता का सम्मान करते हुए और नकारात्मक प्रभाव को कम करते हुए, स्थायी कृषि गतिविधियों को समर्थन और लोकप्रिय बनाने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। फसल चक्र अपनाना, फलीदार फसलें जैसे आवरण फसलें उगाना और जैविक खेती करना मिट्टी की स्थिति में सुधार लाने में काफी मददगार साबित हो सकता है, और इस प्रकार मधुमक्खियों को अधिक प्रचुर मात्रा में और विविध प्रकार का भोजन उपलब्ध हो सकता है। सरकार को प्रोत्साहन देना चाहिए और किसानों के पास जाकर उन्हें ऐसी पद्धतियों के बारे में शिक्षित करना चाहिए, जो मृदा अपरदन के विरुद्ध लड़ाई में काफी मददगार साबित होंगी। जलवायु परिवर्तन, फूलों की उपलब्धता और भोजन की तलाश में होने वाले बदलावों के कारण मधुमक्खियों की आबादी को प्रभावित करता है। इसे रोकने के लिए, वैश्विक स्तर पर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन और जलवायु परिवर्तन को कम करने के प्रयास उपयोगी हैं। नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के बढ़ते उपयोग, नई पुनर्वनीकरण परियोजनाओं के वित्तपोषण और

भूमि के ज़िम्मेदार उपयोग से मधुमक्खियों के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ बनने की संभावना है। मधुमक्खियों के संरक्षण में नागरिकों को शामिल करने के लिए, उन्हें इन जीवों द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता और उनके सामने आने वाले खतरों के बारे में शिक्षित करना आवश्यक है। लोगों को शिक्षित करने और मधुमक्खियों को बचाने के लिए उनका ध्यान और कार्य आकर्षित करने हेतु स्कूलों, समुदाय और जनसंचार माध्यमों में जागरूकता कार्यक्रम, जन हस्तक्षेप और विशिष्ट अभियान चलाए जा सकते हैं। नागरिक विज्ञान के आगे विकास का एक और दिलचस्प क्षेत्र अनुसंधान और संरक्षण उद्देश्यों के लिए नागरिकों के सुझावों का उपयोग करना है, जिसमें ऐसे कार्यक्रम शामिल हैं जो मधुमक्खियों की आबादी की स्थिति की निगरानी और मधुमक्खियों के बारे में जानकारी देने में नागरिकों को शामिल करते हैं। वैज्ञानिक रूप से सूचित मधुमक्खी पालन, वित्तपोषण और सहकारी दृष्टिकोणों में प्रशिक्षण के माध्यम से मधुमक्खी पालन विकास को मजबूत करने से उत्पादकता और ग्रामीण व्यवहार्यता में वृद्धि होगी। वनों के संरक्षण और परागण गलियारों की स्थापना के माध्यम से आवास की बहाली जंगली मधुमक्खी आबादी का समर्थन करेगी। किसानों और हितधारकों के लिए आवास, बीमारियों और जलवायु तनाव पर अनुसंधान और शिक्षा के साथ-साथ परागण-अनुकूल तरीकों को बढ़ावा देना और राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और शहद मिशन (एनबीएचएम) जैसी पहलों के लिए समर्थन आवश्यक

है। सामूहिक रूप से ये रणनीतियाँ मधुमक्खी आबादी को सफलतापूर्वक समर्थन दे सकती हैं।

निष्कर्ष

मधुमक्खियाँ कृषि और प्रकृति के बीच एक अद्वितीय भूमिका निभाती हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन, खाद्य सुरक्षा और समृद्धि के सूत्र को चुपचाप एक साथ बुनती हैं। परागणकर्ताओं के रूप में उनकी आवश्यक भूमिका जैव विविधता को बनाए रखती है, फसलों की उपज और गुणवत्ता बढ़ाती है, और लाखों किसानों और उनके परिवारों को आजीविका प्रदान करती है जो मधुमक्खी-व्युत्पन्न उत्पादन पर निर्भर हैं। दुख की बात है कि कीटनाशकों, आवास विनाश, बीमारी और जलवायु परिवर्तन से होने वाले उनके अनगिनत खतरे न केवल मधुमक्खियों को बल्कि हमारी वैश्विक खाद्य प्रणाली की स्थिरता को भी खतरे में डालते हैं। इस प्रकार, मधुमक्खियों की रक्षा करना न केवल एक नैतिक मुद्दा है, बल्कि हमारे समुदायों की खाद्य सुरक्षा और विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। एकीकृत कृषि भूमि प्रणालियों, प्राकृतिक आवास पुनर्स्थापन, पारिस्थितिक रूप से स्थायी प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने वाली प्रबंधन प्रथाओं को लागू करने के साथ-साथ कृषि और उपभोक्ता समुदायों के साथ इन मुद्दों पर शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देने के माध्यम से, हम मधुमक्खियों के लिए एक समृद्ध भविष्य सुनिश्चित करेंगे।



हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

- राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त

देश के सबसे बड़े भू-भाग में बोली जाने वाली हिंदी राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।

- नेताजी सुभाष चंद्र बोस

हिंदी सीखने का कार्य एक ऐसा त्याग है जिसे भारत के निवासियों को राष्ट्र की एकता के हित में करना चाहिए।

- श्रीमती एनी बेसेंट

पुनर्योजी कृषि : मिट्टी की गुणवत्ता बहाल करने और फसल के प्रदर्शन में सुधार का एक मार्ग

मीरा देवी¹, अनुराग शर्मा¹, अमित विक्रम¹, आरती शुक्ला¹, यूर्मिला कुमारी²,
गरिमा², इंद्र देव³ और राजेश्वर सिंह चंदेल³

¹कृषि विज्ञान केंद्र, सोलन

²बागवानी एवं वानिकी महाविद्यालय, थुनाग, मंडी, गोहर (गुधरी)

³डॉ. वाई एस परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी सोलन (हि.प्र.)

पुनर्योजी कृषि, विविध प्रथाओं, जैसे बिना जुताई, फसल विविधीकरण, आवरण फसल, कृषि-वानिकी और जैविक संशोधनों के एकीकरण द्वारा मृदा गुणवत्ता को बहाल करने और फसल प्रदर्शन में सुधार करने का एक स्थायी मार्ग प्रदान करती है। ये प्रथाएँ मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, अंतःस्यंदन, पोषक चक्रण और सूक्ष्मजीवी गतिविधि को बढ़ाती हैं, जिससे स्थिर उपज वाली लचीली फसल प्रणालियाँ विकसित होती हैं। विभिन्न भूमि उपयोग प्रणालियों के वैज्ञानिक प्रमाणों ने इनपुट निर्भरता को कम करने, कार्बन डाइऑक्साइड पृथक्करण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन को कम करने और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को मजबूत करने में इसकी भूमिका को उजागर किया है। इस प्रकार, यह दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है।

मुख्य शब्द: मुख्य आवरण फसलें, फसल विविधीकरण, पुनर्योजी कृषि, मृदा गुणवत्ता, स्थिरता

परिचय

पुनर्योजी कृषि, खेती का एक व्यापक तरीका है जो पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने का प्रयास करता है। यह मृदा पुनर्जनन, जैव विविधता को बढ़ावा देने और कार्बन भंडारण जैसी गतिविधियों को प्राथमिकता देकर ऐसा करता है। मूलतः, यह प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों और प्रकृति के साथ मिलकर लचीली और टिकाऊ कृषि पद्धतियों का निर्माण करता है। यह पद्धति उन सिद्धांतों का पालन करती है जो कृषि पद्धतियों को क्षय के बजाय पुनर्जनन की ओर ले जाते हैं। उदाहरण के लिए, यह कम जुताई, आवरण फसलें लगाने और फसलों को बदलने जैसी विधियों के माध्यम से मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाने पर केंद्रित है। ये पद्धतियाँ मृदा संरचना, उर्वरता और मृदा में सूक्ष्मजीवों की विविधता को बेहतर बनाने में मदद करती हैं। एक अन्य सिद्धांत खेतों में जैव विविधता को अधिकतम करने पर केंद्रित है। ऐसा इसलिए है क्योंकि विविध पारिस्थितिकी तंत्र कीटों, बीमारियों और पर्यावरणीय तनावों जैसी चुनौतियों से निपटने के लिए बेहतर ढंग से सुसज्जित होते हैं। इसके अतिरिक्त, पुनर्योजी कृषि, फसल प्रणालियों में पशुधन के एकीकरण को बढ़ावा देती है, मिट्टी की उर्वरता और पोषक चक्रण में सुधार के लिए चक्रीय चराई और मिश्रित खेती का उपयोग करती है। इसके अलावा, पुनर्योजी कृषि कार्बन अवशोषण को बढ़ावा देने और जलवायु परिवर्तन

को कम करने के लिए मिट्टी में साल भर जीवित जड़ों को बनाए रखने के महत्व पर जोर देती है। इन सिद्धांतों का पालन करके, पुनर्योजी कृषि न केवल कृषि उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ाती है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के बीच पर्यावरणीय स्थिरता और लचीलेपन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मिट्टी और वनस्पति में कार्बन को अवशोषित करके जलवायु परिवर्तन से निपटने में इसकी भूमिका एक महत्वपूर्ण पहलू है। कवर क्रॉपिंग और न्यूनतम जुताई जैसी विधियों के माध्यम से, पुनर्योजी कृषि क्षीण मिट्टी को पुनर्स्थापित करती है और कार्बनिक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाती है। यह प्रक्रिया वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर को प्रभावी ढंग से कम करती है, जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभाव कम होते हैं। इसके अलावा, पुनर्योजी कृषि पद्धतियाँ मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करती हैं, जल को बनाए रखती हैं और पोषक तत्वों के चक्रण को सुगम बनाती हैं। परिणामस्वरूप, इससे कृषि उत्पादकता बढ़ती है और सूखे व बाढ़ जैसी चरम मौसम की घटनाओं के प्रति लचीलापन बढ़ता है। मृदा उर्वरता में वृद्धि और बेहतर जल प्रबंधन न केवल फसलों की पैदावार बढ़ाता है, बल्कि कृत्रिम उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता भी कम करता है। रासायनिक उपयोग में यह कमी पर्यावरण प्रदूषण को कम करने और जैव विविधता को संरक्षित करने में मदद करती है। इसके अलावा, पुनर्योजी कृषि लाभकारी कीटों, पक्षियों और मृदा सूक्ष्मजीवों के लिए आवास बनाकर जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देती है। ये जीव प्राकृतिक कीट नियंत्रण और परागण सेवाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पुनर्योजी कृषि पद्धतियों को अपनाकर, किसान पर्यावरणीय समस्याओं से निपट सकते हैं और साथ ही खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन भी बढ़ा सकते हैं। यह पुनर्योजी कृषि को भविष्य के लिए टिकाऊ खेती का एक महत्वपूर्ण तत्व बनाता है।

मिट्टी की सेहत: पुनर्योजी कृषि में, मिट्टी की सेहत को बेहतर बनाने वाले तरीकों पर ध्यान दिया जाता है, जैसे जुताई कम करना, कवर क्रॉप लगाना और फसलों को बदलना। इन तरीकों से मिट्टी की बनावट, उपजाऊपन और माइक्रोबियल डाइवर्सिटी बेहतर होती है, जिससे लंबे समय तक प्रोडक्टिविटी और मजबूती बढ़ती है। रासायनिक उर्वरकों के सीमित प्रयोग तथा जीवामृत और घनजीवामृत सहित प्राकृतिक रूप से उपलब्ध पदार्थों के प्रयोग से केंचुओं की सक्रियता बढ़ जाती है। मिट्टी में कोई भी अन्य

जीवित जीव उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाने में केंचुआ। केंचुए मिट्टी में सबसे अधिक पाए जाते हैं। केंचुए मिट्टी के वातन, अंतःस्यंदन, संरचना, पोषक चक्रण, जल संचलन और पौधों



की वृद्धि को बढ़ाते हैं। केंचुए कार्बनिक पदार्थों के प्रमुख अपघटकों में से एक हैं। वे अपना पोषण उन सूक्ष्मजीवों से प्राप्त करते हैं जो कार्बनिक पदार्थों और मिट्टी की सामग्री पर रहते हैं। जब वे मिट्टी में घूमते हैं और खाते हैं, तो केंचुए नलीदार चैनल बनाते हैं। ये चैनल मिट्टी में लंबे समय तक बने रह सकते हैं। केंचुए के मल या अवशेष मिट्टी की उर्वरता बढ़ाते हैं क्योंकि उनमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटैशियम और मैग्नीशियम होते हैं। केंचुए के मल में सूक्ष्मजीव भी होते हैं, जिनकी संख्या उनकी आंतों में कार्बनिक पदार्थों के पाचन के साथ बढ़ती है। कार्बनिक पदार्थों से पोषक तत्वों का चक्रण और सूक्ष्मजीवों की वृद्धि पौधों की वृद्धि को सुगम बनाती है। केंचुओं द्वारा छोड़े गए बंधनकारी तत्वों के साथ ये अवशेष मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं और समग्र स्थिरता को बढ़ाते हैं।

कार्बन पृथक्करण (सीक्वेस्ट्रेशन)

मृदा कार्बन पृथक्करण, वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड सांद्रता को कम करने और कृषि परिदृश्यों में पारिस्थितिकी तंत्र की कार्यक्षमता को बहाल करने की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। पुनर्योजी कृषि, एक समग्र भूमि प्रबंधन दृष्टिकोण, जैविक रूप से संचालित प्रथाओं के माध्यम से मृदा कार्बनिक कार्बन को बढ़ाने के लिए एक वैज्ञानिक रूप से मान्य ढाँचा प्रदान करता है। यह विभिन्न कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में कार्बन के स्तर को बढ़ाने में आवरण फसल, संरक्षित जुताई, कम्पोस्ट अनुप्रयोग, कृषि वानिकी, चक्रीय चराई और बहु-कृषि प्रणालियों जैसी पुनर्योजी प्रथाओं की प्रभावशीलता पर वैश्विक और क्षेत्रीय साक्ष्यों का संश्लेषण करता है। कृषि भूमि में मृदा कार्बन पृथक्करण को बढ़ाने में पुनर्योजी प्रथाओं की भूमिका, अनुभवजन्य साक्ष्य, मात्रात्मक आकलन और स्थिरता के लिए सह-लाभों पर ध्यान केंद्रित करते हुए यह दीर्घकालिक परीक्षणों, मेटा-विश्लेषणों और क्षेत्रीय अध्ययनों, विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों से प्राप्त निष्कर्षों का संश्लेषण करता है। रीजेनरेटिव तरीकों का मकसद मिट्टी और पौधों के बायोमास में वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को कैप्चर और स्टोर करना है। उन्नत कार्बन पृथक्करण के माध्यम से मिट्टी में उपलब्ध कार्बनिक कार्बन को बढ़ाने से मिट्टी के सूक्ष्मजीव द्रव्यमान में वृद्धि हो सकती है। एग्रोफॉरिस्ट्री, कवर क्रॉपिंग और रोटेशनल ग्रेजिंग जैसे तरीके कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन को बढ़ावा देते हैं, जिससे जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने में मदद मिलती है और साथ ही मिट्टी की उपजाऊपन भी बेहतर होती है।

जल प्रबंधन: पुनर्योजी खेती पानी के अच्छे इस्तेमाल और बचाने के तरीकों पर जोर देती है, जिसमें मल्टिचिंग, समोच्च खेती (कंटूर फार्मिंग) और जल संचयन के तरीके शामिल हैं। ये तरीके मिट्टी की नमी बनाए रखने, कटाव कम करने और सूखे से लड़ने की ताकत बढ़ाने में मदद करते हैं। मल्टिचिंग में मिट्टी को पुआल, पत्तियों या खाद जैसी जैविक सामग्री से ढकना शामिल है। यह तकनीक वाष्पीकरण को कम करके, खरपतवारों को दबाकर और मिट्टी के तापमान को नियंत्रित करके मिट्टी की नमी बनाए रखने में मदद करती है। बेमौसमी सीज़न में कवर फ़सलें उगाने से मिट्टी का कटाव रुकता है और नमी बरकरार रखने में मदद मिलती है। ये फसलें मिट्टी की उर्वरता और संरचना में भी सुधार करती हैं।



पुनर्योजी कृषि के तरीके

बिना जुताई और कम जुताई पुनर्योजी कृषि के तरीके हैं जो जुताई के कामों की आवृत्ति को खत्म या कम करके मिट्टी की गड़बड़ी को कम करते हैं, जिससे मिट्टी की बनावट, कार्बनिक पदार्थ और फायदेमंद मिट्टी के लाभकारी सूक्ष्मजीव सुरक्षित रहते हैं। बिना जुताई वाली खेती में बिना जोती गई मिट्टी में सीधे फसलें बोना शामिल है, जबकि कम जुताई वाले तरीकों में पारंपरिक जुताई के तरीकों के विपरीत उथली और कम बार मिट्टी की गड़बड़ी शामिल होती है। मिट्टी की सतह पर फसल के अवशेषों को बनाए रखने से, ये विधियाँ मिट्टी को कटाव से बचाती हैं, पानी के रिसाव को बढ़ाती हैं, और मिट्टी के संघनन को कम करती हैं। इसके अलावा, बिना जुताई और कम जुताई वाली प्रणालियाँ मिट्टी के जैविक कार्बन के स्तर को बढ़ाकर, जलवायु परिवर्तन को कम करके, और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाकर कार्बन निक्षेपण में योगदान करती हैं। ये प्रथाएँ किसानों के समय और ऊर्जा की भी बचत करती हैं जबकि जुताई के कार्यों से जुड़े ईंधन की खपत और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती हैं। इसके अलावा, बिना जुताई और कम जुताई की तकनीकें मिट्टी के जीवों के लिए आवास प्रदान करके और पारंपरिक जुताई प्रथाओं से जुड़े आवास विनाश को कम करके जैव विविधता को बढ़ावा देती हैं।

कवर क्रॉपिंग, फसल चक्र (क्रॉप रोटेशन) और फसल विविधीकरण रणनीतियाँ

कवर क्रॉपिंग और क्रॉप रोटेशन टिकाऊ खेती में ज़रूरी तकनीकें हैं जो मृदा स्वास्थ्य, उपजाऊपन और कीट प्रबंधन को बेहतर बनाती हैं, साथ ही रासायनिक उर्वरक पर निर्भरता कम करती हैं। कवर क्रॉपिंग में खाली समय में या कैश क्रॉप्स के साथ फलियाँ या घास जैसी नॉन-कैश क्रॉप्स लगाना शामिल है। इससे मिट्टी को कटाव से बचाने, खरपतवार को दबाने और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने में

मदद मिलती है। फसल विविधीकरण मृदा जैव विविधता को बढ़ाकर, पोषक तत्वों के चक्रण में सुधार करके और कीटों एवं रोगों के दबाव को कम करके मृदा स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। विभिन्न फसलों की जड़ों की संरचना और पोषक तत्वों की आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं, जो मृदा पोषक तत्वों के अधिक संतुलित उपयोग को बढ़ावा देती हैं और क्षय को रोकती हैं। गहरी जड़ों वाली फसलें मृदा परतों से पोषक तत्वों को सतह पर ला सकती हैं, जबकि फसल विविधीकरण में फलियों को शामिल करने से मृदा स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार होता है क्योंकि मृदा जीवाणुओं के साथ सहजीवी संबंधों के माध्यम से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने की उनकी अद्वितीय क्षमता होती

है। यह प्राकृतिक नाइट्रोजन संवर्धन कृत्रिम उर्वरकों की आवश्यकता को समाप्त करता है, जिससे मृदा की उर्वरता में स्थायी रूप से सुधार होता है। इसके अतिरिक्त, फलीदार पौधों की जड़ प्रणाली मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ का योगदान करती है, जिससे इसकी संरचना, जल धारण क्षमता और सूक्ष्मजीवी गतिविधि में वृद्धि होती है। मिश्रित फसल प्रणालियों में, फलियाँ पोषक तत्वों की गतिशीलता को संतुलित करने, अन्य फसलों की वृद्धि को सहारा देने और खरपतवारों को नियंत्रित करने में मदद करती हैं। मिट्टी की थकावट को रोककर और एक विविध सूक्ष्मजीवी पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देकर, फलीदार पौधों पर आधारित विविधीकरण दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता की आधारशिला है।

विभिन्न सब्जी फसलें (प्राकृतिक खेती के तहत शिमला मिर्च, फूलगोभी और मटर)

बहुस्तरीय फसल प्रणाली और अंतर-फसल



बहुस्तरीय फसल प्रणाली कई लाभ प्रदान करती है, जिनमें कम कृषि लागत और पूरे वर्ष स्थिर आय शामिल है। यह प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उत्पादन प्रदान करती है, जिससे भूमि, जल और संसाधनों का अनुकूलन होता है। यह प्रणाली जलवायु परिवर्तन से फसल क्षति के जोखिम को भी कम करती है, मिट्टी की विशेषताओं में सुधार करती है और मिट्टी की नमी धारण क्षमता को बढ़ाती है, जिससे पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि होती है। पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए, यह प्रणाली जल वाष्पीकरण को कम करती है, जिससे 70 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। इसके अतिरिक्त, अधिक मित्र कीटों की उपस्थिति कीटों और रोगों के प्रभाव को कम करती है। चूँकि भूमि पूरी तरह से फसलों से आच्छादित होती है, इसलिए खरपतवार की वृद्धि कम हो जाती है, जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। मिश्रित फसल प्रणाली में शामिल फसलें स्थानीय पारिस्थितिक और जलवायु प्रणाली के साथ स्वाभाविक रूप से तालमेल में होती हैं। विभिन्न फसलें प्रतिस्पर्धी होने के बजाय एक-दूसरे की सहायक होती हैं क्योंकि फलियों की लताएँ अनाज के पौधों के तनों को प्राकृतिक आधार और नाइट्रोजन की पूर्ति के रूप में उपयोग करती हैं, जबकि अनाज की जड़ें मिट्टी को मजबूती से पकड़ती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव रुकता है। विविध जड़ प्रणाली मिट्टी को मजबूती से और अधिक कुशलता से पकड़ती है, साथ ही मिट्टी के कटाव और जल हानि को रोकती है और मिट्टी के पोषक तत्वों की गुणवत्ता को बढ़ाकर मिट्टी के कणों की जल धारण क्षमता को बनाए रखती है। इन पारंपरिक फसल प्रणालियों में, एक साथ कई फसलों की खेती न केवल कीटों से होने वाले नुकसान को

रोकती है, बल्कि खरपतवार नियंत्रण में भी प्रभावी साबित होती है। अंतर-फसल कई लाभ प्रदान करती है, जिसमें लाभ में वृद्धि भी शामिल है, क्योंकि द्वितीयक फसलें प्राथमिक फसल के विफल होने पर भी उच्च उपज और आय की गारंटी प्रदान कर सकती हैं। यह पंक्तियों के बीच विभिन्न प्रजातियों को रोपकर, अप्रयुक्त मिट्टी के स्थान को कम करके, एकल-फसल की तुलना में अधिक कुशल भूमि उपयोग सुनिश्चित करती है। अंतर-फसल कीटों को रोककर, लाभकारी कीटों को आकर्षित करके और अत्यधिक धूप या हवा से छाया प्रदान करके नकदी फसलों की रक्षा भी करती है, जिससे रासायनिक कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है और लागत कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, गली अंतर-फसल में पौधों की जड़ें मृदा अपरदन और पपड़ी बनने से रोकने में मदद करती हैं। फलीदार पौधे मृदा में नाइट्रोजन का योगदान करते हैं और मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाते हैं। यह विधि जल और सौर ऊर्जा जैसे प्राकृतिक संसाधनों के अधिक कुशल उपयोग की भी अनुमति देती है, जिससे द्वितीयक फसलों को लाभ होता है। खरपतवार प्रबंधन में सुधार होता है क्योंकि लाभकारी पौधे पंक्तियों के बीच के स्थान पर कब्जा कर लेते हैं, और कृषि प्रजातियों की बढ़ी हुई विविधता से समग्र जैव विविधता और पारिस्थितिक स्थिरता में वृद्धि होती है।

समग्र प्रबंधन: पुनर्योजी कृषि एक समग्र प्रबंधन तरीका अपनाती है जो पारिस्थितिक, सामाजिक और आर्थिक कारक पर विचार करती है। यह परिदृश्य को फिर से बनाने, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ बढ़ाने और समुदाय की भलाई में बढ़ावा देने को प्राथमिकता देती है।

पारिस्थितिकी तंत्र लचीलापन और कीट प्रबंधन के लिए जैव विविधता बढ़ाना

जैव विविधता बढ़ाना, कृषि प्रणाली में पारिस्थितिकी तंत्र, लचीलापन और सर्वोत्तम कीट प्रबंधन को बढ़ावा देने के लिए एक मुख्य रणनीति है। अलग-अलग तरह के पारिस्थितिकी तंत्र, अलग-अलग प्रजातियों की परस्पर क्रिया और पारिस्थितिक प्रक्रिया के कारण, पर्यावरणीय तनाव और डिस्टर्बेंस, जिसमें कीट का प्रकोप भी शामिल है, के लिए स्वाभाविक रूप से ज्यादा लचकदार होते हैं। फसलों में विविधता लाकर, कवर क्रॉपिंग लागू करके और नॉन-क्रॉप पेड़-पौधों को शामिल करके, किसान फायदेमंद कीड़ों, पक्षियों और कीट के दूसरे नेचुरल शिकारियों के लिए रहने की जगह बना सकते हैं। इससे जैविक नियंत्रण को बढ़ावा मिलता है, जिससे कीड़ों को स्वाभाविक रूप से प्रबंधन करने में मदद मिलती है।

कृषि वानिकी और वन-पशुपालन प्रणाली

कृषि वानिकी और वन-पशुपालन प्रणाली पेड़ों और झाड़ियों को खेती की फसलों या जानवरों के साथ जोड़ते हैं, जिससे कई पर्यावरण और आर्थिक फायदे मिलते हैं। कृषि वानिकी में एक ही ज़मीन पर पेड़ों और फसलों को जानबूझकर जोड़ना शामिल है, जिससे कई उत्पाद और सेवाएँ मिलती हैं, जैसे लकड़ी, फल, मेवे, और नाइट्रोजन स्थिरीकरण और कार्बनिक पदार्थ जमा होने से मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बेहतर होती है। वन-पशुपालन प्रणाली पेड़ों को जानवरों के चरने के साथ जोड़ते हैं, जिससे जानवरों को छाया, रहने की जगह और चारा मिलता है, साथ ही कार्बन भी इकट्ठा होता है और मिट्टी का कटाव कम होता है। ये सिस्टम जंगली जानवरों के लिए रहने की जगह देकर और अलग-अलग प्रजातियों के बीच पारिस्थितिक संपर्क को बढ़ावा देकर जैव विविधता को बढ़ाते हैं।

पुनर्योजी कृषि के पर्यावरणीय लाभ

कार्बन पृथक्करण और जलवायु परिवर्तन शमन कार्बन पृथक्करण जलवायु परिवर्तन से निपटने में महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड को पकड़कर जंगलों, मिट्टी और महासागरों जैसे विभिन्न जलाशयों में संग्रहित करना शामिल है। वनीकरण और पुनर्वनीकरण जैसे प्रयास वन क्षेत्र का विस्तार करके और क्षरित पारिस्थितिकी प्रणालियों को पुनर्जीवित करके कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देते हैं। कृषि वानिकी, संरक्षण कृषि और आर्द्रभूमि पुनरुद्धार जैसी सतत भूमि प्रबंधन प्रथाएँ मिट्टी में कार्बन भंडारण को बढ़ाती हैं और कृषि गतिविधियों से उत्पन्न ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करती हैं। मैंग्रोव, पीटलैंड और घास के मैदान जैसे प्राकृतिक पारिस्थितिकी प्रणालियों का संरक्षण और पुनरुद्धार कार्बन पृथक्करण और जलवायु परिवर्तन को कम करने के प्रयासों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। कार्बन पृथक्करण दरों को बढ़ाकर, ये उपाय मानव-जनित कार्बन उत्सर्जन का प्रतिकार करने, वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर को स्थिर करने और वैश्विक पारिस्थितिकी प्रणालियों और मानव समाजों पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करने में सहायता करते हैं।

बेहतर मृदा संरचना और जल धारण क्षमता

बेहतर मृदा संरचना और जल धारण क्षमता टिकाऊ कृषि के लिए आवश्यक हैं, जिससे फसल की पैदावार में वृद्धि, कटाव में कमी और सूखे के प्रति बेहतर लचीलापन जैसे कई लाभ मिलते हैं। कवर क्रॉपिंग, कम जुताई और जैविक संशोधन जैसी प्रथाएँ मृदा एकत्रीकरण को बढ़ावा देती हैं, जिससे स्थिर मृदा समुच्चय बनते हैं जो मृदा संरचना और छिद्रण में सुधार करते हैं। ये बेहतर मृदा समुच्चय बेहतर जल घुसपैठ और भंडारण की अनुमति देते हैं, जिससे सतही अपवाह और मृदा कटाव कम होता है। मिट्टी में जैविक पदार्थ का संचय स्पंज की तरह काम करके जल धारण क्षमता को बढ़ाता है, जो शुष्क अवधि के दौरान पौधों के अवशोषण के लिए नमी को रोक रखता है। इसके अतिरिक्त, मृदा कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति मृदा सूक्ष्मजीवों के विकास को बढ़ावा देती है।

आर्थिक अवसर कम लागत और बढ़ी हुई दक्षता के माध्यम से लागत बचत

कम लागत और बढ़ी हुई दक्षता के माध्यम से लागत बचत, टिकाऊ कृषि पद्धतियों के प्रमुख लाभ हैं। कृत्रिम उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई जल पर निर्भरता कम करके, किसान फसल की पैदावार को बनाए रखते हुए या यहाँ तक कि उसे बढ़ाते हुए उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी ला सकते हैं। कवर क्रॉपिंग, फसल चक्र और एकीकृत कीट प्रबंधन जैसी तकनीकें मिट्टी की उर्वरता में सुधार, कीटों का प्रबंधन और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य को बढ़ावा देकर रासायनिक इनपुट की आवश्यकता को कम करती हैं।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर, टिकाऊ कृषि, कृषि प्रणालियों की दीर्घकालिक व्यवहार्यता को बढ़ावा देते हुए, पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने का एक मार्ग प्रदान करती है। मृदा स्वास्थ्य को बेहतर बनाने, जल संसाधनों का संरक्षण करने और जैव विविधता को बढ़ावा देने वाली प्रथाओं को अपनाकर, किसान जलवायु परिवर्तन के प्रति आपसी लचीलापन बढ़ा सकते हैं, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम कर सकते हैं और पारिस्थितिक तंत्रों की रक्षा कर सकते हैं। हालाँकि, टिकाऊ कृषि में परिवर्तन के लिए प्रारंभिक निवेश लागत, बाजारों तक सीमित पहुँच और प्रमाणन चुनौतियों जैसी बाधाओं को दूर करना आवश्यक है। छोटे पैमाने के उत्पादकों को तकनीकी सहायता, वित्तीय सहायता और बाजार पहुँच प्रदान करने के प्रयास, टिकाऊ प्रथाओं को व्यापक रूप से अपनाने को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, टिकाऊ भूमि प्रबंधन को प्रोत्साहित करने और पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं को मान्यता देने वाली नीतियाँ लचीली और पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणालियों की ओर बदलाव को तेज़ कर सकती हैं। अंततः, स्थिरता के सिद्धांतों को अपनाकर और विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा देकर, हम एक अधिक मज़बूत खाद्य प्रणाली का निर्माण कर सकते हैं जो हमारे ग्रह के स्वास्थ्य को संरक्षित करते हुए वर्तमान और भावी पीढ़ियों की ज़रूरतों को पूरा करे।



सीताफल की कृषि कार्यमाला

प्रमोद कुमार गुप्ता¹, योगिता घरडे² एवं अनिष्का गुप्ता¹

¹जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

सीताफल (शरीफा) अत्यंत पौष्टिक तथा स्वादिष्ट फल है। इसे गरीबों का फल भी कहा जाता है। इसका उत्पत्ति स्थल उष्ण अमरीका माना जाता है। अमरिका में इसका नामकरण इसके स्वाद के अनुरूप “शुगर एप्पल” दिया गया है। सीताफल के नियमित उद्यान कम हैं। यह मध्यप्रदेश में जंगली रूप में सर्वत्र पाया जाता है। अतः इसके विकास की काफी अच्छी संभावनायें हैं। मानक किस्मों का अभाव है, अतः उन्नतशील किस्मों का विकास चयन विधि द्वारा किया जाना अपेक्षित है। यह मध्यप्रदेश के अलावा आन्ध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, असम राज्यों के जंगलों में बहुतायत से उपलब्ध है। यह फल दुनिया के सभी उष्ण तथा उपोष्ण देशों में जहाँ पाले का प्रकोप नहीं होता है, पैदा किया जाता है।



सीताफल मुख्यतः ताजे फल के रूप में खाने के काम आता है। परन्तु फल में बीज अधिक संख्या में होने के कारण खाने में अरुचि पैदा करता है। साथ ही फल पकने के बाद शीघ्र ही खराब होने लगता है। इसका गूदा दूध में मिला कर पेय के रूप में उपयोग किया जाता है। गूदे से आइस्क्रीम भी बनाई जाती है तथा इसे कुछ समय के लिये जैम व जेली के रूप में भी रखा जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश में फलों को भून कर खाते हैं। फल में शर्करा, कैल्शियम, फॉस्फोरस तथा विटामिन “बी” समूह अधिकता से पाया जाता है। इसके फलों में 1.6 प्रतिशत प्रोटीन, 0.3 प्रतिशत वसा, 2.4 प्रतिशत रेशे के अतिरिक्त 24.2 प्रतिशत अन्य कार्बोहाइड्रेट्स पाये जाते हैं। इसका 100 ग्राम भोज्य पदार्थ, 114 कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। फल मीठा, स्वादिष्ट, श्रेष्ठ बलवर्धक, रक्तवर्धक, शीतलता दायक, दाहशामक, पित्तरोधक, वमनरोधी तथा हृदय के लिये औषधि है। इसके बीज प्राप्त तेल का उपयोग साबुन तथा रंग उद्योग में होता है।

सीताफल का वृक्ष पर्णपाती सहनशील 5-6 मी. ऊँचाई होता है। पौधे लगाने के चार से पाँच वर्ष में यह फलने लगते हैं पूर्ण विकसित वृक्ष से

70-90 फल प्रति वृक्ष प्राप्त होते हैं। जो नवम्बर, दिसम्बर एवं जनवरी में प्राप्त होते हैं। फलों का औसत भार 150 ग्राम से 250 ग्राम तक होता है। औसत उपज 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक हो सकती है। ऐसे स्थानों में जहाँ पानी की कमी है और भूमि कम उपजाऊ तथा अनुपयोगी है, इस फल को लगाया जा सकता है। उन्नतशील किस्मों के प्रसार की मध्यप्रदेश में प्राथमिक आवश्यकता है।

जलवायु- शरीफा का पौधा काफी सहिष्णु (कटोर) होता है, और शुष्क जलवायु में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके पौधों पर पाले का भी असर कम पड़ता है। अधिक ठंडे मौसम में फल कड़े हो जाते हैं, तथा पकते नहीं हैं। फूल आने के समय शुष्क मौसम होना आवश्यक होता है परन्तु 40 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने पर फूल झड़ने लगते हैं। वर्षा ऋतु आने के साथ फल लगने प्रारंभ हो जाते हैं। सीताफल हेतु 50-75 से.मी. वार्षिक औसत वर्षा उचित मानी जाती है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी- मृदा, उद्यान का आधार होता है। सामान्यतः जीवांशयुक्त बलुई, दोमट, पथरीली चट्टानी भूमि जहाँ पानी का निकास अच्छा होता है, सीताफल अच्छी तरह से होते हैं एवं फलन भी अच्छा होता है। भूमि का पी.एच. मान 5.5 से 6.5 बीच उत्तम माना जाता है। भूमि की एक, दो जुताई मिट्टी पलटाने वाले हल से कर के मृदा को भुरभुरी तथा खरपतवार रहित कर लें।

गड्ढे तैयार करना- उद्यान लगाने से 2 महीने पहले 50 X 50 X 50 से.मी. आकार के गड्ढे 4.5 से 5.0 मीटर की दूरी पर खोद लें। एक महीने तक गड्ढे खुदे रहने के बाद 10-15 किलो पकी हुई गोबर की खाद तथा आवश्यकतानुसार 250 ग्राम सुपर फास्फेट तथा 50 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश मिट्टी में मिला दें। दीमक के बचाव के लिये लिन्डेन की 100 ग्राम मात्रा प्रति गड्ढा मिलायें। गड्ढे की खुदाई के समय 25 से.मी. की गहराई तक की मिट्टी एक तरफ तथा निचली 25 से.मी. गहराई मिट्टी दूसरी तरफ डालें तथा भरते समय ऊपर की मिट्टी नीचे तथा नीचे वाली मिट्टी के साथ खाद मिला कर ऊपर भर दें।

उपयुक्त जातियाँ- सीताफल की कुछ उत्तम जातियाँ निम्नानुसार हैं:

अर्का सहान- यह एक संकर किस्म है जिसे भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर से विकसित किया गया है। यह किस्म अपने मीठे स्वाद, सफेद गूदे, उन्नत भण्डार क्षमता व कम बीजों (9 ग्राम/100 ग्राम फल भार) के कारण पहचानी जाती है। इसमें शर्करा 22.8 प्रतिशत, प्रोटीन 2.49 प्रतिशत, फॉस्फोरस 42.29 मिलीग्राम, कैल्शियम 225 मिलीग्राम पाया जाता है। जबकि सीताफल की अन्य किस्मों में प्रोटीन 1.33 प्रतिशत फॉस्फोरस 17.05 मि.ग्रा. व कैल्शियम 159 मि.ग्राम पाया जाता है।

लाल सीता फल- इस किस्म के फल हल्के गुलाबी रंग के एवं आकर्षक होते हैं। फलों में बीजों की संख्या अधिक होती है तथा औसतन प्रति पेड़ प्रति वर्ष 40-50 फल आते हैं। फलों में 30.5 प्रतिशत गुदा, कुल विलेय ठोस (कुल घुलनशील पदार्थ) 22.3 प्रतिशत तथा अम्लता 0.24 प्रतिशत होती है।

मैमथ- फल गोलाकार, आँखे बड़ी तथा गोलाकार होती हैं। फलों का स्वाद अच्छा होता है। प्रति वृक्ष 60-80 फल प्राप्त होते हैं। फल की फाँक गोलाई लिये काफी चौड़ी होती है। फलों में 44.8 प्रतिशत गुदा, कुल विलेय ठोस 20 प्रतिशत तथा अम्लता 0.96 प्रतिशत होती है।

बालानगर- फलों का औसतन भार 137 ग्राम और औसत उपज 5 से 7 कि.ग्राम प्रति वृक्ष होती है।

बारबाडोज सीडलिंग- फलों का भार 145 ग्राम तक होता है, औसत उपज 3.5 से 4.5 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष होती है।

ब्रिटिश ग्वार्डना- फलों का औसत भार लगभग 150 ग्राम होता है एवं औसत उपज लगभग 4-5 किलो ग्राम प्रति वृक्ष होती है।

बीज की मात्रा- इसकी सफल खेती हेतु औसतन 900 से 1200 बीज प्रति हेक्टेयर बोये जाते हैं।

प्रवर्धन- भारतवर्ष में सीताफल के पौधे मुख्यतः बीज द्वारा तैयार किये जाते हैं किन्तु अच्छी किस्मों की शुद्धता बनाये रखने, आसानी के साथ उनका तेजी से विकास करने तथा शीघ्र फसल लेने के लिये आवश्यक है कि वानस्पतिक विधि से तैयार किये हुये पौधे ही लगायें।

पौधा खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातें

- हमेशा कलमी पौधे ही लगायें, जिसे किसी विश्वसनीय एवं प्रमाणित नर्सरी से खरीदें।
- रोपण हेतु स्वस्थ, कीट एवं बीमारियों से मुक्त पौधे का प्रयोग करें।
- पौधों की जड़ें तथा मिट्टी की पिण्डी ठीक हो, यह जाँच लें जिससे आसानी से पौधा लगाया जा सके।
- पौधा ओजस्वी हो, एक तने वाले सीधे तथा कम ऊँचाई वाले फँले हुए हों।

पौधों की रोपाई एवं देखभाल

- पौधों को पौधशाला (नर्सरी) से रोपने की जगह पर लायें।

- प्रत्येक गड्ढे के पास में एक पौधा रखते जायें।
- पॉलीथिन की थैली या पिण्ड के आकार एवं माप के अनुसार ही गड्ढे में जगह खाली रखें।
- मिट्टी के पिण्ड के बाहर लगी पुआल या घास को हटा दें। यदि पौधे पॉलीथिन की थैली में ऊगाये तो चाकू से ऊपर से नीचे तक चीर दें। इसके बाद पौधों को थैली से बाहर मिट्टी के पिण्ड सहित निकालें। पॉलीथिन की थैली को पूरी तरह अलग कर दें।
- पौधों को मिट्टी के पिण्ड के साथ आधे भरे हुए गड्ढे के बीचों-बीच रखें। अब इसके चारों तरफ मिट्टी डालें और पैर से अच्छी तरह दबा दें।
- पौध रोपण हमेशा शाम के समय करें।
- पौधे जुलाई-अगस्त तथा फरवरी-मार्च में लगायें।

नये पौधे लगाने के बाद बाँस की सोंटी से सहारा दें। रोगी व झुकी हुई टहनी को सावधानी से काटते रहें। पौधा रोपने के बाद 10 से 15 दिन बाद पौधों के चारों ओर आधे मीटर दूर तक के क्षेत्र में निराई करके घास आदि उखाड़ दें। रोपे हुए पौधों के आस-पास की मिट्टी को गँती से थोड़ा-थोड़ा खोदकर ढीला करें। इससे बरसात का अधिक से अधिक पानी गड्ढे में उतरेगा। कोई बेल पौधे पर चढ़ रही हो तो उसे काट दें। यदि कोई पौधा मर गया हो तो उसे निकालकर दूसरा पौधा लगा दें। पौधे लगाने के एक दो वर्ष तक मूलवृत्त पर आने वाले फुटाव (छोटी शाखायें) को तोड़ते रहें, लगाए गए पौधों को जानवरों द्वारा चरे जाने से बचायें। यदि रोपे गये पौधों को दीमक से नुकसान हो रहा हो तो तुरंत जरूरी उपाय करें। इसके लिए 50 मिली लीटर क्लोरोपायरीफॉस दवा को 15 लीटर पानी में घोल दें। अब इस घोल को प्रत्येक पौधे की जड़ के पास मिट्टी में छोटा सा छेद बना कर कीटनाशक डालें। लगभग 25 मिली लीटर घोल प्रति पौधे की दर से डालें। घोल डालने के बाद छेद को मिट्टी से ढकें। जिससे घोल का वाष्पीकरण न हो। जब भी पौधों में दीमक का प्रकोप देखें, ऊपर बताये गए ढंग से उपचार करें।

खाद एवं उर्वरक:

सीताफल को अधिकांशतया कमजोर मिट्टी या अनु उपजाऊ भूमि पर लगाते हैं, जहाँ खाद व उर्वरकों का उपयोग नहीं किया जाता है। अतः अच्छे फल एवं अधिक उत्पादन के लिये आवश्यक खाद एवं उर्वरकों की मात्रा समय-समय पर दें।

पौधे की आयु	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)	अमोनियम सल्फेट (ग्राम)	सिंगल सुपर फास्फेट (ग्राम)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
पौधा लगाते समय	10	50	100	25
1-3 वर्ष	20	100	200	40
4-7 वर्ष	20	150	300	75
8 वर्ष या अधिक	20	200	400	100

खाद एवं उर्वरक सामान्य नियमों के अनुसार दें। इन्हें मानसून के आने के समय बगीचों में डालना लाभप्रद होता है। इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतु के प्रारंभ में सनई, मूँग या उड़द जैसी फसल बोकर तथा फूल आने के थोड़ा पहले इसे मिट्टी में जोत कर मिलाने से काफी लाभ होता है।

सिंचाई

पौधा लगाने के तुरंत बाद सिंचाई करें। सीताफल का पौधा सूखे के प्रति सहनशील है और अच्छी फसल उत्पादित कर सकता है क्योंकि फल बनने और बढ़ने के लिये पानी की ज्यादा आवश्यकता पड़ती है और यह अवस्था वर्षाकाल के समय आती है। जब वातावरण में तथा मृदा में नमी अच्छी रहती है। सीताफल में 2 से 3 सिंचाई अवश्य करें, विशेषकर वर्षा ऋतु के प्रारंभ होने के पूर्व, जिससे फल धारण करने की क्षमता बढ़ती है और एक से दो सिंचाई, वर्षा उपरान्त करने से फल का आकार अच्छा बनता है। गर्मी में सप्ताह में एक बार व ठण्ड में 15-20 दिन में एक बार पानी देने से पैदावार व पेड़ की वृद्धि ठीक रहती है। बीजू पौधे 3-4 वर्ष में फल देने लगते हैं अतः फलन के समय सितम्बर से नवम्बर के बीच एक बार सिंचाई करें। फल तोड़ने से पहले सिंचाई बंद कर दें। फूल खिलते समय सिंचाई नहीं करें।

अन्तर्वर्तीय फसलें

प्रारंभ के 4-5 वर्षों तक पौधों की बढ़वार धीरे-धीरे होती है और मुख्य पौधों से कोई खास पैदावार नहीं होती है। इस समय अंतः फसल (कम अवधि की अन्य फसल, जो मुख्य फसल के विकास के अनुकूल हो) उगायें। इससे किसान को अतिरिक्त आय मिलेगी एवं साथ ही साथ मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ेगी और कटाव कम होगा। अन्तर्वर्तीय फसलों के कारण खरपतवारों में भी कमी आयेगी। अतः कतारों के नीचे खाली जमीन में सब्जियों व दलहनी फसलें जैसे मटर, बरबटी, ग्वारफली, मेथी एवं धनिया, भिंडी, टमाटर, मिर्च, फूल गोभी, प्याज, मूँगफली, छोटी धान्य फसलें उगा कर अतिरिक्त आय प्राप्त करें। अन्तर्वर्तीय फसलों के रूप में मूँगफली, छोटे धान्य तथा अलसी को वर्षा ऋतु में तथा मटर तिलहन व चना को शरद ऋतु में उगायें एवं अतिरिक्त आय प्राप्त करें। बाग जब फलने लगें तब अन्तर्वर्तीय फसलें बंद कर दें।



सघाई एवं छँटाई: सघाई आवश्यकतानुसार एक निश्चित रूप प्रदान करने के लिये आवश्यक है। समय-समय पर सूखी टहनियों को काट दें एवं फल तुड़ाई पश्चात् अनावश्यक रूप से बढ़ी हुई शाखाओं की पेड़ को आकार देने के लिये हल्की छँटाई करें।



हस्त परागण: सीताफल के पुष्प अनाकर्षक होते हैं एवं इनमें मधु की मात्रा भी कम होती है जिससे कीट परागण की संभावना बेहद कम होती है। परागणों के समूह में न होने के कारण वायुपरागण की सफलता भी सीमित होती है। इसलिए प्राकृतिक परागण के स्थान पर कृत्रिम हस्त परागण से बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं।



फसल सुधार के लिये हाथ द्वारा परागण में काफी सफलता मिलती है। अनुसंधान से यह सिद्ध हुआ है कि हाथ से परागण करने पर 44.4-60 प्रतिशत फूलों पर फल लगते हैं जबकि प्राकृतिक दशा में छोड़ देने पर केवल 1.3 से 3.8 प्रतिशत फूलों में ही फल आते हैं। इसके लिए एक प्लास्टिक के कप में सीताफल के नव विकसित एकदिन पहले के खिले फूल जिनकी पंखुड़ियाँ सूखना शुरू हो गयी हों, से परागकरण इकट्ठा कर लें। पराग कण को इकट्ठा करने के लिए फूल को हिला कर या ऊंगलियों के बीच में रगड़ कर इकट्ठा करें। यह कार्य सुबह 6.00 से 7.00 बजे के बीच करें। तत्पश्चात् एक पेन्टिंग ब्रश (2 या 3 नम्बर) लेकर उसको परागकणयुक्त कप में डाल कर परागकण की क्रिया करें। परागण का कार्य करने के लिये सुबह 9.30 बजे के पहले का समय उत्तम माना गया है। सुविधा के लिए परागकणयुक्त कप को शर्ट की जेब में रखें और फिर ब्रश से परागण की क्रिया करें। फूल की पंखुड़ियों को एक हाथ की सहायता से दूर करें ताकि स्त्रीकेशर पर दूसरे हाथ से सरलता से परागकण छिड़के जा सकें। यह ध्यान रखें कि जिस फूल के स्त्रीकेशर पर परागकरण

स्थापित करना है वह अधखुला हो या कुछ समय में खुलने वाला हो। इस विधि में विशेष सावधानी यह रखें कि जब अधिकतम पुष्प विकसित हों तभी परागकरण स्थापित करें। ऐसा करने पर फलों के बनने की अधिकतम संभावना रहती है।

नींदा नियंत्रण: बगीचे की घास एवं नींदा की समय-समय पर सफाई करते रहें। सितम्बर में एक बार जुताई करें जिससे खरपतवार एवं घास खत्म हो जायेगी तथा असिंचित क्षेत्रों में इस क्रिया द्वारा खेत में नमी संरक्षित की जा सकेगी।

कीट नियंत्रण: कीट एवं रोगों का प्रकोप उत्पादन, फल की गुणवत्ता और लाभ में कमी लाता है। यदि किसान कीट एवं रोग प्रबंधन का सही ज्ञान रखें, तो वे अपने बागों को सुरक्षित रखते हुए उत्पादन और आय दोनों बढ़ा सकते हैं।

कस्टर्ड सेब के सामान्य कीट

1. मिलीबग

लक्षण: पत्तियों तनों और फलों पर सफेद रूई जैसे गुच्छे दिखाई देते हैं। पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती हैं। फल विकृत हो जाते हैं।

हानि: ये कीट पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देते हैं तथा हनीड्यू स्रावित करते हैं, जिससे कालिखी फफूंद का प्रकोप बढ़ जाता है।

प्रबंधन:

जैविक नियंत्रण: लेडीबर्ड बीटल और लेसविंग्स का प्रक्षेपण करें।

सांस्कृतिक नियंत्रण: प्रभावित पौधों के हिस्सों को काटकर नष्ट करें। अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरकों के उपयोग से बचें।

रासायनिक नियंत्रण: नीम का तेल (2%) या इमिडाक्लोप्रिड जैसे कीटनाशकों का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करें।



3. स्केल कीट पिडियोटस स्पी., कोकस स्पी.

लक्षण: पत्तियों तनों एवं फलों पर कठोर या मुलायम स्केल दिखाई देते हैं। पत्तियाँ पीली होकर पौधा कमजोर हो जाता है।



विशेष अनुशंसा: मिलीबग नियंत्रण हेतु ब्यूबेरिया बेसियाना जैविक उत्पाद का उपयोग करें।



2. फल छेदक (एनोना सीड बोरर)

लक्षण: सूण्डियाँ फलों में छेद कर गूदा व बीज खाती हैं, जिससे फल समय से पहले गिर जाते हैं। फलों पर प्रवेश छिद्र स्पष्ट दिखाई देते हैं।

क्षति: फलों की उपज व बाजार मूल्य सीधे प्रभावित होते हैं।

प्रबंधन: सांस्कृतिक: संक्रमित फलों को एकत्र कर नष्ट करें। वयस्क कीट की निगरानी हेतु लाईट ट्रैप का उपयोग करें।

जैविक: परजीवी ततैयों जैसे प्राकृतिक शत्रुओं को प्रोत्साहित करें।

रासायनिक: फूल एवं फल सेट के समय स्पिनोसैड या इमामेक्टिन बेन्जोएट का छिड़काव करें।

फल छेदक नियंत्रण हेतु बैथिलस थारेज़ेसिस (बी.टी.) / 250 मि.ली. / एकड़ का प्रयोग करें।

क्षति: लगातार रस चूसने से वृद्धि रुक जाती है तथा फलों पर धब्बे बन जाते हैं।

प्रबंधन:

जैविक: परभक्षी भृंग व परजीवी ततैयों का संरक्षण/मुक्ति।

सांस्कृतिक: अत्यधिक संक्रमित डालियों की छाँटाई कर नष्ट करें।

रासायनिक: नीम आधारित घोल या डाइमिथोएट जैसे तंत्रगत कीटनाशकों का छिड़काव करें।

4. माहूँ (एफिड्स) - एफिस गॉसिपी, मायजस पर्सिका

लक्षण: छोटे हरे/काले कीट कोमल पत्तियों व पत्तियों की निचली सतह पर समूह में पाए जाते हैं। पत्तियाँ मुड़ना व पीली पड़ना सामान्य लक्षण है।

क्षति: रस चूसने से पौधा कमजोर हो जाता है तथा हनीड्यू के कारण कालिख रोग (Sooty mold) विकसित हो जाता है।

प्रबंधन: जैविक: लेडीबर्ड बीटल व सर्फिड मक्खी जैसे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करें।

सांस्कृतिक: खेत में मौजूद ऐसे खरपतवार हटाएँ जो माहूँ का आश्रय स्थल बनते हैं।

रासायनिक: नीम का तेल या थायमेथोक्साम जैसे तंत्रगत कीटनाशकों का छिड़काव करें।



5. फ्रूट फ्लाई (बैक्ट्रोसेरा जोनाटा)

क्षति के लक्षण:

- अर्ध-पके फलों में मैगोट (सूंडी) छेद करके भीतर प्रवेश करती है।
- फल के अंदर गूदा खाती है।
- प्रभावित फल सिकुड़ जाते हैं, विकृत हो जाते हैं, सड़ जाते हैं और समय से पहले झड़ जाते हैं।



कीट की पहचान:

- सूंडी (लार्वा): पीली, बिना पैरों की (एपोडस) मैगोट।
- वयस्क: हल्के भूरे रंग का कीट, पारदर्शी पंखों वाला।

प्रबंधन: सांस्कृतिक उपाय:

- गिरे हुए संक्रमित फलों को एकत्र करके गड्ढे में दबाकर नष्ट करें।
- गर्मी में गहरी जुताई करें ताकि प्यूपा सतह पर आकर नष्ट हो सकें।

- फलों को 45-47°C गर्म पानी में 60 मिनट तक डुबोकर रखने से अंडे व मैगोट मर जाते हैं।

निगरानी:

- मिथाइल यूजेनॉल सेक्स ल्यूअर ट्रैप लगाएँ।

चार स्प्रे:

गुड़/चीनी (10 ग्राम/लीटर) के साथ किसी एक कीटनाशी को मिलाकर स्प्रे करें:

- मेलाथियान 50 EC - 2 मि.ली./लीटर

नोट: फल पकने से पहले 2 सप्ताह के अंतर पर दो छिड़काव करें।

मिथाइल यूजेनॉल चारा तैयारी:

- मिथाइल यूजेनॉल 1%, मेलाथियान 0.1, मिलाएँ।
- प्रत्येक ट्रैप में इस मिश्रण के 10 मि.ली. डालें।
- एक हेक्टेयर में 25 स्थानों पर ट्रैप लगाएँ।

अन्य रासायनिक नियंत्रण:

- मेलाथियान 50 EC @ 0.1%

जैविक नियंत्रण:

- प्राकृतिक शत्रुओं ओपियस काम्पेनसिलस तथा स्पैलांगिया फिलीपींस का खेत में विसर्जन/मुक्ति करें।



ट्राइकोडर्मा



कीलोनस ब्लैकबर्नी



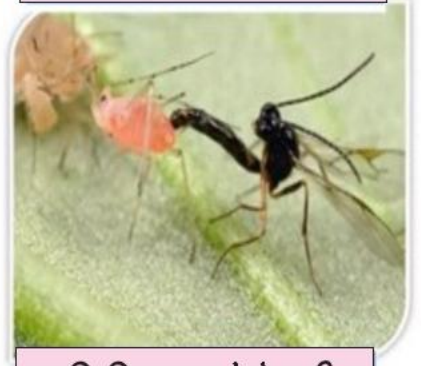
टेलोनोमस रेमस



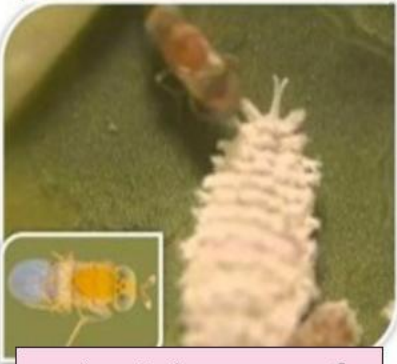
माइक्रसेव्लीटिय स्पी.



कैम्पोलिटिस क्लोरीडाई



एफिडिअस कोलेमानी



ऐसरोफैगस पपाई



ऑरमाइरस ओरिएंटलिस



यूसीलेटोरिआ ब्रायनी



एपिरिकेनिया मेलानोलुका



टेट्रास्टीकस सेटीफर



कोपीडोमोप्सिस फ्लोरिडानम

सीताफल (कस्टर्ड एप्पल) के प्रमुख रोग:

एन्थ्रेकनोज (कोलेटोट्राइकम ग्लियोस्पोरियोइड्स)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पत्तियों, टहनियों एवं फलों पर काले धँसे हुए धब्बे। धब्बे बढ़कर फल सड़न उत्पन्न करते हैं। समय से पहले फल एवं पत्तियाँ गिर जाती हैं। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> संक्रमित भाग हटाएँ। उचित छँटाई करें। मेंकोजेब 0.25% या कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 0.3% का छिड़काव करें। फल बनने की अवस्था में कार्बेन्डाजिम 0.1% या थायोफेनेट मिथाइल का उपयोग करें।
फल सड़न (फामोप्सिस/राइजोपस स्पी.)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पकने पर फलों में नरम, पानीदार सड़न। फल काले/भूरे होकर ममी जैसे हो जाते हैं। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> गिरे हुए एवं सड़े फलों को नष्ट करें। कटाई से पूर्व कैप्टन 0.2% या कार्बेन्डाजिम 0.1% का स्प्रे।
लीफ स्पॉट/ब्लाइट (सर्कोस्पोरा, अल्टनेरिया स्पी.)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पत्तियों पर भूरे गोल धब्बे। अधिक संक्रमण में पत्ती झड़ना व उत्पादन कम होना। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> गिरी हुई संक्रमित पत्तियाँ हटाएँ। मेंकोजेब 0.25% या क्लोरोथैलोनिल 0.2% का छिड़काव।
पाउडरी मिल्ड्यू (ओडियम स्पी)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पत्तियों एवं नई कोपलों पर सफेद चूर्ण जैसा आवरण। पत्तियाँ मुड़ना, सूखना एवं फल सेट कम होना। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> छँटाई कर वेंटिलेशन बढ़ाएँ। गंधक 0.25% या हेक्साकोनाजोल 0.1% का स्प्रे।
रूट रॉट/कॉलर रॉट (फाइटोफथोरा स्पी.)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पत्तियाँ पीली होकर मुरझाना। तने के निचले भाग पर भूरे धब्बे। पौधे का सूख जाना। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> जल निकास सुधारे। मेटालैक्सिल-M+ मेंकोजेब का मिट्टी में ड्रेंच।
सूटी मोल्ड (केपनोडियम स्पी.)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> पत्तियों एवं फलों पर काली कालिख जैसी परत। प्रकाश संश्लेषण कम होने से पौधा कमजोर। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> पहले माहूँ, मेलीबग व स्केल कीट नियंत्रित करें। नीम आधारित घोल का छिड़काव।

स्टेम कैंकर (बोट्रियोडिप्लोडिया स्पी.)	<p>लक्षण:</p> <ul style="list-style-type: none"> • तने पर दरारें व कैंकर। • गोंद स्राव एवं शाखाएँ सूखना। <p>प्रबंधन:</p> <ul style="list-style-type: none"> • संक्रमित भाग खरोचकर कॉपर ऑक्सी क्लोराइड पेस्ट लगाएँ। • कार्बेन्डाजिम या थायोफेनेट मिथाइल का छिड़काव करें।
---	---

फसल की तुड़ाई, उपज एवं विपणन:

सीताफल के पौधे के रोपण के 4-6 वर्ष बाद फल आना प्रारंभ हो जायेगें और 12-15 वर्ष तक अच्छी उपज देंगें। फलों की तुड़ाई का काम सितम्बर से नवम्बर के महीने तक करें जो कि फूल आने के समय पर निर्भर करेगा। पूर्ण विकसित वृक्ष से जब फल कुछ कठोर रहते हैं, तभी तोड़ लें इनकी तुड़ाई की अवस्था का निर्धारण इन बातों से करें -

1. जब फल कड़े रहे एवं उनमें रंग परिवर्तन होकर हल्के हरे से पीला होने लगे।
2. फल की फाँको के छिलके के बीच का रंग पीला-सफेद होने लगे।
3. जब फल की फाँको के बीच के छिलके में दरार सी दिखाई देने लगे।

इस अवस्था पर फल को वृक्ष से सावधानी पूर्वक तोड़ें। सीताफल के फल पूरी तरह से पहले ही तोड़ लें अन्यथा फल फट कर सड़ना प्रारंभ हो जायेगें। तोड़ने के लगभग एक सप्ताह बाद ये फल खाने योग्य हो जाते हैं। पक जाने पर ये फल सावधानी से उठायेँ और बाजार तक शीघ्र पहुँचायेँ।

इन्हें बाजार भेजने के लिये टोकरियाँ (टोकरियों में सूखी घास बिछायें एवं धीरे से एवं सावधानीपूर्वक फल रखें) प्रयोग करें।

अन्य सावधानियाँ

सीताफल की सफल खेती हेतु निम्न सावधानियाँ बरतें :

1. सूखी टहनियों को काट दें एवं फल तुड़ाई के पश्चात् अनावश्यक रूप से बढ़ी हुई शाखाओं को पेड़ का आकार देने के लिये हल्की छँटाई करें।
2. अच्छी फसल लेने हेतु फलों को 50 पी.पी.एम. (50 मि.ग्रा./लीटर) जिब्रेलिक अम्ल के घोल में एक मिनट तक डुबा कर पौधों को उपचारित करें ताकि फलों के आकार एवं भार में वृद्धि, और बीजों की संख्या कम हों।
3. फसल सुधार के लिये हाथ परागण करें। पौधों को निकट लगाने, ग्रीष्म ऋतु में नियमित सिंचाई आदि से भी परागण बढ़ायें।



**गाजर घास का करें निवारण।
बचायें स्वास्थ्य और पर्यावरण ॥**

**जीरो टिलेज से करें बुआई।
कम लागत में अधिक कमाई॥**

**खेत खलिहान का होगा विकास।
जब होगा नींदा का नाश॥**

प्याज की फसल में एकीकृत रोग प्रबंधन

प्रमोद कुमार गुप्ता¹, योगिता घरडे² एवं अनिष्का गुप्ता¹

¹जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

एकीकृत रोग प्रबंधन (आई.डी.एम.) फसलों में रोगों को नियंत्रित करने की एक समग्र और प्रभावी पद्धति है, जिसमें विभिन्न उपायों को मिलाकर उपयोग किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य रोगों के प्रकोप को कम करना, फसल की उत्पादकता बढ़ाना और पर्यावरण को सुरक्षित रखना है।

इसमें सबसे पहले रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन किया जाता है ताकि फसलों पर रोगों का असर कम हो। इसके साथ ही स्वस्थ बीजों का उपयोग, फसल चक्र का उपयोग, खेत की साफ-सफाई बनाए रखना, समय पर बुवाई, बीजोपचार, संतुलित उर्वरक प्रबंधन भी रोगों को नियंत्रित करने में मददगार हैं। जैविक विधियों में लाभकारी सूक्ष्म जीवों और जैविक कीटनाशियों का उपयोग किया जाता है, जो रोग एवं कीटों को नियंत्रित करते हैं। यदि रोग या कीट का प्रकोप अधिक फैल जाए, तो सीमित या उचित मात्रा में रासायनिक दवाओं का प्रयोग वैज्ञानिकों से सलाह लेकर किया जाता है।

इस प्रकार एकीकृत रोग व कीट प्रबंधन विभिन्न तकनीकों का संतुलित उपयोग करके फसलों को स्वस्थ, पर्यावरण को संरक्षित व बेहतर तरीके से उत्पादन व उत्पादकता प्राप्त करने का टिकाऊ तरीका है।

प्याज एक प्रमुख नकदी फसल है। जो मध्यम तापमान (13-25°C) में सबसे अच्छी होती है और इसके लिए हल्की बलुई दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त है। भारत में यह मुख्य रूप से रबी और खरीफ मौसम में उगाई जाती है। जिसमें महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। यह 4 महीने की फसल है जो प्रति हेक्टेयर लगभग 180-200 क्विंटल तक उत्पादन दे सकती है। प्याज की फसल में मुख्य रूप से थ्रिप्स कीट, स्टैम फीलियम झुलसा, बैंगनी धब्बा रोग व सूत्रकृमियों का प्रकोप होता है। इनके नियंत्रण हेतु निम्न उपाय किए जाने पर अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है।

1. नर्सरी क्यारी जमीनी सतह से 10 से.मी. ऊपर बनाकर मृदा सौरीकरण करें तथा *ट्राइकाडर्मा विरिडी* से भूमि को उपचारित करें।
2. थ्रिप्स प्रबंधन हेतु बाधा (फंदा) फसल के रूप में बाहरी पंक्ति में मक्का और आंतरिक पंक्ति में गेहूँ की बुवाई करें।
3. रोपाई पूर्व खेत में नीम की खली 500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के मान से खेत में मिलायें।
4. रोपाई के समय पौधों की जड़ों को *ट्राइकोडर्मा* या *स्यूडोमोनास* में लगभग 10 ग्रा. प्रतिलीटर पानी के घोल में डुबोयें।
5. आवश्यकतानुसार थ्रिप्स के नियंत्रण के लिये स्पाइनोसेड 45 एस.सी. (75 ग्राम/हे.) तथा स्टैम फीलियम बलाइट या बैंगनी धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु ट्राईसाइक्लाजोल (1 ग्राम/ली. पानी) या कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम/ली. पानी) में घोलकर छिड़काव करें।

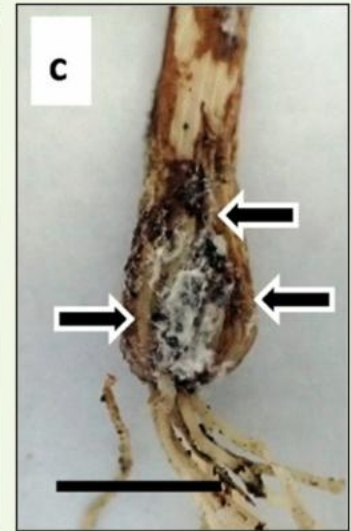
(क) नर्सरी में लगने वाली बीमारी

पौधगलन/आर्द्रगलन :

रोगजनक : *पीथियम*, *फाइटोफथोरा*, *फ्यूजेरियम*, *राइजोक्टोनिया*

लक्षण : यह बीमारी प्रायः हर जगह जहाँ प्याज की पौध उगायी जाती है, मिलती है। अधिक नमी खराब जल निकास और बुवाई इसकी वृद्धि को बढ़ावा देती हैं। इस बीमारी का प्रकोप मुख्य रूप से खरीफ (वर्षा ऋतु) मौसम में ज्यादा होता है क्योंकि उस समय तापमान तथा आर्द्रता ज्यादा होती है। यह रोग दो अवस्थाओं में होता है-

1. बीज में अंकुर निकलने के तुरन्त बाद, उसमें सड़न रोग लग जाता है जिससे पौधे जमीन से ऊपर आने से पहले ही मर जाते हैं।
2. बीज अंकुरण के 10-15 दिन बाद जब पौध जमीन की सतह से ऊपर निकल आती है तो इस रोग का प्रकोप दिखाई देता है। पौध के जमीन की सतह पर लगे हुए स्थान पर सड़न दिखाई पड़ती है और आगे चलकर पौध उसी सतह से गिरकर मर जाती है।



प्याज की पौधगलन/आर्द्रगलन बीमारी का प्रकोप

रोकथाम :

- बुवाई के लिये हमेशा स्वस्थ बीज का चुनाव करना चाहिए।
- बुवाई से पूर्व बीज को थायरम या कैप्टान से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित कर लें।
- पौध शैथ्या के ऊपरी भाग की मृदा में थायरम के घोल (2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए। ट्राइकोडर्मा युक्त कम्पोस्ट का उपयोग करना चाहिए।
- पानी का प्रयोग कम करना चाहिए। खरीफ मौसम में पौधशाला की क्यारियाँ जमीन की सतह से 10 से.मी. उठी हुई बनायें जिससे कि पानी न इकट्ठा हो।
- बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही बाविस्टीन (1.0 ग्राम/लीटर) से जड़ों पर ड्रिपिंग करना चाहिए।
- बीजों को घना नहीं बोना चाहिए। जल निकासी वाली भूमि का चयन करना चाहिए।

(ख) पर्णीय बीमारियाँ

बैंगनी धब्बा रोग

रोगजनक : *आल्टरनोरिया पोरी*

लक्षण : यह बीमारी प्रायः प्याज उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पायी जाती है। यह रोग प्याज की पत्तियों, तनों तथा बीज डण्ठलों पर लगती है। रोग ग्रस्त भाग पर सफेद भूरे रंग आंख के आकार के धब्बे बनते हैं जिसका मध्य भाग बाद में बैंगनी रंग का होता है इसलिए इस रोग को बैंगनी धब्बा रोग के नाम से जाना जाता है। रोग के प्रथम संक्रमण के लगभग दो सप्ताह पश्चात् इन बैंगनी धब्बों पर पृष्ठीय बीजाणुओं के बनने से ये काले रंग के दिखलाई देते

हैं। अनुकूल समय में (फरवरी-मार्च) रोगग्रस्त पत्तियाँ झुलस जाती हैं तथा पत्ती और तने गिर जाते हैं जिसके कारण कन्द और बीज नहीं बन पाते।



प्याज में बैंगनी धब्बा रोग बीमारी का प्रकोप

रोकथाम :

- अच्छी प्रजाति जैसे- एग्रीफाउंड लाइट रेड, एन.एच.आर.डी.एफ.-रेड, एन.एच.आर.डी.एफ.-रेड-2, पूसा रेड एवं एग्रीफाउंड डार्क रेड के उच्च कोटि के बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- 2-3 साल पर फसल चक्र अपनाना चाहिए। प्याज से संबंधित चक्र शामिल नहीं करना चाहिए।
- पौधे की रोपाई के 45-50 दिन बाद 0.25 प्रतिशत की दर से 'डाइथेन एम-45' या 0.2 प्रतिशत की दर से 'सिक्सर' या 0.3 प्रतिशत की दर से कॉपर आक्सीक्लोराइड या क्लोरोथैलेनिल का 0.2 प्रतिशत का 'धानुविट' या 'ट्राइटान' नामक चिपकने वाली दवा मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। यदि बीमारी का प्रकोप ज्यादा हो तो छिड़काव प्रत्येक 10-15 दिन के अंतराल पर 3-4 बार करना चाहिए।
- रोगरोधी प्रजाति के बीजों का चयन करना चाहिए।

झुलसा रोग:

रोगजनक: स्टेमफीलियम वेसिकेरियम

लक्षण : यह रोग पत्तियों और बीज के डण्ठलों पर पहले छोटे-छोटे सफेद और हल्के पीले धब्बों के रूप में पाया जाता है जो बाद में एक-दूसरे से मिलकर बड़े भूरे रंग के धब्बों में बदल जाते हैं और अंत में ये गहरे भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। पत्तियाँ धीरे-धीरे सिरे की तरफ से सुखना शुरू करती हैं और आधार की तरफ बढ़कर पूरी सूख जाती हैं। यह बीमारी तेजी से फैलकर 15 दिनों में पूरे खेत में लग जाती है जिससे पूरी पत्तियाँ जल जाती हैं और कन्दों का विकास नहीं हो पाता।



प्याज का स्टेमफीलियम वेसिकेरियम रोग

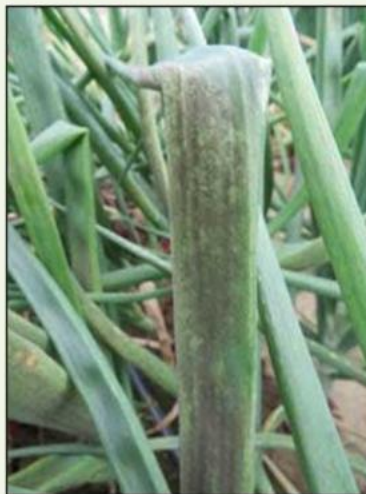
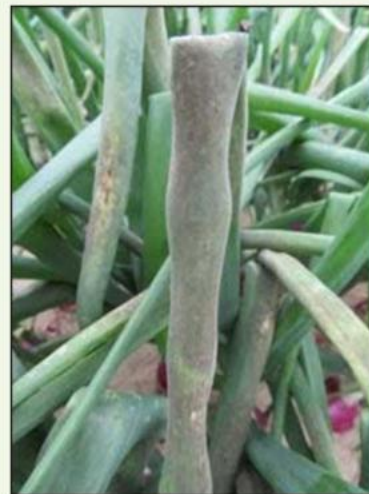
रोकथाम:

- स्वस्थ एवं अच्छी प्रजाति जैसे-एग्रीफाउंड लाइट रेड, एन.एच.आर. डी.एफ.-रेड, एन.एच.आर.डी.एफ.-रेड-2, पूसा रेड एवं एग्रीफाउंड डार्क रेड के उच्च कोटि के बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- लम्बा फसल-चक्र अपनाना चाहिए।
- पौध की रोपाई के 45-50 दिनों के बाद 0.25 प्रतिशत की दर से मैन्कोजेब, 0.2 प्रतिशत की दर से साफ (डाइथेन एम-45+ कार्बेन्डाजिम), क्लोरोथैलोनिल का 0.2 प्रतिशत अथवा 0.3 प्रतिशत की दर से 'कापर आक्सी क्लोराइड' (ब्लाइटाक्स-50) का प्रत्येक 10-15 दिन के अंतराल पर 3-4 बार स्प्रे करना चाहिए।
- रोगरोधी प्रजातियों का चयन करना चाहिए।
- जैविक विधियों का भी प्रयोग करना चाहिए।

मुदुरोमिल आसिता

रोगजनक : परनोस्पोरा डिस्ट्रक्टर

लक्षण : यह बीमारी जम्मू-कश्मीर तथा उत्तरी मैदानी भागों में पायी जाती है। इसके लक्षण सुबह जब पत्तियों पर ओस हो तो आसानी से देखा जा सकता है। पत्तियों तथा बीज डण्ठलों की सतह पर बैंगनी रोयेंदार वृद्धि इस रोग की पहचान है। रोग की सर्वांगी दशाओं में पौधा बोना हो जाता है। ऐसे में पौधे विकृत एवं पीले हो जाते हैं। रोगी पौधे से प्राप्त कन्द आकार में छोटे होते हैं तथा इनकी भण्डारण अवधि कम हो जाती है।



प्याज का मुदुरोमिल आसिता रोग

रोकथाम :

- हमेशा अच्छी प्रजाति के बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए।
- पौध को लगाने से पहले खेतों की अच्छी तरह से जुताई करनी चाहिए जिससे उसमें उपस्थित रोगाणु नष्ट हो जाये।
- बीमारी का प्रकोप होने पर बाजार में उपलब्ध रसायनों जैसे डाइथेन एम-45 (मैन्कोजेब) का 0.25 प्रतिशत या रीडोमिल कवकनाशी का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर 15 दिन के अंतराल पर दो-तीन बार से स्प्रे करना चाहिए।

- जल-निकास का उत्तम प्रबंध करना चाहिए।

प्याज का कण्ड :

रोगजनक : यूरोसिस्टीस सीपली

लक्षण : इस रोग में रोगग्रस्त पत्तियों और बीज पत्तों पर काले रंग का फफोला बनता है जो बाद में फट जाता है और उसमें से रोग जनक फफूंदी के असंख्य बीजाणु काले रंग के चूर्ण में बाहर निकलते हैं और दूसरे स्वस्थ पौधों में रोग फैलाने में सहायक होते हैं।



प्याज का कण्डवा

रोकथाम :

- हमेशा स्वस्थ एवं उत्तम कोटि के बीजों का इस्तेमाल करना चाहिए।
- बीज को बोने से पूर्व कवकनाशी रसायन थाइरम या कैप्टान (2.0-2.5 ग्राम/किग्रा. की दर) से उपचारित करके ही बोना चाहिए।
- दो-तीन वर्ष का फसल-चक्र अपनाना चाहिए।
- रोग प्रतिरोधी प्रजातियों का चुनाव करना चाहिए।

आइरिस यलो स्पॉट वायरस :

रोगजनक : IYSV वायरस (टास्पोवायरस)

लक्षण: यह बीमारी मुख्य रूप से वायरस द्वारा होती है जोकि एक कीड़ा (थ्रिप्स) द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे पर फैलता है। हमारे देश में इस बीमारी का प्रकोप पिछले 3-4 सालों से शुरू हुआ है। इस समय, इस बीमारी का प्रकोप मुख्यता मैदानी क्षेत्रों विशेष रूप से हरियाणा, राजस्थान, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, गुजरात, मध्यप्रदेश एवं उत्तर प्रदेश में ज्यादा पाया गया है। इस रोग के लक्षण शुरू में छोटे-छोटे सफेद रंग के धब्बे कन्द वाली एवं बीजोत्पादन दोनों फसलों में पाये जाते हैं, जो कि बाद में पूरे बीज डण्ठलों में फैल जाते हैं जिससे सारी फसल टूटकर गिर जाती है। फलस्वरूप बीज और कन्द का उत्पादन नहीं हो पाता है। इस बीमारी का सबसे ज्यादा प्रकोप बीज वाली फसलों में होता है, इसकी अधिक उग्रता की अवस्था में बीज का उत्पादन बिल्कुल नहीं होता क्योंकि बीज का डण्ठल टूट कर जमीन पर गिर जाता है।



प्याज का आइरिस यलो स्पॉट वायरस

रोकथाम :

- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- रोग फैलाने वाले कीड़ों को नष्ट करने के लिये अच्छे कीटनाशक जैसे 'डेल्टामेथ्रिन' या फिप्रोनिल (0.1 प्रतिशत), प्रोफेनोफास (0.1 प्रतिशत), स्पाइनोसैड (0.1 प्रतिशत) या साइपरमेथ्रिन (0.1 प्रतिशत) के घोल का 10-15 दिन के अंतराल पर दो-तीन बाद छिड़काव करना चाहिए।
- जैविक नियंत्रण के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्रीडेटर एवं पैरासाइट्स का प्रयोग करना चाहिए।
- ऐसी प्रजाति का चुनाव करना चाहिए जिसमें थ्रिप्स का आक्रमण कम हो।

प्याज का पीत बौना रोग :

रोगजनक : वायरस (पोटीवायरस)

लक्षण : इस बीमारी से प्रभावित पौधों के पत्तियों के आधार पर पीली धारियाँ दिखायी पड़ती हैं। नयी पत्तियाँ पीली, मुड़ी हुई तथा चपटी हो जाती हैं। पत्तियाँ तथा डण्ठल मुड़े हुए छोटे हो जाते हैं तथा गाँठें नहीं बनती हैं और कन्दों का आकार भी बिगड़ जाता है। यह बीमारी लहसुन एवं प्याज दोनों फसलों में एक कीड़ा (एफिड) द्वारा फैलता है। बीमारी की अति उग्रता की अवस्था में पौधा बिल्कुल छोटा रह जाता है, गाँठ का विकास बिल्कुल नहीं होता।



पीत बौना रोग से प्रभावित प्याज का पौधा

रोकथाम :

- रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- रोग फैलाने वाले कीड़ों को नष्ट करने के लिये अच्छे कीटनाशक जैसे 'डेल्टामेथ्रिन' या फिप्रोनिल (0.1 प्रतिशत), प्रोफेनोफास (0.1 प्रतिशत), स्पाइनोसैड (0.1 प्रतिशत) या साइपरमेथ्रिन (0.1 प्रतिशत) के घोल का 10-15 दिन के अंतराल पर दो-तीन बाद छिड़काव करना चाहिए।

- जैविक नियंत्रण के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्रीडेटर एवं पैरासाइट्स का प्रयोग करना चाहिए।
- खेत में एवं आस-पास खरपतवार नहीं होना चाहिए।

गुलाबी जड़ रोग

रोगकारक : पाइरनोकीटा टेरेस्ट्रीस

लक्षण : इस बीमारी का लक्षण प्याज की जड़ों में दिखाई देता है शुरूआत में इसके लक्षण हल्के गुलाबी रंग के प्याज प्राथमिक जड़ों में दिखाई देते हैं, जो कि बाद में पूरी जड़ों पर गहरे गुलाबी रंग का हो जाता है। बीमारी की अंतिम अवस्था में रोग प्रभावित जड़े सूखकर पतली हो जाती हैं और इन्हें हाथ से छूने पर ये टूट जाती हैं। इस बीमारी के अधिक प्रकोप की अवस्था के कन्द का विकास नहीं हो पाता और उपज कम प्राप्त होती है।



प्याज का गुलाबी जड़ रोग

रोकथाम :

- दो-तीन साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए, जिस खेत में इस बीमारी का प्रकोप हो उस खेत में प्याज न लगाकर दूसरी फसल को उगायें।
- प्याज को लगाने के पहले मिट्टी में वर्मीकम्पोस्ट (3-5 टन/हे.) या एफ.वाई.एम. (20-25 टन/हे) के साथ ट्राइकोडर्मा विरिडी (5 टन/हे.) का प्रयोग करने से बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है।
- जिस खेत में प्याज लगाना हो उसकी अच्छी तरह से 3-4 बार गहरी जुताई करें।
- प्याज लगाने के बाद पानी का प्रयोग कम करें, यानि खेतों में पानी इकट्ठा न होने दें।

चूर्णिल आसिता

रोगकारक : लेवीलूला टाउरिका

लक्षण : बीमारी की प्राथमिक अवस्था में पत्तियों के ऊपरी सतह पर सफेद छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं जो कि बाद में हल्के भूरे रंग के हो जाते हैं, जिससे पत्तियां सूख जाती हैं और पौधों का विकास नहीं हो पाता।



प्याज का चूर्णिल आसिता रोग

रोकथाम :

- रोगग्रस्त पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके जला दें।
- रोग का लक्षण दिखाई देते ही हेक्साकोनाजोल (1 मिली/लीटर), प्रोपीकोनाजोल (1 मिली/लीटर) या सल्फर का (2 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
- ऐसी प्रजातियों का चुनाव न करें जिनमें इस बीमारी का प्रकोप ज्यादा होता हो।

सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट

रोगकारक : सरकोस्पोरा डूडी

लक्षण : इस बीमारी के लक्षण के प्रारम्भ में पत्तियों के बीच में हल्का भूरा मृदा के रंग का धब्बा होता है, जो कि बाद में भूरा से हल्का लाल रंग का हो जाता है। बीमारी की अंतिम अवस्था में पत्तियों में छेद हो जाता है और पत्तियां बीच से ही फट जाती हैं।



प्याज का सरकोस्पोरा लीफ स्पॉट रोग

रोकथाम :

- हमेशा स्वस्थ बीजों का ही चुनाव करना चाहिए।
- धान्य वाली फसलों का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
- प्याज को लगाने के 55-60 दिन बाद बाविस्टीन (0.1 प्रतिशत), डाइथेन एम-45 (2.5 ग्राम/लीटर) या कवच (क्लोरोथैलोनिल), 2 ग्राम/लीटर का छिड़काव दो बार 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

कोलेटोट्राइकम ब्लाइट/एन्थ्रेक्नोज/सेवन कर्ल :

रोगकारक : कोलेटोट्राइकम ग्लोस्पोरोइडस

लक्षण : इस बीमारी का प्रकोप मुख्यतया महाराष्ट्र एवं गुजरात में ज्यादा देखा गया है। रोग के लक्षण शुरू में पत्तियों पर पीले रंग के छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं जो कि बाद में पूरी पत्तियों पर फैल जाते हैं और काली उभरी हुई आकृति मध्य भाग में बन जाती है। और अंत में सूखकर गिर जाती है।



प्याज का कोलेटोट्राइकम ब्लाइट/एन्थ्रेक्नोज रोग

रोकथाम :

- मैन्कोजेब (2.5 ग्राम/लीटर पानी), कार्बेन्डाजिम (1.0 ग्राम/लीटर पानी) या बेनोमिल/बेनलेट (1.0 ग्राम/लीटर पानी) का 15 दिन के अंतराल पर दो बार स्प्रे करना चाहिए।

मूल ग्रन्थि रोग

रोगकारक : मेलाइडोगाइन ग्रेमीनीकोला

लक्षण : इस रोग का प्रकोप मुख्यतः सभी सब्जियों पर पाया जाता है। हमारे देश में प्याज में अभी तक इस बीमारी का प्रकोप नहीं था। प्याज में इसके लक्षण पौधों की जड़ों में गाँठें या ग्रन्थियाँ बन जाती हैं। इन गाँठों का आकार लगभग 1.0-1.5 सेमी. तक भी पाया जाता है और ये ग्रन्थियाँ गोल या लम्बे आकार की होती हैं और मुख्यतया पार्श्वीय जड़ों पर फैलती हैं व सम्पूर्ण जड़ों का विगलन हो जाता है और कन्द का विकास बिल्कुल रुक जाता है। किसी-किसी पौधे में लगभग 15-20 ग्रन्थियाँ तक पायी जाती हैं।



प्याज का मूल ग्रन्थि रोग

रोकथाम :

- दो-तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाने।
- धान्य वाली फसलों के तुरन्त बाद प्याज न लगायें।
- खेतों में पानी इकट्ठा न होने दें।
- प्याज लगाते समय मिट्टी में ट्राइकोडर्मा विरिडी (4-5 किग्रा./हे.) एवं एफ बाई एम (20-25 टन/हे.) या वर्मीकम्पोस्ट (3-5 टन/हे.) का प्रयोग करें।
- फोरेट 10 किग्रा./हे. की दर से खेत में रोपाई पूर्व डालना चाहिए।

(ग) भण्डारण के दौरान लगने वाली बीमारियाँ :

आधार सड़न :

रोगकारक : फ्यूजेरियम आक्सिसपोरम एफ. सीपी

लक्षण : इससे कन्द के जड़ के पास वाला भाग सड़ने लगता है और उस पर सफेद रंग की कवक तन्तु दिखाई देते हैं। जिन पर कभी-कभी गुलाबी रंग भी दिखायी देता है। गर्म एवं उष्ण जलवायु में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। रोगजनक मिट्टी में रहते हैं। तथा खेत से भण्डारण में पहुंचाते हैं। खराब जल निकास, भारी जमीन, परिपक्वता के बाद बारिश होने से, सिंचाई करने से बीमारी का प्रकोप बढ़ता है।



प्याज का आधार सड़न भण्डारण के दौरान लगने वाली बीमारी

रोकथाम :

- उचित फसल चक्र अपनाने तथा एक ही जमीन पर बार-बार फसल नहीं लगाने से रोग का प्रकोप कम होता है।
- कन्दों को कार्बेन्डाजिम 1.0 ग्राम/लीटर के घोल में डुबोकर लगाना चाहिए।
- भण्डार गृहों में रखने से पूर्व क्षतिग्रस्त तथा बीमारीग्रस्त कन्दों को अलग कर नष्ट कर देना चाहिए।
- पिछली फसलों के अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए। गर्मियों में 3-4 बार गहरी जुताई करनी चाहिए।
- कन्दों की खुदाई करने के 15 दिन पहले पानी देना बंद कर देना चाहिए।

सफेद विगलन :

रोगकारक : स्केलेरोसियम रोलफसाई

लक्षण : इस बीमारी का प्रकोप भण्डारण के दौरान ज्यादा होता है। इसके रोगजनक मिट्टी में पाये जाते हैं। इनका आक्रमण जड़ों तथा शल्क कन्दों के निचले भाग में होता है। जो धीरे-धीरे सफेद सा कवकजाल बना लेते हैं। इससे जड़ों का विकास बन्द हो जाता है। फलस्वरूप पूरा कन्द सड़ जाता है।



प्याज का सफेद विगलन रोग

रोकथाम :

- यह मृदाजनित रोग है। इसलिए पौध लगाने से पहले खेतों की अच्छी तरह से जुताई करनी चाहिए।
- पौध लगाने से पहले किसी कवकनाशी रसायन तथा जैव रसायन (ट्राइकोडर्मा विरिडी) फफूँद से जड़ों को उपचारित करके लगाना चाहिए।
- भण्डारण करने से पहले अच्छी तरह सुखाना चाहिए।

ग्रीवा सड़न :

रोगकारक : बोट्राइटिस एली

लक्षण : कवक के प्रकोप से कन्द तने के पास से सड़ने लगता है और धीरे-धीरे पूरा कन्द सड़ जाता है। प्रभावित भाग मुलायम तथा रंगहीन हो जाता है। यह बीमारी मुख्यतया बीज से फैलती है। बीमारी के कन्द बनने के दौरान नहीं पहचानी जा सकती है। लेकिन रोगाणु इसी दौरान कन्दों में प्रवेश करते हैं और भण्डारण के दौरान बीमारी फैलाते हैं।



प्याज का ग्रीवा सड़न रोग

रोकथाम :

- बीज उत्पादन के लिए कन्द तैयार करने वाले बीज को थाइराम/कैप्टान या बाविस्टीन से उपचारित करना चाहिए।
- कन्दों की गर्दन कटाई करते समय लम्बी डन्डियाँ (2.0-2.5 सेमी.) छोड़नी चाहिए।
- कन्दों को लगाने से पूर्व कार्बेन्डाजिम (1 ग्राम प्रति लीटर) के घोल से उपचारित करना चाहिए।
- उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।

काली फफूँदी :

रोगकारक : एस्पेरजिलस नाइजर

लक्षण : इसमें प्याज के बाहरी शल्कों या छिलकों पर काले रंग के धब्बे बनते हैं और धीरे-धीरे सारा भाग काला हो जाता है। इससे कन्द बिक्री योग्य नहीं रह जाते हैं। बाहर के प्रभावित शल्क निकालने से कन्द खुले हो जाते हैं और बाजार में कम भाव में जाते हैं। प्याज या लहसुन को अच्छी तरह से नहीं सूखने तथा भण्डारण में अधिक नमी के कारण इस रोग की समस्या बढ़ती है।



प्याज का काली फफूँदी रोग

रोकथाम :

- कन्दों को छाया में अच्छी तरह सुखाना चाहिए।
- भण्डारण हमेशा ठण्डे व शुष्क स्थानों पर करना चाहिए।
- भण्डारण से पूर्व भण्डार गृहों को अच्छी प्रकार से रसायनों द्वारा उपचारित कर लेना चाहिए।

नीली फफूँदी :

रोगकारक : पेनीसिलियम स्पेसीज

लक्षण : इसमें प्याज पर हल्के-पीले रंग के निशान बनते हैं, जो धीरे-धीरे नीले रंग के हो जाते हैं और प्रभावित भाग सड़ने लगता है इसके कारण प्याज पीले हो जाते हैं।



प्याज का नीली फफूँदी रोग

रोकथाम :

- कन्दों को क्षतिग्रस्त या रगड़ने से बचाना चाहिए।
- कम तापमान (0-20° सेल्सियस) तथा उचित नमी पर यह बीमारी नहीं आती है।

मृदु सड़न :

रोगकारक : इरविनिया कैराटोवोरा

लक्षण : यह जीवाणु खेत में या भण्डारगृहों में रहते हैं तथा उपयुक्त वातावरण मिलने पर इनकी वृद्धि होती है। प्रभावित प्याज के कन्द बाहर से अच्छे लगते हैं, परन्तु बीच का भाग तथा शल्क सड़ जाते हैं। उसको दबाने या काटने से उनसे बदबूदार द्रव निकलता है। खरीफ मौसम के प्याज में यह अधिक पाया जाता है। अधिक वर्षा होने से खेत में पानी भर जाने से यह रोग अधिक होता है।



प्याज का मृदु सड़न जीवाणु रोग

रोकथाम :

- उचित जलनिकास की व्यवस्था होनी चाहिए।
- ताम्रयुक्त जीवाणु नाशकों के खेत में प्रयोग से बीमारी को नियोजित किया जा सकता है।
- प्याज की खुदाई के 15-20 दिन पहले खेतों में स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का स्प्रे करना चाहिए।
- अच्छी तरह से सुखाकर भण्डारण करना चाहिए।

कैंकर रोग :

रोगकारक : इम्बेलिसिया एली

लक्षण : यह प्याज की महत्वपूर्ण 'संगरोध' बीमारी है। जो कि भण्डारण के दौरान होती है। इस रोग का प्रकोप मुख्यतः जम्मू-कश्मीर, उत्तरांचल एवं हिमांचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में उगाई जाने वाली लहसुन की प्रजातियों में पाई जाती है। इस रोग के लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में छोटे-छोटे भूरे से काले रंग के धब्बे गुणवत्ता खराब हो जाती है जिससे बाजारभाव कम मिलता है। प्याज में इसके लक्षण कन्द के ऊपरी सतह पर काले धब्बे दिखाई देते हैं जो कि धीरे-धीरे पूरे कन्द पर फैल जाता है।



प्याज का 'संगरोध' बीमारी कैंकर रोग

रोकथाम :

- भण्डारण करने से पूर्व लहसुन एवं प्याज को अच्छी तरह से सुखाकर रखना चाहिए।
- भण्डारगृहों को रसायनों द्वारा उपचारित कर लेना चाहिए।



मिट्टी को निर्जीव न समझो, मिट्टी जीवत सोना है।
इस मिट्टी के कण-कण को, मिलाकर हमें सँजोना है ॥

गाजरघास करें प्रहार। दमा, खुजली और बुखार ॥
मैक्सिकन बीटल अपनाएँ। गाजरघास का प्रकोप घटायें ॥

भारत में मैकाडामिया नट की आधुनिक खेती

शशी कुमार शर्मा व पल्लवी ठाकुर

डॉ. वाई. एस. परमार उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी सोलन (हि.प्र.)

औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर

मैकाडामिया नट को दुनिया के सबसे बेहतरीन गिरीदार फलों में से एक माना जाता है। मैकाडामिया नट की फसल को उत्तर-पश्चिमी हिमालयी उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में उच्च-मूल्य, जलवायु परिवर्तन सहनशील फसल के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है। इन क्षेत्रों की समुद्र तल से ऊँचाई, तापमान और मिट्टी की परिस्थितियाँ मैकाडामिया के बागीचों को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त हैं, जिससे इस क्षेत्र के लोगों को आर्थिक और पारिस्थितिक लाभ मिलने की पूर्ण संभावना है।

मैकाडामिया नट मूल रूप से ऑस्ट्रेलिया से उत्पन्न हुआ फल है, विशेष रूप से क्वीन्सलैंड और न्यू साउथ वेल्स के वर्षावनों में से इसकी उत्पत्ति हुई मानी जाती है। इसे 19वीं सदी के मध्य में यूरोपीय वनस्पतिशास्त्रियों द्वारा पहली बार खोजा गया था और इसका नाम स्कॉटिश-ऑस्ट्रेलियाई रसायनज्ञ और राजनीतिज्ञ जॉन मैकाडम के नाम पर रखा गया था। ये नट अब दुनिया भर के विभिन्न उपोष्णकटिबंधीय और उप-उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाए जाते हैं। इसका वाणिज्यिक उत्पादन ऑस्ट्रेलिया, हवाई, दक्षिण अफ्रीका, केन्या, चीन, ब्राजील और ग्वाटेमाला जैसे देशों में केंद्रित है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होती जनता व इन फलों की गुणवत्ता के कारण राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मैकाडामिया नट की मांग निरंतर बढ़ रही है।

मैकाडामिया नट की गिरी के गुण: मैकाडामिया नट की गिरी मीठी, कुरकुरी व मक्खन जैसी स्वाद होती है। यह न केवल स्वाद में बेहतरीन होता है, बल्कि सेहत के लिए भी बहुत फायदेमंद है। यह मेवा प्रोटीन और खनिजों का अच्छा स्रोत है। पोषण की दृष्टि से, मैकाडामिया नट्स स्वस्थ मोनोअनसैचुरेटेड वसा से भरपूर होते हैं, जो कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने और हृदय स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। कैलोरी-अधिक होने के बावजूद भी, ये अपने उच्च फाइबर और प्रोटीन के कारण मानव वजन को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। इसके अलावा, मैकाडामिया नट्स में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होती है, जिससे यह डायबिटीज या ब्लड शुगर कंट्रोल के लिए भी फायदेमंद हैं।

मैकाडामिया नट की गिरी (कर्नेल) को हल्के भुने हुए रूप में खाया जाता है। गिरी के तेल का उपयोग खाने के तेल के रूप में भी किया जाता है। एक नट में 75-80% गिरी (कर्नेल) होता है जिसमें करीब 89% अनसैचुरेटेड फैट होता है। यह किसी भी अन्य नट्स की तुलना में सबसे ज्यादा मोनोअनसैचुरेटेड फैट की मात्रा है। इसमें लगभग 22% ओमेगा-7 फैटी एसिड (पामिटोलेइक एसिड) पाया जाता है, जो शरीर के लिए एक उपयोगी वसा होता है और खासकर लिवर में अधिक पाया जाता है। इसमें

100 ग्राम कर्नेल वजन पर कार्बोहाइड्रेट (10 ग्राम), प्रोटीन (9.2 ग्राम), पोटेसियम (0.37 ग्राम), फास्फोरस (0.17 ग्राम) और मैग्नीशियम (0.12 ग्राम) भी पाया जाता है।

क्योंकि यह फल हिमाचल प्रदेश के लिए नया है इसलिए अभी तक इसकी खेती हेतु उचित अनुमोदन नहीं है। हिमाचल से मिलते-जुलते क्षेत्रों में इसके उत्पादन को देखते हुए तथा वैज्ञानिकों व उत्पादकों के परामर्श के आधार पर निम्नलिखित सिफारिशें इसके हिमाचल प्रदेश में उत्पादन हेतु दी गई हैं।

जलवायु: मैकाडामिया पेड़ आमतौर पर समुद्र तल से लगभग 150 मीटर से 1400 मीटर की ऊँचाई पर पाए जाते हैं, हालांकि 300 मीटर निचले व 1000 मीटर से ऊपरी क्षेत्रों में इसका फलन-फूलन प्रभावित होता है। मैकाडामिया के पौधे 1000 से 1800 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छा उत्पादन देते हैं। बीज बोने के करीब 8 सप्ताह बाद, यदि मिट्टी का तापमान 30 से 35 डिग्री सेल्सियस हो और नमी का स्तर 90 प्रतिशत तक हो, तो बीज अच्छी तरह अंकुरित हो जाते हैं। लेकिन तापमान 10°C से नीचे गिरने पर इसकी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मिट्टी: मैकाडामिया के पेड़ ऐसी मिट्टी में अच्छी तरह बढ़ते हैं जो गहरी, नरम और जिससे पानी की अच्छी निकासी रखती हो। इसके लिए रेतीली दोमट, या दोमट, या रेतीली चिकनी दोमट मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है। मिट्टी का पीएच स्तर 5.5 से 6.5 के बीच होना चाहिए, यानी हल्की अम्लीय मिट्टी इस फसल के लिए उपयुक्त होती है।

मिट्टी में पानी जमा होने की परिस्थिति में ये पौधे जड़ सड़न रोग से प्रभावित हो जाते हैं। इसलिए, पानी निकासी अच्छी होनी बहुत जरूरी है। जिन इलाकों में मिट्टी भारी (जैसे चिकनी मिट्टी) हो, वहाँ ऊँची क्यारियाँ या टीले बनाकर मैकाडामिया के पौधे लगाए जा सकते हैं ताकि अतिरिक्त पानी का निकास हो सके।

मैकाडामिया की खेती के लिए संभावित क्षेत्र: हिमाचल प्रदेश के कुछ निचले और मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्र मैकाडामिया की खेती के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। इनमें कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना और बिलासपुर की निचली पहाड़ियाँ और मंडी, सोलन और सिरमौर जिलों के निचले हिस्से शामिल हैं, जिनकी ऊँचाई समुद्र तल से लगभग 350 से 1200 मीटर के बीच है। यहाँ सालाना औसतन 1,000 से 1,500 मिलीमीटर तक वर्षा होती है, जो मैकाडामिया की अच्छी वृद्धि के लिए अनुकूल मानी जा सकती है।

मैकाडामिया नट की जातियाँ

मैकाडामिया इंडीग्रिफोलिया

इस प्रजाति की खेती मुख्य रूप से उपोष्णकटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्रों में की जाती है। उत्तर-पश्चिमी हिमालय के मैदानी और गर्म क्षेत्रों, जैसे कि कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना और बिलासपुर की निचली पहाड़ियों में इस प्रजाति के बेहतर प्रदर्शन की संभावना है। यह नट अपनी अच्छी गुणवत्ता वाली गिरी व सुगंध के लिए जाने जाते हैं। इसकी क्रीम के रंग की गिरी 72-78% तेलीय संरचना वाली होती है।

मैकाडामिया टेट्राफिला

यह प्रजाति थोड़ी ठंडी जलवायु में अच्छी पनपती है। यह ऐसे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहाँ गर्मी कम और मौसम सामान्यतः ठंडा रहता है। हिमाचल प्रदेश में यह प्रजाति विशेष रूप से मंडी, सोलन और सिरमौर जिलों के उन हिस्सों में अच्छी तरह उगाई जा सकती है जो मध्यम ऊँचाई (लगभग 800-1200 मीटर) पर स्थित हैं और जहाँ तापमान ज्यादा नहीं बढ़ता। इन क्षेत्रों की जलवायु मै. टेट्राफिला की वृद्धि के लिए अनुकूल मानी जा सकती है। इस जाति के नट्स में गिरी की मात्रा कम होती है (40-50%) तथा गिरी की 65-75 प्रतिशत तेलीय पदार्थ होते हैं। ये किस्म ज्यादातर मूलवृत्त के लिए भी उगाई जाती है।

ब्यूमोंट: यह मै. इंडीग्रिफोलिया और मै. टेट्राफिला की एक संकर किस्म है। यह एक अत्यधिक आशाजनक किस्म मानी जाती है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह विभिन्न तापमानों में अच्छा प्रदर्शन करने की क्षमता रखती है, जिसके कारण यह दुनिया भर के उत्पादकों के बीच बेहद लोकप्रिय है। यह प्रजाति उन क्षेत्रों के लिए आदर्श विकल्प है जहाँ मौसम में उतार-चढ़ाव होता है। ब्यूमोंट का स्वाद अच्छा होता है और इसमें तेल की मात्रा अधिक होती है (75 प्रतिशत), हालांकि यह ज्यादा मीठा नहीं होता। एक परिपक्व पेड़ से औसतन 18 किलोग्राम नट्स प्राप्त होते हैं। ब्यूमोंट के नट्स में से गिरी आसानी से निकली जा सकती है। यह गिरी अपने क्रंची टेक्सचर के लिए भी मशहूर है।

के ए यू (KAU): यह एक अत्यधिक अनुकूलनीय किस्म है, जो उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों सहित विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में अच्छी तरह पनपती है। यह किस्म आकार में अपेक्षाकृत ऊँची होती है और इसकी शाखाएँ चारों ओर फैलती हैं, जिससे इसका छत्र चौड़ा और संतुलित बनता है। इसके नट्स छोटे से मध्यम आकार के होते हैं, जिनमें उच्च गुणवत्ता वाला कर्नेल (गिरी) पाया जाता है तथा स्वाद, बनावट और तेल की मात्रा के लिहाज से श्रेष्ठ होता है। इसकी गिरी में तेलीय पदार्थों की मात्रा 69-78 प्रतिशत तक होती है।

ए 4 (A4): ए 4 किस्म मध्यम वर्षा और तापमान वाली उपोष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। यह अपनी सघन और कॉम्पैक्ट वृद्धि के लिए जानी जाती है, जो इसे छोटे बागानों और सीमित स्थान वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाती है। इस किस्म में कर्नेल रिकवरी दर अच्छी होती है और यह उच्च गुणवत्ता वाले नट्स का उत्पादन करती है, जो घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों बाजारों की मांगों को पूरा करने में सक्षम है। ए 4

किस्म को शुरुआती वर्षों में ही बेहतर उत्पादन देने के लिए जाना जाता है, जिससे किसानों को निवेश पर तेज और बेहतर लाभ मिलता है।

सी 35 (C35): यह 35 एक ऐसी किस्म है जो मध्यम गर्मी और कभी-कभी पड़ने वाली ठंड को सहन कर सकती है। यह अपनी अच्छी छतरीनुमा संरचना और मध्यम गति से बढ़ने के लिए जानी जाती है। सी 35 मध्यम आकार के नट्स देती है, जिनकी कर्नेल रिकवरी भी औसत होती है। यह किस्म उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में लगातार फल देती है और अच्छी गुणवत्ता वाले नट्स का उत्पादन करती है।

जी 32 (G32): एक मजबूत किस्म है, जो मध्यम वर्षा और तापमान वाली उपोष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए उपयुक्त है। इसके पेड़ मजबूत होते हैं और इनकी छत्तर अच्छी होती है, जिससे ये लचीले बने रहते हैं। जी 32 बड़े कर्नेल के साथ उच्च गुणवत्ता वाले नट्स का उत्पादन करता है। यह किस्म लगातार अच्छी पैदावार देती है और हवा व सूखे जैसे तनावों को भी अच्छी तरह झेल सकती है।

ए 16 (A16): एक तेजी से बढ़ने वाली किस्म है, जिसे आमतौर पर कठोर खोल वाली किस्म मानी जाता है। यह मध्यम से बड़े आकार के नट्स प्रदान करती है, जिनमें तेल की मात्रा थोड़ी अधिक होती है।

816: यह किस्म उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है और यह हल्की गर्मी तथा ठंड दोनों को अच्छी तरह सहन कर सकती है। इसका विकास मध्यम से तेज गति से होता है और पेड़ का छतर संतुलित होता है। यह किस्म मध्यम आकार के और उच्च गुणवत्ता वाले नट्स पैदा करती है। इसकी उपज काफी अच्छी होती है, इसलिए यह बड़े पैमाने पर व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

उपोरक्त किस्मों, हिमाचल प्रदेश के निचले पर्वतीय व तलछट क्षेत्रों के लिए उपयुक्त अनुमानित हैं, क्योंकि ये कुछ हद तक कोहरे व सूखे की परिस्थिति को सहन कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त ढलानदार क्षेत्रों में पानी के भराव की समस्या न होने के कारण भी इन क्षेत्रों में इन किस्मों के अच्छे प्रदर्शन के अनुमान हैं।

पौधे तैयार करना और लगाना

- **बीज द्वारा प्रवर्धन:** मैकाडामिया को बीज से भी उगाया जा सकता है, लेकिन बीज से उगे पौधों को फल देने में 8 से 12 साल लग सकते हैं, इसलिए यह तरीका आमतौर पर अनुसंधान या रूटस्टॉक तैयार करने के लिए अपनाया जाता है। बीज से अच्छी पौध तैयार करने के लिए परिपक्व और 4 महीने से कम पुराने बीज चयनित किए जाने चाहिए, क्योंकि पुराने बीजों की अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। बीजों को 24 घंटे तक पानी में भिगोना चाहिए और जो बीज पानी में तैरते हैं उन्हें हटा देना चाहिए क्योंकि वे सामान्यतः खाली या खराब होते हैं। बेहतर अंकुरण के लिए बीजों को कोकोपीट वाले नर्सरी बेड में बोना चाहिए। जब पौधों में चार पत्तियाँ आ जाएँ, तब उन्हें मिट्टी व गोबर के मिश्रण से भरी 8" x 4" की पॉलीथीन की थैलियों में प्रत्यारोपित करना चाहिए। पौधे लगभग 6-12 महीने में बागीचे में रोपण लायक हो जाते हैं।



- **ग्राफ्टिंग व बडिंग द्वारा प्रवर्धन:** व्यावसायिक उत्पादन के लिए, बीज से पौधे उगाने की बजाय ग्राफ्टिंग या बडिंग द्वारा तैयार पौधे अधिक उपयुक्त और विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इससे एकसमान, जल्दी फल देने वाले पौधे मिलते हैं। वेज-ग्राफ्टिंग और चिप-बडिंग इन पौधों के प्रवर्धन में सबसे प्रभावी तकनीकें मानी जाती हैं। ग्राफ्टिंग के लिए इस्तेमाल होने वाला रूटस्टॉक 9-12 महीने पुराना

और उसका तना 1-1.3 सेमी व्यास का होना चाहिए। रूटस्टॉक बीज से उपरोक्त विधि द्वारा उगाया जाना चाहिए, और उस पर जो कलम लगाई जाती है, वह स्वस्थ, रोगमुक्त, और उत्पादक मातृ वृक्ष से ली जानी चाहिए। ग्राफ्टिंग या बडिंग के बाद पौधों की सही देखभाल जैसे नमी बनाए रखना, छाया देना और कीट/रोग से सुरक्षा जरूरी है ताकि ग्राफ्ट सफल हो सके।



वेज ग्राफ्टिंग

- **बगीचे की रूपरेखा और पौध रोपण:** ग्राफ्टेड पौधों को खेत में 8 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। ढलानदार वाले क्षेत्रों में यह दूरी एक से दो मीटर कम की जा सकती है। इस प्रकार से प्रति हैक्टेयर 156 से 277 पेड़ लगाए जा सकते हैं। हालांकि अलग-अलग रोपण घनत्व की सिफारिश की गई थी, जैसे कम घनत्व - 10 मीटर x 5 मीटर (200 पेड़/हेक्टेयर), मध्यम घनत्व 8 मीटर x 4 मीटर (312 पेड़/हेक्टेयर), मध्यम - उच्च घनत्व- 7 मीटर x 3 मीटर (476 पेड़/हेक्टेयर) और उच्च घनत्व (5 मीटर x 5 मीटर) में इसके 400 के करीब पौधे लगाए जा सकते हैं। वर्तमान में, मध्यम-उच्च घनत्व (7m x 3m) 476 पौधे प्रति हैक्टेयर ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में सबसे अधिक पसंद किया जा रहा है क्योंकि यह जमीन का बेहतर उपयोग

करता है और शुरुआती वर्षों में अधिक उपज देता है, साथ ही पेड़ों को पर्याप्त जगह भी मिलती है।

- **बगीचा रोपण:** मैकाडामिया नट की सफल खेती के लिए खेत को समतल किया जाता है और खरपतवार हटा दी जाती है। समतल भूमि में पौधों को लगाने के लिए चौकोर, आयताकार या त्रिकोना पद्धति अपनाई जा सकती है। ढलान वाले या पहाड़ी क्षेत्रों पर खेती के लिए एक से दो मीटर चौड़ी पट्टी या सीढ़ीनुमा खेत बना कर उन में रोपण करें। इससे मिट्टी का कटाव रोका जा सकता है और पानी को खेत में बनाए रखने में मदद मिलती है। रोपण हेतु पट्टी से पट्टी की दूरी अपनी रोपण प्रद्धति के अनुरूप कम या ज्यादा कर सकते हैं।



रोपण के लिए 1 घन मीटर तक का गड्ढा जरूर बनाना चाहिए। पौधों को इस तरह लगाएं कि कली या कलम की दिशा हवा की ओर हो। तेज हवा वाले क्षेत्रों में पौधों को हवा की दिशा में थोड़ा (लगभग 10%) झुका कर लगाना बेहतर होता है। रोपण के बाद यदि संभव हो तो पौधे के चारों ओर मलच (जैसे सूखी घास या पत्तियाँ) बिछाएं। इससे नमी की हानि कम होती है और खरपतवार भी नहीं बढ़ते। पौधों के तनों को ठंड, जानवरों, खरपतवारनाशकों और धूप की तेज किरणों से सुरक्षित रखना जरूरी है।

परागण: मैकाडामिया का परागण मुख्य रूप से कीटों, विशेष रूप से मधुमक्खियों द्वारा होता है, क्योंकि अधिकांश किस्में स्वयं-परागण में असंगत या आंशिक रूप से असंगत होती हैं। इसलिए अच्छे फल सेट के लिए उपयुक्त परागक किस्मों को बगीचे में लगाना और पर्याप्त संख्या में मधुमक्खियाँ उपलब्ध कराना आवश्यक होता है। बागीचे में 10 से 20% परागणों का रोपण लाभप्रद रहता है। HAES 344, 660, ब्लूमोंट परपरागण हेतु अच्छी किस्में मानी जाती हैं। A14 और A16 का समागम अच्छा रहता है।



सिधाई एवं कांटछांट: मैकाडामिया को मनचाहे आकार और मजबूत ढांचे में विकसित करने के लिए सिधाई एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। शुरुआती वर्षों में, पेड़ का आकार हाथ से छाँटकर आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। इसके लिए समय-समय पर अंगूठे और उंगली से उन छोटी कलियों को हटा देना चाहिए जो अनावश्यक शाखाओं में बदल सकती हैं। इस तरह की हाथ से छाँटाई और छाँटाई कैंची की मदद से पेड़ का अच्छा ढांचा तैयार किया जा सकता है और अनावश्यक ऊपरी वृद्धि (टर्मिनल ग्रोथ) को भी रोका जा सकता है। मैकाडामिया के पेड़ों में 3 से 5 साल में फल आना शुरू हो जाता है तथा यह फलन परिपक्व टहनियों पर आने वाली नई शाखाओं पर पार्श्वक (लेटरल) स्थिति में होता है। अतः सर्दियों के अंत में हल्की, नियमित कांटछांट इसके फलन के लिए लाभप्रद होती है।

उर्वरक: जब मैकाडामिया के पेड़ अच्छी तरह स्थापित हो जाएं, तो पत्तियों और मिट्टी की पोषक तत्वों की जांच के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। अच्छे उत्पादन के लिए एक फलदार पेड़ को प्रति वर्ष 30-40 किलो गोबर की खाद तथा नाइट्रोजन वाली खाद तीन हिस्सों में बांट कर फूल आने से पहले, फलों के शुरुआती विकास के दौरान तथा फलों के तुड़ान के उपरान्त देनी चाहिए। लगभग 450 ग्राम नाइट्रोजन (N), 150 ग्राम फास्फोरस (P_2O_5) 400 ग्राम पोटैश (K₂O) दिया जाना चाहिए। गोबर, फास्फोरस तथा पोटैश वाली खादें सर्दियों के शुरू में पौधों के दौर बनाने के उपरान्त मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

परिपक्वता और तुड़ाई: ग्राफ्ट किए गए मैकाडामिया के पेड़ आम तौर पर 7 से 10 साल की उम्र में व्यावसायिक स्तर पर फल देना शुरू कर देते हैं। एक बार अच्छी तरह स्थापित होने पर ये पेड़ 100 वर्षों या उससे अधिक समय तक फल दे सकते हैं। फूल आने के लगभग 6-7 महीने बाद नट्स पककर तैयार हो जाते हैं। इन्हें पेड़ पर ही पकने देना चाहिए, ताकि गुणवत्ता अच्छी बने। अधिकांश किस्मों में परिपक्व होने पर नट्स अपने आप जमीन पर गिर जाते हैं, जबकि कुछ किस्मों में वे पेड़ पर ही टिके रहते हैं और उन्हें हाथ से या औजारों की मदद से तोड़ना पड़ता है। कटाई का समय आमतौर पर अक्टूबर से लेकर शुरुआती सर्दियों तक होता है। इन नट्स की तुड़ाई तब शुरू की जाती है जब कुछ नट पक कर खुद गिरने लग जाएं। यह तुड़ाई लगभग 6 से 8 हफ्ते तक चलती है क्योंकि सारे नट एक साथ पक कर तैयार नहीं होते। पेड़ पर लगे पके नट्स की पहचान उनके खोले के बाहरी हरे रंग के भूरे हरे रंग से परिवर्तन से लगाया जाता है। नट्स को हाथ से (मैन्युअली) या मशीनों की मदद से जमीन से आसानी से इकट्ठा किया जा सकता है।

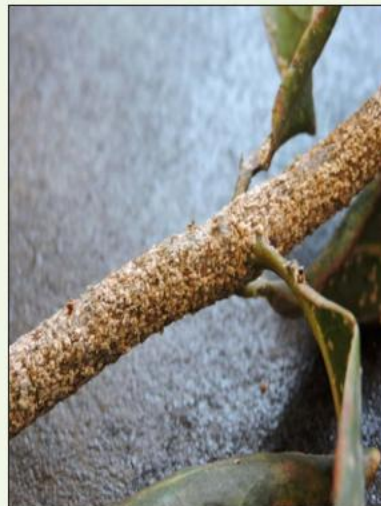
छिलका हटाना और गुणवत्ता प्रबंधन: तुड़ाई के बाद, मैकाडामिया नट्स अक्सर हरे भूरे, मांसल छिलके में बंद होते हैं और उनमें 20% से अधिक नमी हो सकती है। इन नट्स को जल्द से जल्द छिलके से अलग करना जरूरी होता है, ताकि अधिक गर्मी, फफूंद लगने और गुणवत्ता में गिरावट से बचा जा सके। छिलका हटाने वाली मशीनें आमतौर पर घर्षण तकनीक से काम करती हैं, जिसमें नट्स को मशीन में डालने पर घर्षण से छिलका अलग हो जाता है। मशीन को सही ढंग से सेट और नियमित रूप से

रख-रखाव करना जरूरी है, ताकि छिलका हटाते समय नट को कम से कम नुकसान पहुंचे। अगर मशीन ठीक से सेट नहीं होती है, तो नट्स टूट सकते हैं और कर्नेल (गिरी) को नुकसान हो सकता है, जिससे उत्पादन की गुणवत्ता और बाजार मूल्य दोनों पर असर पड़ता है।

सुखाना: सुखाने की प्रक्रिया मैकाडामिया नट्स के लिए बहुत जरूरी होती है क्योंकि इससे नट्स को आसानी से फोड़ा जा सकता है। यह प्रक्रिया अगर सही तरीके से की जाती है, तो यह नट्स के भूने के बाद उनके स्वाद और बनावट को बेहतर बनती है। साथ ही यह उनके रासायनिक घटकों को स्थिर रखती है, जिससे उनकी गुणवत्ता और शेल्फ लाइफ बनी रहती है। कटाई के बाद छिलके वाले नट्स को या तो खेत में उथली जालीदार ट्रे पर हवा में सुखाया जाता है या मशीनों की मदद से कृत्रिम रूप से सुखाया जाता है। जब नट्स में लगभग 10 प्रतिशत नमी रह जाती है, तो वे प्रसंस्करण से पहले कुछ समय तक सुरक्षित रूप से रखे जा सकते हैं। लंबे समय तक भंडारण के लिए इन्हें कारखाने में और सुखाया जाता है, जिससे नमी की मात्रा एक से डेढ़ प्रतिशत तक लाई जाती है। इससे नट्स का खोल आसानी से दरकता है और कर्नेल (गिरी) पूरी तरह से निकाले जा सकते हैं। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे दो चरणों में की जाती है- पहले लगभग 52 डिग्री सेल्सियस पर सुखाकर नमी को 4.5 प्रतिशत तक लाया जाता है और फिर 77 डिग्री सेल्सियस पर सुखाकर 1.5 प्रतिशत तक। इस तरह से सुखाने से कर्नेल की गुणवत्ता सुरक्षित रहती है और नुकसान नहीं होता।

प्रसंस्करण: मैकाडामिया नट्स के प्रसंस्करण से न केवल कर्नेल (गिरी) का, बल्कि उप-उत्पादों का भी कुशल उपयोग होता है। कर्नेल के सभी आकारों और कर्नेल डस्ट को खुदरा उत्पाद (जैसे- नट्स) के रूप में बेचा जाता है और औद्योगिक उपयोग के लिए, जैसे आइसक्रीम, बिस्कुट व कुकीज में उपयोग किया जाता है। मैकाडामिया तेल के लिए, कर्नेल से तेल निकाला जाता है। यह तेल उच्च फ्लैश पॉइंट के साथ होता है, जिससे यह खाना पकाने के लिए आदर्श बनता है और इसका हल्का स्वाद इसे विभिन्न व्यंजनों के लिए उपयोगी बनाता है।

कीट प्रबंधन: क्योंकि अभी मैकाडामिया भारत के उत्तरी-पश्चिम राज्यों के लिए एक नया फल वृदा है, तो इसके कीटों द्वारा प्रभावित होने की ज्यादा जानकारी नहीं है। कुछ मुख्य कीट जो इसे नुकसान पहुंचाते हैं, उनमें मैकाडामिया फूल कैटरपिलर, फल स्पोटिंग बग, केला स्पोटिंग बग, मैकाडामिया नटबोरर और मैकाडामिया फेल्टेड कोकसिड शामिल हैं। इनमें से कोई भी कीट अगर ज्यादा संख्या में हो जाए, तो पूरी फसल बर्बाद कर सकता है। इसके अलावा, मैकाडामिया ट्विग-गर्डलर और लीफमाइनर जैसे कीट पौधे की पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे उपज पर अप्रत्यक्ष असर पड़ता है। कुछ छोटे कीट भी कभी-कभी नुकसान पहुंचा सकते हैं।



मैकाडामिया फेल्टेड कोकसिड

इन कीटों से बचाव के लिए एकीकृत कीट प्रबंधन प्रणाली अपनाने की सलाह दी जाती है। इस पद्धति में कीटों की संख्या की निगरानी की जाती है और जब तक वे एक निश्चित स्तर (कार्यवाही स्तर) तक नहीं पहुँचते, तब तक कीटनाशक नहीं डालना चाहिए। कार्यवाही स्तर वह बिंदु होता है जब कीटों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि फसल को आर्थिक नुकसान होने लगे। इस प्रणाली का उद्देश्य यह है कि कीटों की संख्या को प्राकृतिक तरीकों से नियंत्रण में रखा जाए और रसायनों का उपयोग कम से कम किया जाए।

विकार

मैकाडामिया डिक्लाईन

मैकाडामिया के प्रमुख उत्पादन क्षेत्रों की रिपोर्ट के आधार पर यह देखा गया है कि मैकाडामिया के कुछ परिपक्व, फल देने वाले पेड़ों में एक विकार देखा गया है जिसमें पेड़ धीरे-धीरे कमजोर हो जाता है। इसके लक्षण कुछ हद तक अन्य फलों के पेड़ों में फाइटोफ्थोरा रोग से होने वाली मृत्यु जैसे होते हैं। इस स्थिति में पहले पत्तियाँ कांस्य रंग की हो जाती हैं, फिर सड़ने लगती हैं और आखिरकार झड़ जाती हैं। अंत में केवल छोटी और विकृत नई पत्तियों का एक गुच्छा शाखाओं पर बचता है, जो बाद में गिर जाता है। इस गिरावट का कोई निश्चित कारण नहीं पाया गया है - न कोई रोग, न पोषण की कमी और न ही कोई स्पष्ट पर्यावरणीय तनाव।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जब फसल (फल) बहुत अधिक कार्बोहाइड्रेट की मांग करती है, तो पेड़ के अंदर कार्बोहाइड्रेट का असंतुलन हो जाता है।

जब भी कोई कारण (जैसे- धूप की कमी या तनाव) प्रकाश संश्लेषण को कम करता है, तो उपलब्ध सीमित कार्बोहाइड्रेट पहले फलों को मिलते हैं और जड़ों को सबसे कम मिलते हैं। इससे जड़ें कमजोर हो जाती हैं और वे पत्तियों तक पर्याप्त पानी और पोषक तत्व नहीं पहुंचा पातीं, जिससे पत्तियाँ और भी खराब हो जाती हैं। इस समस्या से पेड़ तभी उबर सकता है जब उसकी जड़ों को दोबारा पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट मिलना शुरू हो जाए।

उपरोक्त व्याख्यान से यह निष्कर्षात्मक सुझाव दिए जाते हैं कि हिमाचल प्रदेश के उपोष्ण निचले पहाड़ी तथा तलछट क्षेत्रों में मैकाडामिया की खेती एक लाभकारी विकल्प हो सकता है। इस क्षेत्र में जलवायु अपेक्षाकृत अनुकूल है, शुरुआती वर्षों में कोहरे व सूखे की आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए एकीकृत पोषण प्रणाली व उचित सिंचाई प्रबंधन सहित इस फसल को किसानों को उच्च लाभ देने वाले विकल्प के रूप में विकसित किया जा सकता है।

“मैकाडामिया की खेती को अपनाना केवल एक विकल्प नहीं है, बल्कि यह उत्तर-पश्चिमी उपोष्ण हिमाचली क्षेत्र के किसानों के लिए एक सतत और समृद्ध भविष्य सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण कदम है।”



भारत की प्रभुसत्ता और अखंडता बनाए रखने के लिए हिंदी का प्रचार अत्यंत आवश्यक है।

- महाकवि शंकर कुरूप

राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा के रूप में हिंदी से बलशाली कोई तत्व नहीं है।

- लाला राजपत राय

हिन्दी का आंदोलन समूचे देश को आत्म निर्भर और समृद्ध बनाने का संकल्प है।

- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

बहुआयामी कृषि एवं कृषिगत उद्यमों पर आधारित सफलता की एक कहानी

द्वारका¹ एवं निशा चढ़ार²

¹जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

²महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आय के विविध स्रोतों का विकास लघु एवं सीमांत किसानों के लिए स्थायी आजीविका का आधार बनता जा रहा है। प्रस्तुत लेख “किसान निरंजन मंडल ने विविध स्रोतों से आय बढ़ाकर चमकाई स्वयं की किस्मत” में एक साधारण कृषक की प्रेरक सफलता-गाथा का विश्लेषण किया गया है, जिसने पारंपरिक एकल फसल-आधारित खेती से आगे बढ़कर बहुआयामी कृषि एवं कृषिगत उद्यमों को अपनाकर आर्थिक उन्नति प्राप्त की। अध्ययन से ज्ञात होता है कि फसल विविधीकरण, सब्जी उत्पादन, बागवानी, पशुपालन, मत्स्यपालन तथा पूरक कृषि-व्यवसायों के समन्वित मॉडल ने निरंजन मंडल की आय को वर्षभर स्थिर और बहुगुणित बनाया, साथ ही कृषि जोखिम को भी कम किया। निरंजन मंडल द्वारा उन्नत कृषि तकनीकों,

प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा सरकारी योजनाओं का प्रभावी उपयोग कर संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन किया गया, जिससे उत्पादकता, लाभांश तथा बाजार पहुँच में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। विविध आय स्रोतों के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई, रोजगार के अवसर बढ़े तथा जीवन-स्तर में सुधार आया। यह केस-अध्ययन दर्शाता है कि एकीकृत कृषि प्रणाली एवं बहु-आय मॉडल ग्रामीण किसानों के लिए आत्मनिर्भरता, जोखिम प्रबंधन और सतत विकास का प्रभावी मार्ग है। अतः किसानों को विविधीकृत कृषि-उद्यम अपनाने हेतु तकनीकी मार्गदर्शन, वित्तीय सहयोग तथा विपणन समर्थन उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है, जिससे कृषि-आधारित आजीविका अधिक सुदृढ़ एवं समृद्ध बन सके।

1. किसान का सामान्य परिचय

किसान का पूरा नाम	:	निरंजन मंडल
आयु	:	30
गाँव	:	उड़की
तहसील	:	पन्ना
जिला	:	पन्ना
राज्य	:	मध्यप्रदेश
शैक्षणिक योग्यता	:	दसवीं
परिवार की स्थिति	:	6 सदस्य
मुख्य व्यवसाय	:	कृषि



2. प्रारंभिक स्थिति (संघर्ष का दौर)

- **पहले खेती की स्थिति कैसी थी-** पहले पानी की कमी के कारण खेती की स्थिति सही नहीं थी। पिता जी रिक्शा चलाते थे और मैं मजदूरी करता था जिससे केवल परिवार का भरण पोषण ही हो पाता था बचत नहीं हो पाती थी। परंपरागत खेती से मुनाफा नहीं हो रहा था खेत की मिट्टी भी अधिक उपजाऊ नहीं थी। केमिकल फर्टिलाइजर प्रयोग करके ही थोड़ा बहुत उपज मिल रही थी।
- **भूमि का आकार -** बड़ी जोत (5.5 हेक्टेयर)।
- **पहले कौन-कौन सी फसलें उगाई जाती थीं-** पहले परंपरागत रूप से गेहूँ और धान की खेती करते थे।
- **आय कितनी थी-** पहले आय ज्यादा नहीं थी कर्जा लेकर खेती करते थे और फिर खेती से जो भी आय होती थी उससे कर्ज चुकते थे। इस

प्रकार सीमित आय के चलते आर्थिक स्थिति संबल नहीं थी और जरूरत पड़ने पर पुनः ऋण लेना पड़ता था।

- **प्रमुख समस्याएँ-** कम उत्पादन, कर्ज, सिंचाई की समस्या, बाजार उपलब्ध न होना, कीट-रोग की समस्या, मौसम और आपदा इन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ता था जिससे पैदावार में कमी के साथ फसल नष्ट होने का संकट भी था।

3. बदलाव की सोच और प्रेरणा

- **बदलाव करने की प्रेरणा कहाँ से मिली-** कई प्रशिक्षण और टीवी के माध्यम के अलावा कृषि विज्ञान केंद्र, पन्ना, म.प्र. और समर्थन (रिलायंस फाउंडेशन) के माध्यम से परंपरागत खेती के अलावा कुछ अलग करने और मौसम की आपदा से बचने के लिए बदलाव करने की सोच आई।

- **नया प्रयोग करने का निर्णय क्यों लिया-** कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा बताई गई नई नई तकनीकों के द्वारा उन्नत खेती करने का निर्णय लिया जिसमें प्रमुख रूप से आम का बगीचा, मत्स्य पालन और मुर्गी पालन करने का निर्णय लिया। भूमि अधिक उपजाऊ न होने के कारण फसल उत्पादन करना कठिन था इसलिए बागवानी और मत्स्य पालन पर ध्यान देने का निर्णय लिया।

4. अपनाई गई नई तकनीक/नवाचार

- **नई फसल/उन्नत किस्म-** केंद्रों के समर्थन और सरकारी योजनाओं के द्वारा खेती करने के नई-नई तकनीकों जैसे ड्रिप सिंचाई प्रणाली का लाभ मिला एवं नई फसलों में केला, आम, कटहल, आंवला, नींबू, अमरूद, मोरिंगा और अंगूर प्रमुख हैं। केला में जी 9, आम में हिमसागर, बॉम्बे कलकत्ता, दशहरी, सुन्दरजा, नीलम प्रमुख किस्में हैं। आज के समय में लगभग 400 से भी अधिक आम के वृक्ष हैं जो फल दे रहे हैं। एवं इनकी संख्या में भी बढ़ोतरी कर रहे हैं। इससे अच्छा मुनाफा प्राप्त हो जाता है। इन सभी पेड़ों में ग्राफ्टिंग जैसी तकनीकों का प्रयोग किया है जिससे अधिक बजनी एवं बड़े आकार के फल प्राप्त होते हैं।
- **जैविक खेती/प्राकृतिक खेती-** परंपरागत खेती में खाद, बीज, उर्वरक जुताई, खेत की तैयारी के लिए साधन बाहर से लाना पड़ता है जिससे लगत ज्यादा आती है और मुनाफा कम होता है लेकिन जैविक खेती में संसाधन खेत पर हो तैयार हो जाते हैं जैसे वर्मीकम्पोस्ट, जीवामृत, बीजमृत, नीमास्र और डीकंपोजर खेत पर ही तैयार कर लेते हैं जिससे लगत कम और आय में वृद्धि होती है। पशुपालन करने से गोबर एवं गौमूत्र आसानी से मिल जाता है जिससे प्राकृतिक खेती करना आसान हो गया है।
- **एकीकृत कृषि प्रणाली-** फसलों के साथ-साथ एकीकृत कृषि प्रणाली में मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, सब्जी की खेती और फल के बगीचे प्रमुख हैं।
- **ड्रिप/सिंचकलर सिंचाई-** वर्तमान में फल और सब्जी में ड्रिप प्रणाली का प्रयोग करते हैं। मुख्य रूप से ड्रिप सिंचाई का प्रयोग गर्मी के मौसम में करते हैं जिससे सीमित जल में सिंचाई हो सके। नए पौधों को पर्याप्त पानी देना इसी से संभव है। खेत से निकले खरपतवार का प्रयोग वर्मी कम्पोस्ट के रूप में करते हैं, जो स्वयं की खेती के लिए पर्याप्त हो जाता है।
- **मत्स्य पालन-** मछली पालन हमारा प्रमुख व्यवसाय है। मछलियों को बच्चों की तरह पालना पड़ता है जिसमें तालाब का समय-समय पर पानी बदलना पड़ता है। इससे प्राप्त मछली की बीट वाला तालाब का पुराना पानी फसलों में दे देते हैं जो एक खाद के रूप में कार्य करता है, चूना डालना पड़ता है। वर्तमान में रोहू, कतला, सौर और ग्लासकट जैसी प्रमुख 7-8 किस्में हैं।

5. प्रशिक्षण और तकनीकी सहयोग

- कृषि विज्ञान केंद्र, पन्ना, म.प्र. के द्वारा जैविक और प्राकृतिक खेती करने का प्रशिक्षण लिया और वर्तमान में आधे हिस्से में जैविक खेती

सफलता पूर्वक कर रहे हैं। समय समय पर केंद्र द्वारा नई तकनीकों के बारे में जानकारी दी जाती है।

6. लागत, उत्पादन और आय में बदलाव

- पहले की तुलना में लागत, अब की लागत की तुलना में ज्यादा अंतर नहीं है परंतु पहले की तुलना में आमदनी में लगभग 70 प्रतिशत तक उत्पादन में वृद्धि हुई है। जोखिम में कमी में पहले कर्ज लेकर खेती करते थे तो कुछ ज्यादा आय नहीं हो पाती थी लेकिन नई और उन्नत तकनीक का प्रयोग करने से खर्च के साथ-साथ काफी बचत भी हो जाती है। बागवानी फसलों से भी अधिक आमदनी हो जाती है।

7. विपणन और मूल्य संवर्धन

- खेत में जो भी सब्जी, फल का उत्पादन होता है उसे स्वयं सीधे बाजार या मंडी में बेच देते हैं।

8. सामाजिक और पारिवारिक प्रभाव

- जब से उद्यानिकी फसलों, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, की नई-नई तकनीकों और उन्नत खेती की ओर कदम बढ़ाया है, तब से परिवार की आर्थिक स्थिति में सुधार और बच्चों की शिक्षा में सुधार हुआ है। इसी के साथ गाँव के अन्य किसानों को भी जैविक, प्राकृतिक और बागवानी फसलों के साथ साथ मुर्गी और मत्स्य पालन की भी प्रेरणा देते रहते हैं।

9. सम्मान, पुरस्कार और पहचान

- **जिला स्तर-** 2023 में कृषि विज्ञान केंद्र, पन्ना के द्वारा जिले के प्रथम बागवानी और उन्नत किसान का पुरस्कार और प्रशस्ति पत्र प्रदान हुआ है।
- **राज्य-** राज्य स्तरीय लेवल पर जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर, म.प्र. द्वारा जैविक खेती का प्रशस्ति पत्र प्रदान हुआ।
- **मीडिया कवरेज-** इस दौरान कई मीडिया कवरेज हुई जिसमें दूरदर्शन और जिला स्तरीय कई संवाद हुए हैं।

10. भविष्य की योजनाएँ

- भविष्य में खेती के विस्तार के साथ-साथ नई तकनीक अपनाने एवं बकरी पालन, मत्स्य पालन और मुर्गी पालन को प्रमुख रूप से बढ़ाना मेरा उद्देश्य है, और साथ ही साथ पूरे कृषि योग्य क्षेत्र में बागवानी फसलों को बढ़ाने की योजनाएं हैं। और किसानों को प्रशिक्षण देना जिससे वे अपनी परंपरागत खेती को उन्नत खेती के रूप में बढ़ा पाए।

11. अन्य किसानों के लिए संदेश

- अगर किसानों को अपनी आय और घर की स्थिति में कृषि के माध्यम के सुधार लाना है तो परंपरागत खेती को छोड़ना होगा और जैविक, प्राकृतिक खेती के साथ मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, मशरूम उत्पादन, बकरी पालन की ओर कदम बढ़ाना होगा जिससे आपके परिवार का भरण पोषण ही नहीं बल्कि लागत की काफी बचत और आय में वृद्धि भी होगी।



फसल उत्पादन



पशुपालन



कुक्कुट पालन



बागवानी-आम, अमरुद, अंगूर, आंवला



मत्स्य पालन



सिंचाई जल हेतु कुआं एवं वर्मीकम्पोटिंग यूनिट



स्मार्ट कृषि: भारतीय खेती में एक क्रांति

आर. के. कुमावत

तकनीकी महाविद्यालय, सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत की असली ताकत उसकी खेती में है, और उसकी पहचान उसके मेहनतकश किसानों से है। आज भी देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। लेकिन समय के साथ खेती की चुनौतियां भी बदल गई हैं। आज का किसान केवल बीज बोकर और समय पर सिंचाई करके फसल उगा पाने की स्थिति में नहीं है। जलवायु परिवर्तन, अनिश्चित बारिश, घटती भूमि उर्वरता, कीटों का अचानक हमला, बढ़ती लागत और बाजार की अस्थिर कीमतें, ये सभी मिलकर खेती को घाटे का सौदा बना रही है। ऐसे में किसानों को सिर्फ कड़ी मेहनत नहीं, बल्कि स्मार्ट मेहनत की जरूरत है।

आज का युग डिजिटल युग है, और जैसे हर क्षेत्र में तकनीक ने क्रांति ला दी है, वैसे ही कृषि में भी अब “स्मार्ट खेती” की शुरुआत हो चुकी है। इस नई सोच के केन्द्र में इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) और सेंसर तकनीक है, जो खेती को वैज्ञानिक, सटीक और डेटा पर आधारित बना रही है। अब किसान मिट्टी को हाथ से नहीं टटोलें, बल्कि मिट्टी की नमी मापने वाले सेंसर उन्हें मोबाइल पर तुरन्त यह जानकारी दे देते हैं कि खेत को पानी की जरूरत है या नहीं। इससे न केवल पानी की बचत होती है, बल्कि बिजली और समय की भी बचत होती है। इसी तरह तापमान, आर्द्रता, प्रकाश, पी.एच. और पोषक तत्वों को मापने वाले सेंसर यह बताते हैं कि पौधे की क्या जरूरत है और वह किन परिस्थितियों में बेहतर बढ़ सकता है। इन सेंसर से मिलने वाला डेटा क्लाउड सर्वर पर जाता है, जहां AI (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) और ML (मशीन लर्निंग) की मदद से उसका विश्लेषण होता है और फिर मोबाइल ऐप के जरिए किसान को सटीक सलाह मिलती है।

आज किसान मोबाइल से ही यह देख सकते हैं कि अगले कुछ दिनों में बारिश होगी या नहीं, किस दिन दवा छिड़कना सबसे उपयुक्त रहेगा, कौन-सी फसल उनकी मिट्टी और मौसम के अनुसार सबसे उपयुक्त रहेगी, और कब कटाई करनी चाहिए। इससे उत्पादन में 20-30 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी देखी गई है। साथ ही, लागत घटने से मुनाफा भी बढ़ रहा है। स्मार्ट कृषि का एक और लाभ यह है कि यह सिर्फ बड़े किसानों के लिए नहीं है। यदि सही प्रशिक्षण, मोबाइल कनेक्टिविटी और सरकारी सहायता मिले, तो छोटे और सीमांत किसान भी इस तकनीक से जुड़ सकते हैं। सरकार और सरदार बल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षण शिविर और डेमो फार्म किसानों को यह समझने में मदद कर रहे हैं कि तकनीक कोई जटिल चीज नहीं, बल्कि एक सहयोगी औजार है। आज किसान केवल हल और बैलों तक सीमित नहीं है, वे मोबाइल ऐप, स्मार्ट सेंसर, ओर ड्रोन इमेजिंग जैसी तकनीकों के जरिये अपने खेत को डिजिटल खेत में बदल रहे हैं। जो किसान कभी मौसम और किस्मत के भरोसे थे, अब वे डेटा और विज्ञान के

आधार पर निर्णय ले रहे हैं। कुल मिलाकर, स्मार्ट कृषि यानी IoT और AI आधारित खेती किसानों के लिए एक नई दिशा, एक नई उम्मीद, और एक नया आत्मविश्वास है। यह बदलाव न सिर्फ उनकी आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि यह खेती को भविष्य के लिए सुरक्षित और सतत् भी बनाता है।

स्मार्ट कृषि एवं तकनीक ढांचा

इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) एक उन्नत तकनीकी अवधारणा है, जिसके अन्तर्गत भौतिक उपकरण जैसे सेंसर, मशीनें, ड्रोन, सैटेलाइट और अन्य स्मार्ट यंत्र इंटरनेट के माध्यम से आपस में जुड़े होते हैं। ये सभी उपकरण एक-दूसरे से डेटा साझा करते हैं और उस डेटा के आधार पर उपयोगकर्ता को वास्तविक समय में सटीक जानकारी प्रदान करते हैं। कृषि के क्षेत्र में (IoT) का उपयोग खेती स्मार्ट और डेटा-संचालित बनाने के लिए किया जा रहा है। खेत में स्थापित सेंसर मौसम, मिट्टी, पौधों की स्थिति और अन्य पर्यावरणीय मापदंडों का डेटा निरंतर एकत्रित करते हैं। सेंसर तकनीक स्मार्ट कृषि का मूल आधार है। सेंसर कई प्रकार के होते हैं जैसे:

- **तापमान सेंसर:** मिट्टी और वायुमंडल के तापमान की निगरानी करते हैं।
- **मिट्टी का नमी सेंसर:** यह निर्धारित करते हैं कि खेत में कब और कितनी सिंचाई की आवश्यकता है।
- **पीएच सेंसर:** मिट्टी की अम्लता या क्षारीयता को मापता है, जो फसल के अनुकूल उर्वरक तय करने में सहायक होते हैं।
- **NPK सेंसर:** यह मिट्टी में उपस्थित नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की मात्रा को मापता है।
- **प्रकाश सेंसर:** फसलों को मिलने वाली सूर्य की रोशनी की तीव्रता को मापता है।
- **हवा और वर्षा सेंसर:** मौसम के पूर्वानुमान और छिड़काव की योजना बनाने में उपयोगी होते हैं।

इन सभी सेंसर से प्राप्त आंकड़े एक स्थानीय IOT गेटवे या सीधे क्लाउड सर्वर पर भेजे जाते हैं, जहां उन्हें सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जाता है और आगे विश्लेषण के लिये भेजा जाता है।

AI और IOT का समन्वय कृषि प्रणाली का आधुनिक एवं स्वचालित बनाने की दिशा में अगला कदम है। यहां AI (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) और ML (मशीन लर्निंग) तकनीकों का उपयोग डेटा के गहन विश्लेषण और पूर्वानुमान में किया जाता है। उदाहरण के लिए:

- अगर मिट्टी की नमी का स्तर लगातार घट रहा है, तो एआई मॉडल यह सुझाव दे सकता है कि अगले 24 घंटे में कितनी मात्रा में पानी की आवश्यकता होगी।
- यदि फसल के पत्तों का रंग या बनावट बदली हुई है, तो एआई यह संकेत दे सकता है कि पौधों में किसी पोषक तत्व की कमी या रोग का प्रारम्भ हो सकता है।
- मौसम के पूर्वानुमान और फसल विकास मॉडल के संयोजन से यह तय किया जा सकता है कि फसल कटाई कब करना उपयुक्त होगा।

यह सारा कार्य मोबाइल ऐप, वेब डैशबोर्ड या स्वचालित उपकरणों के माध्यम से किसान तक पहुंचता है, जिससे किसान निर्णय लेने में आत्मनिर्भर हो पाता है। इस तकनीकी ढांचे का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह खेती को अनुमान आधारित से बदलकर डेटा आधारित बनाता है जिससे न केवल उत्पादन बढ़ता है, बल्कि संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग भी संभव हो पाता है।

प्रमुख अनुप्रयोग क्षेत्र

सटीक सिंचाई: परंपरागत सिंचाई पद्धतियों में पानी की अत्यधिक बर्बादी होती है। सटीक सिंचाई प्रणाली में 'मृदा नमी सेंसर, वाष्पोत्सर्जन' डेटा और एआई आधारित मौसम पूर्वानुमान के माध्यम से फसल की वास्तविक जल आवश्यकता को मापा जाता है। इसके आधार पर सिंचाई ऑटोमेटिक रूप से शुरू या बंद की जा सकती है। जैसे जैन इरिगेशन और नेटाफिम जैसी कंपनियां ऐसे स्मार्ट ड्रिप सिस्टम बना चुकी हैं जो नमी स्तर के अनुसार बूंद-बूंद सिंचाई करते हैं। इससे पानी की 30-50 प्रतिशत तक बचत संभव हो जाती है, साथ ही बिजली और पंपिंग लागत भी घटती है। किसान मोबाइल ऐप से यह तय कर सकते हैं कि किस खेत में कब और कितनी मात्रा में पानी देना है।

फसल और मिट्टी प्रबंधन: स्वस्थ मिट्टी और मजबूत फसल उत्पादन के लिए खेत की पोषक स्थिति की निरन्तर निगरानी हो। इसके लिए आजकल एन.पी.के. सेंसर, मृदा पी.एच. सेंसर और विद्युत चालकता सेंसर का उपयोग किया जाता है जो यह बताते हैं कि मिट्टी में कौन-सा पोषक तत्व की कमी है। मल्टीस्पेक्ट्रल इमेजिंग ड्रोन और एआई एल्गोरिद्म फसलों की पत्तियों, रंग और बनावट का विश्लेषण करके विकास की अवस्था, पोषक जरूरतें और संभावित रोगों की पहचान करते हैं। इससे किसान समय रहते उर्वरक या कीटनाशकों का सही छिड़काव कर सकते हैं।

कीट और रोग पूर्वानुमान: फसलों में रोग लगना या कीटों का प्रकोप अचानक होता है, जिससे भारी नुकसान हो सकता है। आजकल एआई आधारित कीट पहचान मॉडल और ट्रैप कैमरा छवि प्रसंस्करण प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है, जो फसल के पत्तों या फूलों की छवियों के आधार पर यह पहचान सकते हैं कि कौन-सा रोग या कीट है और उसकी तीव्रता कितनी है। माइक्रोसॉफ्ट ने ICRISAT के सहयोग से एक एआई मॉडल विकसित किया जो मूंगफली में बीमारी की प्रारंभिक पहचान कर लेता है।

इससे समय से पहले उपचार संभव होता है और रासायनिक लागत भी घटती है।

मौसम और पर्यावरण डेटा विश्लेषण: फसल की बुवाई, सिंचाई, दवा छिड़काव और कटाई इन विषय से संबंधित निर्णयों में मौसम की सटीक जानकारी अत्यंत आवश्यक होती है। IoT आधारित स्वचालित मौसम स्टेशन खेत के स्तर पर सूक्ष्म जलवायु डेटा प्रदान करते हैं। इन आंकड़ों को एआई आधारित माइक्रो क्लाइमेट मॉडलिंग सिस्टम द्वारा संसाधित किया जाता है जो यह बताता है कि अगले कुछ दिनों में बारिश, तापमान या आर्द्रता कैसे रहेगी। इससे किसान अपने क्रियाकलापों की योजना सटीकता से बना सकते हैं।

भंडारण और आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन: फसल का भंडारण भी स्मार्ट बन चुका है। अब IOT आधारित स्मार्ट स्टोरेज सेंसर जैसे कि कार्बनडाइ-ऑक्साइड, तापमान और आर्द्रता सेंसर गोदामों में लगे रहते हैं जो फसल की गुणवत्ता बनाए रखने में मदद करते हैं। यदि तापमान या नमी आदर्श स्तर से ऊपर या नीचे जाती है, तो किसान को तुरंत अलर्ट मिल जाता है। साथ ही, RFID Tags और GPS आधारित ट्रैकिंग सिस्टम आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता लाते हैं। उपभोक्ता तक फसल कहां से और कैसे पहुंची यह जानकारी अब डिजिटल प्लेटफॉर्म से ट्रैक की जा सकती है, जो निर्यात को सुनिश्चित करता है।

भारत में स्मार्ट कृषि की पहलें

भारत सरकार और विभिन्न निजी व सार्वजनिक संस्थाएं कृषि को डिजिटल और सटीक बनाने के लिए विभिन्न योजनाएं और प्रोजेक्ट चला रही हैं। इन पहलों का उद्देश्य खेती को लाभदायक, वैज्ञानिक, और पर्यावरण संवेदनशील बनाना है। कुछ प्रमुख प्रयास और केस स्टडी इस प्रकार हैं:

Microsoft-ICRISAT प्रोजेक्ट (आंध्र प्रदेश): माइक्रोसॉफ्ट ने अंतर्राष्ट्रीय अर्ध शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (ICRISAT) के साथ मिलकर आंध्र प्रदेश में एक एआई आधारित प्रणाली विकसित की, जिसमें मौसम पूर्वानुमान, मिट्टी की स्थिति, और फसल की आवश्यकताओं का विश्लेषण करके किसानों को संदेश और मोबाइल ऐप के माध्यम से सलाह दी जाती है। इस तकनीकी से किसानों की आय में औसतन 30 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज की गई।

एग्रीटेक स्टार्टअप (Fasal, Dehaat, CropIn): Fasal, IoT और एआई आधारित फसल निगरानी प्रणाली है। कर्मीज मोबाइल प्लेटफॉर्म है जो किसानों को बीज, उर्वरक, परामर्श, और उत्पाद बाजार तक पहुंच प्रदान करता है। CropIn कृषि डेटा एनालिटिक्स प्लेटफॉर्म है जो BRB स्तर बीमा, वित्त और सफ्टवेयर चैन के लिये उपयोग किया जाता है।

SVPuat, Meerut शोध आधारित स्मार्ट कृषि नवाचार: सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, मेरठ द्वारा स्मार्ट इरिगेशन प्रोटोटाइप, स्वचालित स्प्रे सिस्टम और IoT आधारित सेंसर किट विकसित किए जा रहे हैं। छात्रों और शोधकर्ताओं द्वारा "SPYROO"

जैसे रोबोटिक मॉडलों पर काम किया गया है जो फसलों की पहचान कर उर्वरक का लक्षित छिड़काव करते हैं।

TCS mKRISHI प्लेटफॉर्म: टॉटा कंसल्टेन्सी सर्विसेस (TCS) द्वारा विकसित mKRISHI मोबाइल आधारित प्लेटफॉर्म है जो किसानों को उनकी स्थानीय भाषा में परामर्श, मौसम की जानकारी, और बाजार मूल्य उपलब्ध कराता है।

राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस कृषि मिशन (NeGPA): कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित यह कार्यक्रम राज्यो के साथ मिलकर किसानों को डिजिटल सेवाएं उपलब्ध कराता है।

डिजिटल एग्रीकल्चर मिशन (2021-2025): इस मिशन के अंतर्गत भारत सरकार IoT, AI, ML, ड्रॉन्स, ब्लॉकचैन और रिमोट सेंसिंग जैसी अत्याधुनिक तकनीकों को कृषि क्षेत्र में लागू कर रही है।

पीएम-किसान ड्रोन योजना: छोटे और मध्यम किसानों को सस्ती दर पर ड्रोन उपलब्ध करने के लिए यह योजना शुरू की गई है।

आईआईटी और आईआईएससी जैसी शैक्षणिक संस्थाओं की भागीदारी: आईआईटी खडगपुर ने एआई आधारित किसान हेल्पडेस्क विकसित की है। आईआईटी बॉम्बे और आईआईएससी बेंगलूर में कृषि रोबोटिक्स और सेंसर विकसित किए जा रहे हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की पहल: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा डिजिटल कृषि में अनुसंधान, मॉडल परीक्षण और किसानों के लिए प्रशिक्षण मॉड्यूल बनाए जा रहे हैं।

भारत में स्मार्ट कृषि को बढ़ावा देने वाली ये पहलें न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से खेती को सशक्त कर रही हैं, बल्कि किसानों की आय, आत्मनिर्भरता और पर्यावरणीय स्थिरता को भी नया आधार दे रही हैं।

चुनौतियाँ और समाधान

भले ही स्मार्ट कृषि की तकनीकें खेती को आसान और लाभकारी बना रही हो, लेकिन इसे अपनाने के रास्ते में कुछ बड़ी रुकावटें भी हैं जैसे लागत बहुत ज्यादा, इंटरनेट और बिजली की कमी, तकनीकी जानकारी की कमी, डेटा की चोरी और गलत इस्तेमाल, अलग-अलग सिस्टम के बीच तालमेल की कमी इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, संस्थान, स्टार्टअप और किसान सभी को मिलकर कुछ ठोस कदम उठाने होंगे जैसे:-

सरकार और निजी कंपनिया मिलकर स्मार्ट उपकरणों को गांवों तक पहुंचाएं और किसान समूहों को साझा उपयोग के लिये उपलब्ध कराये।

स्मार्ट डिवाइस पर विशेष सब्सिडी, बिना ब्याज ऋण और स्थानीय स्तर पर IoT डिवाइस बनाने वाले स्टार्टअप को बढ़ावा देना चाहिए।

कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.), कृषि विश्वविद्यालय, एनजीओ और पंचायतें मिलकर गांवों में नियमित रूप से प्रशिक्षण शिविर लगाएँ वो भी स्थानीय भाषा में, जहां किसान अपने हॉथो से सेंसर चलाना, मोबाइल ऐप देखना और ड्रोन का काम समझना सीख सकें।

स्मार्टफोन ऐप को किसान की भाषा में बनाया जाए और उसमें वॉयस कमांड जैसी सुविधा जोड़ दी जाए जिसमें कम पढ़े लिखे किसान भी आसानी से इस्तेमाल कर सकें। कृषि डेटा से संबंधित कानून बनाए जाए जिसमें किसान के डेटा की सुरक्षा और स्वामित्व सुनिश्चित हो।

पंचायत स्तर पर एक स्थायी सहायता केन्द्र (डिजिटल किसान हेल्प डेस्क) बनाया जाए जहां किसान जाकर मोबाइल पर ऐप डाउनलोड करना, खेत का डेटा देखना या कोई तकनीकी सवाल पूछना सीख सकें।

कृषि विश्वविद्यालय या जिला प्रशासन एक चलती-फिरती डिजिटल वैन बनाए जिसमें सेंसर, सोलर किट, स्मार्ट सिंचाई प्रणाली आदि लगे हों और यह गांव-गांव जाकर किसानों को लाइव डेमो दे।

स्थानीय भाषा में यूट्यूब वीडियो, वॉटसेप समूह और रेडियो जैसे माध्यमों का उपयोग करके भी किसानों को आसान तरीके से तकनीकी ज्ञान दिया जा सकता है।

यह जरूरी है क्योंकि अगर किसान को समझ ही नहीं आया कि सेंसर से मिले नंबर का मतलब क्या है, तो वह सही फैसला कैसे लेगा? अगर मोबाइल ऐप में लिखा हुआ समझ में नहीं आया, तो वह उपयोग कैसे करेगा? इसलिए, प्रशिक्षण देना उतना ही जरूरी है जितना कि उपकरण देना। और जब एक बार किसान समझ जाता है कि यह तकनीक उसकी मेहनत कम कर रही है, पानी और पैसा बचा रही है, और उपज बढ़ा रही है तब वह तो इसे न केवल अपनाता है, बल्कि दूसरों को भी सिखाने लगता है।

भविष्य की संभावनाएं

आज खेती में जो तकनीकें हम देख रहे हैं जैसे सेंसर, मोबाइल ऐप, ड्रोन और मौसम की जानकारी वो अभी शुरूआत भर है। आने वाले समय में ये तकनीकें गांव-गांव तक पहुंचेंगी और हर किसान की खेती का हिस्सा बनेंगी। जैसे-जैसे इंटरनेट और मोबाइल की पहुंच बढ़ेगी, वैसे-वैसे किसान भी डिजिटल दुनिया के साथ जुड़ेंगे। भविष्य में किसान अपने खेत का डिजिटल नक्शा मोबाइल पर देख सकेगा। खेत के हर हिस्से की नमी, पोषण और रोग की जानकारी ऐप पर दिखेगी। इसे 'डिजिटल ट्विन' कहा जाता है यानी खेत का ह्यूबू वर्चुअल मॉडल, जो घर बैठे देखा जा सकता है। नई पीढ़ी की 5जी और सेटलाइट इंटरनेट की मदद से किसानों को रीयल-टाइम (तुरंत) मौसम की जानकारी, फसल की स्थिति और विशेषज्ञ की सलाह मिल सकेगी। अब जब किसान को पता हो कि कल बारिश होगी या हवा तेज चलेगी, तो वह समय रहते दवा छिड़क सकता है या फसल की कटाई की तैयारी कर सकता है। एक और बड़ी सुविधा होगी- 'वॉयस बेसड एआई चैटबॉट' जो किसानों की अपनी भाषा में बात करके बताएंगे कि कौन-सी फसल कब बोना है, कौन-सी खाद डालनी है,

और बाजार में फसल का क्या भाव चल रहा है। यह सुविधा मोबाइल से ही उपलब्ध होगी, जिससे अनपढ़ या तकनीकी ज्ञान कम रखने वाले किसान भी फायदा उठा सकेंगे। साथ ही, ब्लॉकचेन जैसी तकनीकों से किसान की उपज कहां से आई, कितनी अच्छी हैं? और किसने खरीदी इसका पूरा रिकार्ड सुरक्षित रहेगा। इससे बिचौलियों की भूमिका घटेगी और किसान को उसकी मेहनत का सीधा और सही मूल्य मिलेगा।

कुल मिलाकर आने वाला समय किसान के लिए बहुत सुनहरा और तकनीक से भरपूर होगा। अगर किसान थोड़ा हिम्मत करे, थोड़ा सीखने की कोशिश करे, तो वह भी इन सभी स्मार्ट तकनीकों को अपनाकर अपने खेत को डिजिटल खेत बना सकता है जो न केवल उसकी आमदनी बढ़ाएगा, बल्कि खेती को टिकाऊ और सम्मानजनक पेशा बनाएगा।

निष्कर्ष

स्मार्ट कृषि केवल एक तकनीकी परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह किसानों के जीवन, सोच और भविष्य की एक सकारात्मक शुरुआत है। यह परिवर्तन खेती को परंपरा, अनुमान और तजुबे की दुनिया से निकालकर डेटा, विज्ञान और सटीक निर्णय की दिशा में ले जा रहा है। आज जब एक किसान अपने खेत में सेंसर लगाता है, मोबाइल से मौसम

की जानकारी देखता है, और एआई की मदद से यह तय करता है कि कब पानी देना है, कब दवा छिड़कनी है तो वह सिर्फ एक किसान नहीं रह जाता, बल्कि एक आधुनिक, जागरूक और वैज्ञानिक सोच वाला किसान बन जाता है। यही तो है 'स्मार्ट किसान' जो तकनीक को अपने अनुभव के साथ जोड़कर खेती को अगले स्तर पर ले जा रहा है।

स्मार्ट कृषि केवल उपज को नहीं बढ़ाती है, बल्कि पानी, खाद, समय और श्रम सभी संसाधनों की बचत करती है। साथ ही, यह प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करती है और जलवायु संकट का मुकाबला करने में मददगार बनाती है। इस परिवर्तन की असली जड़ है 'साक्षर किसान, जागरूक किसान'। क्योंकि तकनीकी तब तक उपयोगी नहीं है, जब तक किसान उसे समझे नहीं। इसलिए हमें हर किसान को सीखने, समझने और अपनाने का अवसर देना होगा स्थानीय भाषा में, सरल पद्धति से, और नियमित प्रशिक्षण के माध्यम से। अब समय आ गया है कि हर किसान इस डिजिटल क्रांति का हिस्सा बने। स्मार्टफोन और सेंसर अब केवल शहरी जीवन की चीजें नहीं रहीं ये अब खेतों की जरूरत बन चुकी है। और जब हर खेत स्मार्ट होगा, तभी भारत भी स्मार्ट और आत्मनिर्भर बनेगा। अंततः याद रखें: 'स्मार्ट किसान ही स्मार्ट भारत की असली नींव है'।



राष्ट्रभाषा हिन्दी देश की जागरूकता और उद्बोधन का प्रतीक है।

- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

**हिन्दी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है,
यह सबकी सहोदरा है।**

- महादेवी वर्मा

**जिस हिन्दी भाषा के खेत में भावों की सुनहरी फसल लहलहा
रही है, उसकी स्वाभाविक उर्वरता अक्षुण्ण रहेगी।**

- रवीन्द्र नाथ टैगोर

ग्वार की उन्नत खेती

मुकेश कुमार मीणा एवं अर्चना अनोखे

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

दलहनी फसलों में ग्वार का विशेष योगदान है, जिसे क्लस्टर बीन्स के नाम से भी जाना जाता है। यह फसल कम पानी और कम लागत में अच्छी उपज देती है। ग्वार की फसल को खरीफ और गर्मी दोनों मौसम में उगाई जा सकती है। इसकी खेती मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश में की जाती है। क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से राजस्थान देश का सबसे बड़ा ग्वार उत्पादक राज्य है और कुल उत्पादन

का लगभग 70-85% हिस्सा प्रदान करता है। ग्वार की फलियां सब्जी के रूप में और बीज का उपयोग ग्वार-गम बनाने के लिए किया जाता है, जिसका खाद्य, औषधि एवं तेल उद्योगों में व्यापक उपयोग होता है, तथा इसका विदेशों में निर्यात किया जाता है। इसके बीज में प्रोटीन - 18%, फाइबर - 32% और एंडोस्पर्म में लगभग 30-35% गोंद होता है।



ग्वार की खेती के लिए उत्तम जलवायु एवं मिट्टी

ग्वार की फसल गर्म और शुष्क जलवायु में अच्छी तरह पनपती है, इसलिए इसकी फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। फसल को 30 से 35°C तापमान की आवश्यकता होती है। बुवाई के समय उचित अंकुरण के लिए 32 से 37°C तापमान अनुकूल रहता है। इसे अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है, जिसका पी.एच. 7 से 8 के बीच होना चाहिए। अत्यधिक पानी या जलभराव वाली मिट्टी में यह ठीक से विकसित नहीं हो पाती और जड़ों में सड़न की संभावना बढ़ जाती है।

भूमि की तैयारी

ग्वार की बुवाई के लिए मोल्ड बोर्ड हल या डिस्क हैरो से एक गहरी जुताई करनी चाहिए। उसके बाद 1-2 हल जोतना या पाटा लगाना आवश्यक होता है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उचित रूप से समतल खेत की आवश्यकता होती है। खेत की जुताई करते समय भूमि में गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिला देना चाहिए, जिससे कि भूमि की उर्वरता बढ़ जाए। यद्यपि ग्वार की जड़ें मिट्टी में नाइट्रोजन को बढ़ाती हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरक शक्ति बढ़ती है। ग्वार में अधिक पानी के भराव से जड़े सड़ने

लगती हैं इसलिए खेत में जलनिकास का भी अच्छा प्रबंधन करना आवश्यक होता है, जिससे कि खेत में पानी का भराव न हो।

ग्वार के लिए उन्नत किस्में- अच्छी पैदावार के लिए सही किस्म का चयन बहुत जरूरी है। सही किस्म का चयन करने से न केवल पैदावार बढ़ती है, बल्कि फसल की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। भारतीय बाजार में ग्वार की कई उन्नत किस्में उपलब्ध हैं, जो अच्छी पैदावार देती हैं। जिसमें कुछ अच्छी किस्में निम्न हैं:

- **जल्दी पकने वाली किस्में:** पूसा मौसमी, पूसा नवबहार, आर.जी. सी.-936, आर.जी.सी.-986, आर.जी.सी.-1002, एचडी-365, जी-563।
- **देर से पकने वाली किस्में:** पूसा सदाबहार, दुर्गा पहाड़, शरद बहार, लंपिरा, सिग्मा, मंजरी, टेस्टी तारा।

बुवाई का समय एवं विधि

ग्वार की बुवाई सामान्यतः मानसून को देखते हुए 05 से 25 जुलाई तक की जाती है। जहां सिंचाई की सुविधा है वहां फसल जून के अंतिम सप्ताह में भी की जा सकती है। गर्मियों के दौरान इसे मार्च के महीने

में भी उगाया जाता है। लेकिन इसके लिए 2-3 बार सिंचाई की जरूरत पड़ती है। बीजों को सीड ड्रिल या छिटकाव विधि से बोया जाता है, पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-45 सेमी और पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सेमी रखी जाती है। प्रति हेक्टेयर 15-20 किलोग्राम बीज पर्याप्त होते हैं।

बीज उपचार

फसल को मिट्टी जनित रोग से बचाने के लिए बीज को 2 ग्राम थीरम और 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से उपचारित किया जा सकता है। बीजों को बोने से दो-तीन दिन पहले उपचारित किया जाना आवश्यक होता है। कवकनाशी बीज उपचार के बाद बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर 40 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित किया जाता है।

सिंचाई और जल निकासी

हालांकि यह फसल सूखा सहन कर सकती है, लेकिन फूल और फली बनने के समय हल्की सिंचाई से अच्छी उपज प्राप्त होती है। यदि फसल नमी की कमी से ग्रस्त है तो फसल में सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है जिससे कि फूल और फली अच्छे से बन पाए। फसल जलभराव की स्थिति को सहन नहीं कर सकती है इसलिए खेत में उचित जल निकासी की आवश्यकता होती है।



कटाई और कड़ाई

ग्वार की फसल 110-120 दिनों में पककर तैयार हो जाता है। जब फलियाँ सूखकर भूरे रंग की हो जाएँ, तब इसकी कटाई की जाती है। कटाई के बाद फसल को धूप में सुखाना चाहिए फिर हाथ से या थ्रेसर द्वारा थ्रेशिंग की जाती है। चारे की फसल के लिए, फसल को फूल आने की अवस्था में काटना चाहिए।

उपज

उन्नत पद्धतियों को अपनाने से, औसतन ग्वार 12-16 क्विंटल उपज/हेक्टेयर का उत्पादन प्राप्त होता है। फसल को हरे चारे के लिए उगाए जाने पर 650-800 क्विंटल हरा चारा/हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन

शुरुआती अवस्था में खरपतवार नियंत्रण आवश्यक होता है। गुड़ाई एवं हाथ से निराई अथवा 'व्हील हो' और 'हैंड हो' का प्रयोग करके खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। ग्वार फली में बुवाई के 20-25 और 40-45 दिनों के बाद दो निराई-गुड़ाई पर्याप्त होती है।

फसल बुवाई के बाद एवं अंकुरण से पहले पेंडीमिथालिन 750 ग्राम प्रति हेक्टेयर का इस्तेमाल करने से खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है। और उगने के बाद उपयोग के लिए इमेजेटापायर 35-40 ग्राम/हेक्टेयर ए.आई. 150-200 लीटर में छिड़काव खरपतवार नियंत्रण के लिए उपयुक्त होता है। छिड़काव के लिए फ्लैट फैन नोजल का प्रयोग करना चाहिए।

खाद

ग्वार की जड़ें मिट्टी में नाइट्रोजन को बढ़ाती हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरक शक्ति बढ़ती है। ग्वार एक दलहनी फसल है जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करता है, इसलिए इसे बहुत अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता नहीं होती। हालांकि, फास्फोरस और पोटैश की पूर्ति उपज बढ़ाने के लिए जरूरी है। सामान्यतः 20 किग्रा नाइट्रोजन और 50 किग्रा फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देना पर्याप्त होता है।



ग्वार एक महत्वपूर्ण दलहनी एवं बहुउपयोगी फसल है, जो कम पानी, कम लागत तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती है। इसकी खेती से किसानों को बीज, सब्जी, चारा तथा ग्वार गम के रूप में अतिरिक्त आय के अवसर प्राप्त होते हैं। उन्नत किस्मों का चयन, समय पर बुवाई, बीज उपचार, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण तथा उचित सिंचाई एवं जल निकासी जैसी वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर ग्वार की उत्पादकता और गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। विशेष रूप से शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के किसानों के लिए ग्वार एक लाभदायक फसल है, जो न केवल आर्थिक लाभ प्रदान करती है बल्कि मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।



भारतीय संस्कृति की प्रतीक हिन्दी सदा ऊपर रहेगी।

- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

ग्रीन फार्मसी: पर्यावरण संरक्षण एवं सतत स्वास्थ्य की नई दिशा

मोनिका धगट¹ एवं संदीप धगट²

¹माता गुजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूमिका

मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए औषधियों का महत्वपूर्ण योगदान है, किंतु इनके अनियंत्रित उत्पादन, अत्यधिक उपयोग तथा अनुचित निस्तारण के कारण पर्यावरण पर गंभीर दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं। दवाओं के अवशेष जल, मिट्टी और वायु में पहुँचकर पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करते हैं तथा सूक्ष्मजीवों में प्रतिरोधक क्षमता जैसी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। इन चुनौतियों के समाधान के रूप में ग्रीन फार्मसी की अवधारणा सामने आई है। यह एक ऐसी समग्र पद्धति है जिसमें औषधियों का अनुसंधान, निर्माण, उपयोग और अपशिष्ट प्रबंधन इस प्रकार किया जाता है कि मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ पर्यावरण की भी रक्षा हो सके।

ग्रीन फार्मसी का अर्थ

ग्रीन फार्मसी से आशय ऐसी औषधीय प्रणाली से है जो प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करते हुए पर्यावरण के अनुकूल दवाओं का विकास और निर्माण करती है। इसमें औषधियों के पूरे जीवन-चक्र कच्चे माल के चयन से लेकर उत्पादन, पैकेजिंग, वितरण, उपयोग तथा निस्तारण तक - पर्यावरणीय प्रभाव को न्यूनतम रखने का प्रयास किया जाता है।

ग्रीन फार्मसी की आवश्यकता

आज विश्वभर में लाखों टन औषधीय रसायन विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण में पहुँच रहे हैं। अस्पतालों, औषधि उद्योगों तथा घरेलू उपयोग के बाद बची हुई दवाएँ जल स्रोतों एवं मिट्टी को प्रदूषित करती हैं। अनेक दवाएँ लंबे समय तक विघटित नहीं होतीं, जिससे जलीय जीवों, वनस्पतियों और सूक्ष्मजीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त एंटीबायोटिक दवाओं के अत्यधिक उपयोग से प्रतिरोधी जीवाणुओं का विकास एक वैश्विक स्वास्थ्य समस्या बन चुका है। इन परिस्थितियों में ग्रीन फार्मसी पर्यावरण-अनुकूल तकनीकों, प्राकृतिक औषधीय स्रोतों तथा टिकाऊ उत्पादन प्रणाली के माध्यम से इन समस्याओं को कम करने का प्रयास करती है।

ग्रीन फार्मसी के प्रमुख उद्देश्य

- पर्यावरण के लिए सुरक्षित औषधियों का विकास करना।
- औषधि निर्माण में प्रदूषण उत्पन्न करने वाले रसायनों के उपयोग को कम करना।

- प्राकृतिक एवं नवीकरणीय संसाधनों का संतुलित उपयोग सुनिश्चित करना।
- औषधीय अपशिष्ट का वैज्ञानिक प्रबंधन करना।
- जैव-अवक्रमणीय दवाओं के विकास को बढ़ावा देना।
- औषधीय पौधों एवं जैव विविधता का संरक्षण करना।
- स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाना।

ग्रीन फार्मसी के मूल सिद्धांत

1. **हरित रसायन:** ग्रीन फार्मसी का आधार हरित रसायन है, जिसके अंतर्गत ऐसी रासायनिक प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है जिनमें विषैले पदार्थों का प्रयोग कम हो, ऊर्जा की खपत घटे तथा अपशिष्ट उत्पादन न्यूनतम रहे।
2. **प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग:** औषधियों के निर्माण में औषधीय पौधों, सूक्ष्मजीवों तथा अन्य प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जैव सक्रिय यौगिकों का उपयोग किया जाता है। इससे कृत्रिम रसायनों पर निर्भरता कम होती है तथा पर्यावरणीय प्रभाव भी घटता है।
3. **सतत उत्पादन प्रणाली:** ग्रीन फार्मसी में उत्पादन प्रक्रियाओं को इस प्रकार विकसित किया जाता है कि जल, ऊर्जा तथा कच्चे माल का कम से कम उपयोग हो तथा अधिकतम संसाधनों का पुनर्चक्रण किया जा सके।
4. **सुरक्षित औषधि उपयोग:** आवश्यकतानुसार ही दवाओं का उपयोग, उचित मात्रा में सेवन तथा चिकित्सकीय सलाह का पालन ग्रीन फार्मसी का महत्वपूर्ण भाग है। इससे अनावश्यक दवा उपयोग और पर्यावरणीय प्रदूषण दोनों में कमी आती है।
5. **वैज्ञानिक अपशिष्ट प्रबंधन:** अप्रयुक्त एवं समाप्त अवधि वाली दवाओं का पृथक संग्रह, सुरक्षित निस्तारण तथा पुनर्चक्रण पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

ग्रीन फार्मसी के प्रमुख घटक

औषधीय पौधे: ग्रीन फार्मसी में अनेक औषधीय पौधों का उपयोग किया जाता है, जैसे- अश्वगंधा, तुलसी, नीम, हल्दी, गिलोय, ब्राह्मी, शतावरी एवं एलोवेरा आदि।



इन पौधों में पाए जाने वाले प्राकृतिक सक्रिय तत्व अनेक रोगों के उपचार में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

आधुनिक हरित प्रौद्योगिकी

ग्रीन फार्मसी में विभिन्न आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है-

- हरित निष्कर्षण
- जैव प्रौद्योगिकी
- एंजाइम आधारित संश्लेषण
- सूक्ष्मजीव आधारित उत्पादन
- नैनो-प्रौद्योगिकी आधारित औषधि वितरण प्रणाली

ग्रीन फार्मसी के लाभ

स्वास्थ्य संबंधी लाभ

- सुरक्षित एवं प्रभावी उपचार
- दुष्प्रभावों में कमी
- प्राकृतिक चिकित्सा को प्रोत्साहन
- बेहतर रोग प्रतिरोधक क्षमता

पर्यावरणीय लाभ

- जल एवं मिट्टी प्रदूषण में कमी
- जैव विविधता का संरक्षण
- कार्बन उत्सर्जन में कमी
- प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग

आर्थिक लाभ

- उत्पादन लागत में कमी
- स्थानीय औषधीय पौधों की मांग में वृद्धि
- किसानों एवं ग्रामीण समुदायों को रोजगार
- हर्बल एवं आयुर्वेदिक उद्योगों का विकास

भारत में ग्रीन फार्मसी की संभावनाएँ

भारत औषधीय पौधों की समृद्ध विविधता तथा आयुर्वेद, सिद्ध, यूनानी और योग जैसी पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों के कारण ग्रीन फार्मसी के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकता है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में औषधीय पौधों की वैज्ञानिक खेती, जैविक उत्पादन तथा औषधि उद्योगों में हरित तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। यदि अनुसंधान,

गुणवत्ता नियंत्रण और संरक्षण कार्यों को और सुदृढ़ किया जाए, तो भारत वैश्विक स्तर पर ग्रीन फार्मास्यूटिकल उत्पादों का प्रमुख केंद्र बन सकता है।

ग्रीन फार्मसी के समक्ष चुनौतियाँ

- औषधीय पौधों का अनियंत्रित दोहन
- गुणवत्ता मानकों की कमी
- वैज्ञानिक प्रमाणों का सीमित आधार
- अनुसंधान एवं वित्तीय निवेश की कमी
- नकली हर्बल उत्पादों की उपलब्धता
- औषधीय अपशिष्ट प्रबंधन की अपर्याप्त व्यवस्था
- जन-जागरूकता का अभाव

ग्रीन फार्मसी को बढ़ावा देने के उपाय

- औषधीय पौधों की वैज्ञानिक एवं जैविक खेती को प्रोत्साहित करना।
- हरित रसायन आधारित औषधि निर्माण तकनीकों का विकास करना।
- औषधीय अपशिष्ट के सुरक्षित संग्रह एवं निस्तारण की व्यवस्था करना।
- पर्यावरण-अनुकूल पैकेजिंग सामग्री का उपयोग बढ़ाना।
- शोध एवं नवाचार में निवेश बढ़ाना।
- स्वास्थ्य कर्मियों एवं आम जनता को जागरूक करना।
- सरकारी नीतियों एवं पर्यावरणीय नियमों का प्रभावी पालन सुनिश्चित करना।

निष्कर्ष

ग्रीन फार्मसी केवल एक औषधीय अवधारणा नहीं, बल्कि स्वास्थ्य, पर्यावरण और सतत विकास के बीच संतुलन स्थापित करने वाला एक समग्र दृष्टिकोण है। यह आधुनिक विज्ञान, पारंपरिक ज्ञान तथा पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का प्रभावी समन्वय प्रस्तुत करती है। भविष्य में बढ़ते पर्यावरणीय संकट और स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों को देखते हुए ग्रीन फार्मसी का महत्व और अधिक बढ़ेगा। यदि औषधि उद्योग, शोध संस्थान, सरकार, चिकित्सक तथा समाज मिलकर इसके सिद्धांतों को अपनाएँ, तो स्वस्थ मानव जीवन के साथ-साथ स्वच्छ एवं सुरक्षित पर्यावरण का निर्माण भी संभव होगा।



हिन्दी भारत की भाषा स्वीकार कर ली जाए तो सहज ही एकता संभव हो सकती है।

आचार्य केशवचंद्र सेन

आधुनिक कृषि: स्थिरता, नवाचार और समृद्ध भविष्य की ओर बढ़ता सशक्त कदम

हेम चन्द्र चौधरी

बीज निदेशालय, ढोली, मुजफ्फरपुर

राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा समस्तीपुर, बिहार

परिचय

कृषि मानव सभ्यता का आधार रही है, परंतु 21वीं सदी में यह केवल खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह आर्थिक विकास, पर्यावरणीय संतुलन और पोषण सुरक्षा का प्रमुख स्तंभ बन चुकी है। वैश्विक स्तर पर बढ़ती जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधन, जल संकट और जलवायु परिवर्तन ने कृषि क्षेत्र के सामने गंभीर चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा, सूखा और बाढ़ जैसी चरम मौसमी घटनाएँ फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता को प्रभावित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा स्वास्थ्य में गिरावट और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या भी बढ़ी है।

ऐसी परिस्थितियों में आधुनिक कृषि को बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें वैज्ञानिक तकनीकों, पारंपरिक ज्ञान और नवाचार का संतुलित समन्वय हो। प्रिसिजन फार्मिंग, ड्रोन तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस तथा रिमोट सेंसिंग जैसे आधुनिक उपकरण संसाधनों के कुशल उपयोग और उत्पादकता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। साथ ही, पारंपरिक ज्ञान प्रणाली जैसे फसल चक्र, मिश्रित खेती और जैविक खादों का उपयोग मृदा की उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भविष्य की कृषि को टिकाऊ, जलवायु स्मार्ट और पोषण-केंद्रित बनाना आवश्यक है, जिससे वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस दिशा में समन्वित प्रयास ही कृषि को अधिक सुदृढ़ और लचीला बना सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन और कृषि पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र के लिए एक गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है। तापमान में निरंतर वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में अस्थिरता, सूखा, बाढ़ तथा नए कीट-रोगों का प्रकोप फसल उत्पादन प्रणाली को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण न केवल फसलों की उत्पादकता घट रही है, बल्कि उनकी गुणवत्ता और पोषण मूल्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरणस्वरूप, उच्च तापमान के कारण गेहूँ की दाने भरने की अवधि कम हो जाती है, जिससे उपज में कमी आती है, जबकि धान में उच्च तापमान के कारण परागण प्रभावित होता है।

अनियमित वर्षा और अत्यधिक वर्षा की घटनाओं से मिट्टी का कटाव, पोषक तत्वों का ह्रास और जलभराव जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती

हैं, जो फसल वृद्धि के लिए हानिकारक हैं। उदाहरण के लिए, पूर्वी भारत और बिहार के कुछ क्षेत्रों में बाढ़ के कारण धान की फसल को भारी नुकसान होता है, जबकि राजस्थान और मध्य भारत में सूखे की स्थिति बाजरा और दलहनी फसलों की उपज को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, बदलती जलवायु परिस्थितियों के कारण कीटों और रोगों की नई प्रजातियाँ तेजी से फैल रही हैं। जैसे, फॉल आर्मीवर्म का मक्का फसल में तेजी से प्रसार, जो पहले सीमित क्षेत्रों तक ही था, अब व्यापक रूप से देखा जा रहा है।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए जलवायु स्मार्ट कृषि की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। जलवायु-स्मार्ट कृषि का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना, जलवायु के प्रति अनुकूलन करना और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना है। इसके अंतर्गत सूखा एवं बाढ़ सहनशील किस्मों का विकास, माइक्रो-इरिगेशन, फसल विविधीकरण और कृषि वानिकी जैसी तकनीकों को अपनाया जाता है। उदाहरण के तौर पर, भारत में “प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना” के तहत टपक सिंचाई (ड्रिप सिंचाई) को बढ़ावा देकर जल उपयोग दक्षता में सुधार किया जा रहा है। अतः जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और कृषि को टिकाऊ बनाने के लिए जलवायु-स्मार्ट कृषि को व्यापक रूप से अपनाना आवश्यक है।

जलवायु-स्मार्ट कृषि

जलवायु-स्मार्ट कृषि एक समन्वित रणनीति है, जिसका उद्देश्य बदलती जलवायु परिस्थितियों में कृषि को अधिक प्रभावी और टिकाऊ बनाना है। इसके तीन प्रमुख लक्ष्य होते हैं पहला, उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग करके फसल उत्पादकता और किसानों की आय में वृद्धि करना; दूसरा, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों जैसे सूखा, बाढ़ और तापमान वृद्धि के प्रति कृषि प्रणालियों को अनुकूल बनाना; और तीसरा, कृषि गतिविधियों से होने वाले ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करना। इस प्रकार, यह रणनीति उत्पादन, पर्यावरण संरक्षण और स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित करती है। इसके अंतर्गत प्रमुख तकनीकें निम्नानुसार हैं:

- 1. सूखा सहनशील एवं अल्प अवधि वाली किस्में-** जैसे धान की सहभागी, प्रभात, ‘राजेन्द्र नीलम धान’ और ‘डी.आर.आर. धान-42’ किस्में कम पानी में भी अच्छी उपज देती हैं और सूखे की स्थिति को सहन कर सकती हैं। इसी प्रकार, कम अवधि वाली गेहूँ किस्म ‘एच. डी.-2967’ तापमान वृद्धि के प्रभाव को कम करती है।
- 2. सूक्ष्म सिंचाई (माइक्रो-इरिगेशन)-** महाराष्ट्र और गुजरात में अंगूर, गन्ना एवं सब्जियों की खेती में ड्रिप सिंचाई अपनाने से जल उपयोग

दक्षता 30-50 प्रतिशत तक बढ़ी है और उत्पादन में भी सुधार हुआ है। साथ ही अनाज (धान्य), दलहनी एवं तिलहनी फसलों में स्पिंकलर सिंचाई पद्धति अपनाने से जल उपयोग दक्षता में कमी होती है।

3. **फसल विविधीकरण**- पंजाब और हरियाणा में धान-गेहूं प्रणाली के स्थान पर दलहनी, तिलहनी एवं मक्का को शामिल करने से मृदा स्वास्थ्य में सुधार और किसानों की आय में वृद्धि देखी गई है।
4. **कृषि वानिकी (एग्रोफॉरेस्ट्री)**- उत्तर प्रदेश और हरियाणा में पॉपलर आधारित कृषि वानिकी प्रणाली से अतिरिक्त आय के साथ कार्बन संचयन में भी वृद्धि हुई है।

मृदा स्वास्थ्य और पोषण प्रबंधन: मिट्टी की उर्वरता कृषि की रीढ़ मानी जाती है, क्योंकि यह फसल उत्पादन, पोषक तत्वों की उपलब्धता और जल धारण क्षमता को सीधे प्रभावित करती है। स्वस्थ मृदा में आवश्यक पोषक तत्वों के साथ-साथ सक्रिय सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति भी महत्वपूर्ण होती है, जो पोषक चक्रण में योगदान देते हैं। परंतु आधुनिक कृषि में अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इससे मृदा की उर्वरता में गिरावट, कार्बनिक पदार्थ की कमी और सूक्ष्मजीव गतिविधियों में कमी देखी गई है, जो दीर्घकालिक उत्पादकता के लिए हानिकारक है।

इन समस्याओं के समाधान के लिए एकीकृत पोषण प्रबंधन एक प्रभावी दृष्टिकोण है। इसके अंतर्गत रासायनिक उर्वरकों, जैव उर्वरकों और कार्बनिक स्रोतों (जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट) का संतुलित और समन्वित उपयोग किया जाता है। इससे मृदा की उर्वरता बनी रहती है और फसलों को संतुलित पोषण प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, धान-गेहूं प्रणाली में एकीकृत पोषण प्रबंधन अपनाने से न केवल उपज में वृद्धि होती है, बल्कि मृदा कार्बन स्तर में भी सुधार देखा गया है।

जैव उर्वरकों का उपयोग भी मृदा स्वास्थ्य सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये सूक्ष्मजीव आधारित उत्पाद होते हैं, जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, पी.एस.बी आदि, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं और फॉस्फोरस को घुलनशील बनाते हैं। इनके उपयोग से रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम होती है और पर्यावरणीय प्रदूषण भी घटता है।

फसल चक्र मृदा उर्वरता बनाए रखने की एक पारंपरिक और वैज्ञानिक पद्धति है। विभिन्न फसलों का क्रमिक रूप से उगाना मृदा से पोषक तत्वों के असंतुलन को रोकता है और कीट-रोगों के चक्र को भी तोड़ता है। उदाहरण के लिए, दलहनी फसलों (जैसे चना, मूंग, उर्द, अरहर इत्यादि) को अनाज फसलों के साथ उगाने से मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ती है, क्योंकि दलहनी फसलें राइजोबियम जीवाणुओं की सहायता से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। हरी खाद भी मृदा की गुणवत्ता सुधारने का एक प्रभावी उपाय है। इसमें सनई या ढ़ेंचा जैसी फसलों को उगाकर उन्हें फूल आने से पहले ही मिट्टी में पलट दिया जाता है। इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जल धारण क्षमता में सुधार होता है और

सूक्ष्मजीव गतिविधियाँ सक्रिय होती हैं।

अतः मृदा की उर्वरता को बनाए रखने और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने के लिए इन सभी उपायों का समन्वित उपयोग अत्यंत आवश्यक है। यह न केवल उत्पादन बढ़ाने में सहायक है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और दीर्घकालिक कृषि स्थिरता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रौद्योगिकी का उपयोग

डिजिटल तकनीकें आज कृषि क्षेत्र में एक नई क्रांति का आधार बन रही हैं, जिससे खेती अधिक सटीक, कुशल और लाभकारी बन रही है। ड्रोन तकनीक के माध्यम से किसान फसल की निगरानी, रोग एवं कीट की पहचान तथा उर्वरक और कीटनाशकों का सटीक छिड़काव कर सकते हैं, जिससे लागत में कमी और उत्पादकता में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, भारत में ड्रोन के उपयोग से कपास और धान की फसलों में लक्षित पर्णाय छिड़काव के अच्छे परिणाम मिले हैं।

रिमोट सेंसिंग तकनीक उपग्रह या सेंसर के माध्यम से मृदा की नमी, तापमान और पोषक तत्वों की स्थिति का आकलन करने में सहायक होती है। इससे किसान सही समय पर सिंचाई और उर्वरक प्रबंधन कर सकते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (ए.आई) और मशीन लर्निंग आधारित उपकरण फसलों में रोगों की प्रारंभिक पहचान और उत्पादन का पूर्वानुमान लगाने में मदद करते हैं, जिससे समय पर निर्णय लेना संभव होता है।

इसके अलावा, मोबाइल ऐप्स जैसे “किसान सुविधा” और “राष्ट्रीय कृषि बाजार (ई-नाम)” किसानों को मौसम पूर्वानुमान, बाजार मूल्य और कृषि संबंधी सलाह प्रदान करते हैं। इन सभी तकनीकों के समन्वित उपयोग से प्रिसिजन फार्मिंग/सटीक कृषि को बढ़ावा मिलता है, जिससे कम संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करना संभव हो जाता है और कृषि अधिक टिकाऊ बनती है।

जैविक और प्राकृतिक खेती: रासायनिक खेती के दुष्प्रभावों जैसे मृदा क्षरण, जल प्रदूषण, जैव विविधता में कमी और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव को देखते हुए जैविक खेती का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। जैविक कृषि एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के स्थान पर प्राकृतिक संसाधनों जैसे गोबर खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद और जैव उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। यह न केवल पर्यावरण के अनुकूल है, बल्कि दीर्घकालिक कृषि स्थिरता को भी सुनिश्चित करती है।

जैविक खेती का एक प्रमुख लाभ पर्यावरण संरक्षण है। इसमें रासायनिक पदार्थों का न्यूनतम उपयोग होने से मृदा, जल और वायु प्रदूषण कम होता है तथा पारिस्थितिकी तंत्र संतुलित रहता है। इसके साथ ही, यह मृदा स्वास्थ्य में सुधार करती है, क्योंकि जैविक पदार्थों के उपयोग से मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता और लाभदायक सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ बढ़ती हैं, परिणामस्वरूप मृदा अधिक उपजाऊ और जीवंत बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त, जैविक खेती से प्राप्त उत्पाद अधिक सुरक्षित और पोषक होते हैं, क्योंकि इनमें रासायनिक अवशेष नहीं होते। ऐसे खाद्य पदार्थ मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं और बाजार में इनकी मांग भी बढ़ रही है।

हालांकि, जैविक खेती के समक्ष कुछ चुनौतियाँ भी हैं। इसकी उत्पादकता प्रारंभिक वर्षों में अपेक्षाकृत कम हो सकती है, और किसानों को उचित बाजार एवं मूल्य समर्थन की आवश्यकता होती है। इसलिए, तकनीकी सुधार, प्रशिक्षण, प्रमाणन प्रणाली और मजबूत विपणन व्यवस्था के माध्यम से जैविक खेती को और अधिक प्रभावी एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

मोटे अनाज का महत्व: मोटे अनाज (मिलेट्स) जैसे ज्वार, बाजरा, मंडुआ, कंगनी, सांवा, चीना, कोदो एवं कुटकी आज के समय में, विशेषकर जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में, अत्यंत महत्वपूर्ण फसलों के रूप में उभर रहे हैं। ये फसलें कम पानी, कम उर्वरक और सीमित संसाधनों में भी अच्छी उपज देने की क्षमता रखती हैं, इसलिए इन्हें जलवायु-अनुकूल फसलें माना जाता है। शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में भी इनका सफल उत्पादन संभव है, जिससे छोटे और सीमांत किसानों के लिए यह एक सुरक्षित विकल्प बनती हैं।

पोषण की दृष्टि से मोटे अनाज अत्यंत समृद्ध होते हैं। इनमें उच्च मात्रा में आहार फाइबर, प्रोटीन, विटामिन और खनिज तत्व (जैसे आयरन, कैल्शियम और जिंक) पाए जाते हैं। उच्च फाइबर सामग्री के कारण ये पाचन तंत्र को बेहतर बनाते हैं और रक्त शर्करा (ब्लड शुगर) के स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं, जिससे मधुमेह रोगियों के लिए यह विशेष रूप से लाभकारी है।

इसके अतिरिक्त, मोटे अनाज की सूखा सहनशीलता और कम अवधि में तैयार होने की क्षमता इन्हें बदलती जलवायु परिस्थितियों के लिए उपयुक्त बनाती है। इन सभी विशेषताओं के कारण इसे “सुपर फूड” कहा जाता है। वर्तमान में सरकार और विभिन्न संस्थाओं द्वारा इनके उत्पादन और उपभोग को बढ़ावा दिया जा रहा है, जिससे पोषण सुरक्षा और टिकाऊ कृषि दोनों को मजबूती मिल रही है।

भविष्य की दिशा

आने वाले समय में कृषि को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अधिक टिकाऊ, तकनीकी रूप से उन्नत और किसान-केंद्रित बनाना अनिवार्य होगा। सबसे पहले, सतत उत्पादन प्रणाली को अपनाना आवश्यक है, जिसमें प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल और जैव विविधता का संरक्षण करते हुए उत्पादन किया जाए। इसके अंतर्गत जैविक खेती, एकीकृत पोषण प्रबंधन, संरक्षित खेती और जल-संरक्षण तकनीकों को बढ़ावा देना होगा, ताकि दीर्घकालिक उत्पादकता सुनिश्चित की जा सके। दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है स्मार्ट टेक्नोलॉजी का उपयोग। डिजिटल

कृषि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन, रिमोट सेंसिंग और इंटरनेट ऑफ थिंग्स (आई.ओ.टी) जैसी तकनीकें खेती को अधिक सटीक और कुशल बना रही हैं। इनके माध्यम से किसानों को मौसम पूर्वानुमान, फसल स्वास्थ्य, बाजार मूल्य और संसाधनों के बेहतर प्रबंधन की जानकारी मिलती है, जिससे जोखिम कम होता है और उत्पादन बढ़ता है। तीसरा, किसानों की आय वृद्धि पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिए फसल विविधीकरण, मूल्य संवर्धन, कृषि प्रसंस्करण, और बेहतर विपणन प्रणाली (जैसे ई-नाम) को बढ़ावा देना होगा। साथ ही, सहकारी मॉडल, किसान उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ) और सरकारी योजनाओं के माध्यम से किसानों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना जरूरी है।

अंततः, पोषण सुरक्षा और खाद्य विविधता को प्राथमिकता देनी होगी। केवल अनाज उत्पादन पर निर्भर रहने के बजाय दलहन, तिलहन, फल, सब्जियां और मोटे अनाज जैसी पोषक फसलों का उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। इससे न केवल कुपोषण की समस्या कम होगी, बल्कि कृषि प्रणाली भी अधिक संतुलित और लचीली बनेगी। इस प्रकार, समग्र दृष्टिकोण अपनाकर ही कृषि को भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार किया जा सकता है।

निष्कर्ष

आधुनिक कृषि आज केवल खाद्यान्न उत्पादन तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण, आर्थिक विकास और सामाजिक स्थिरता का एक महत्वपूर्ण आधार बन चुकी है। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और सीमित संसाधनों के बीच कृषि को बहुआयामी भूमिका निभानी पड़ रही है। एक ओर यह खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है, वहीं दूसरी ओर रोजगार सृजन और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करती है।

पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में आधुनिक कृषि पद्धतियों का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों जैसा कि मृदा, जल और जैव विविधता का संरक्षण करना है। इसके लिए संरक्षण कृषि, जैविक खेती, कृषि वानिकी और जल-संरक्षण तकनीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है। साथ ही, कृषि में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के प्रयास भी किए जा रहे हैं।

वैज्ञानिक नवाचार, जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन, बायोटेक्नोलॉजी और सटीक खेती, कृषि को अधिक कुशल और उत्पादक बना रहे हैं। वहीं, पारंपरिक ज्ञान जैसे फसल चक्र, मिश्रित खेती और स्थानीय किस्मों का उपयोग स्थिरता और संसाधन संरक्षण में सहायक है। इन सभी के साथ प्रभावी सरकारी नीतियाँ, किसानों को प्रशिक्षण, बाजार तक पहुंच और तकनीकी सहायता प्रदान करती हैं। इस प्रकार, वैज्ञानिक तकनीकों, पारंपरिक ज्ञान और नीति समर्थन के समन्वय से ही कृषि को भविष्य की चुनौतियों के लिए सक्षम, टिकाऊ और समावेशी बनाया जा सकता है।



ब्लैक सोल्जर फ्लाई (बीएसएफ) : अपशिष्ट प्रबंधन में उपयोगिता

नेहा बघेलकर¹, हरिओम शर्मा² एवं दीक्षा एम.जी.²

¹जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या भी लगातार गंभीर होती गई है। जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण आज विश्वभर में उत्पन्न होने वाला कचरा अभूतपूर्व स्तर तक पहुँच चुका है। विशेष रूप से खाद्य अपशिष्ट, पशुओं का मल, कृषि अवशेष तथा औद्योगिक कचरा पर्यावरण के लिए एक बड़ी चुनौती बन गए हैं। इन अपशिष्टों के अनुचित निपटान से न केवल भूमि और जल स्रोत प्रदूषित होते हैं, बल्कि वातावरण में मीथेन और कार्बन डाइऑक्साइड जैसी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी बढ़ जाता है, जो जलवायु परिवर्तन को और अधिक गंभीर बना देता है।

ऐसी परिस्थितियों में सतत और प्रभावी अपशिष्ट प्रबंधन के लिए नए एवं अभिनव समाधान खोजने की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। इसी संदर्भ में ब्लैक सोल्जर फ्लाई (बीएसएफ) एक अत्यंत उपयोगी कीट के रूप में उभरकर सामने आया है। यह कीट जिसे वैज्ञानिक रूप से हर्मेटिया इल्यूसेंस के नाम से जाना जाता है। यह परिवार स्ट्रेटियोमायिडी की एक व्यापक रूप से पाई जाने वाली मक्खी है। जो की जैविक अपशिष्ट को तेजी से विघटित करने की अद्भुत क्षमता रखता है। इसके लार्वा विभिन्न प्रकार के जैविक कचरे-जैसे खाद्य अवशेष, पशु मल और कृषि अपशिष्ट को कम समय में उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन और जैविक खाद में परिवर्तित कर सकते हैं। यह मक्खी हमारे लिए पूरी तरह से हानिरहित है क्योंकि यह न तो किसी प्रकार की बीमारी फैलाता है और न ही फसलों को नुकसान पहुँचाता है। यह कीट मुख्यतः गर्म और आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में पाया जाता है, लेकिन समय के साथ इसकी उपस्थिति विभिन्न इलाकों में तेजी से बढ़ रही ब्लैक सोल्जर फ्लाई के लार्वा, रेडवर्मस (केंचुओं) की तरह ही एक आवश्यक अपघटक की भूमिका निभाते हैं। ये जैविक पदार्थों को तोड़कर मिट्टी में पोषक तत्वों को वापस पहुँचाते हैं। लार्वा का भोजन करने की क्षमता अत्यधिक होती है और इन्हें घरेलू खाद्य अपशिष्ट तथा कृषि अपशिष्ट उत्पादों को कम्पोस्ट बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

ब्लैक सोल्जर फ्लाई को आज “प्रकृति का वरदान” माना जाता है क्योंकि ब्लैक सोल्जर फ्लाई न केवल अपशिष्ट की मात्रा को कम करने में सहायक है, बल्कि यह एक पुनर्नवीनीकरण अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा देता है, जिसमें कचरे को संसाधन के रूप में पुनः उपयोग किया जाता है। इसके उपयोग से पारंपरिक कचरा प्रबंधन प्रणालियों पर निर्भरता कम हो सकती है, साथ ही यह पशु आहार, मत्स्य पालन और कृषि के लिए एक टिकाऊ विकल्प भी प्रदान करता है। यही कारण है कि इसकी असाधारण क्षमता के कारण वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों और नीति-निर्माताओं का ध्यान तेजी से इसकी ओर आकर्षित हो रहा है। बीएसएफ के लार्वा में लगभग 40-50% प्रोटीन और 30-35% वसा होती है, जो पशु आहार, मछली पालन और

बायोडीजल उत्पादन के लिए अत्यंत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त, लार्वा द्वारा छोड़ा गया अवशेष जैविक खाद के रूप में प्रयोग होता है, जो मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से बीएसएफ जैविक कचरे को 70-80% तक कम कर सकता है, जिससे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भी कमी आती है।



जलवायु परिस्थितियाँ कचरा प्रसंस्करण में बीएसएफ के प्रदर्शन को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती हैं। बीएसएफ को पालने के लिए आदर्श तापमान 24°C से 30°C के बीच उत्तम माना गया है। 30°C से अधिक तापमान पर बीएसएफ के लार्वा भोजन के लिए ठंडी जगह खोजने लगते हैं, जबकि 24°C से कम तापमान पर उनका चयापचय धीमा हो जाता है, जिससे वे कम भोजन करते हैं। लार्वा के पाचन के लिए सबसे अनुकूल आदर्श स्थिति वह होती है जिसमें भोजन में पानी की मात्रा 60% से 90% के बीच पाई जाती हो। लार्वा के लिए उच्च प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन सबसे उपयुक्त होता है।

जीवन चक्र - इसका जीवन चक्र चार अवस्थाओं- अंडा, लार्वा, कोषस्थ और व्यस्क में विभाजित होता है। एक परिपक्व बीएसएफ का जीवनकाल लगभग 8-9 दिन होता है, और इस अवस्था में इसकी बाह्य त्वचा (क्यूटिकल) में काइटिन की मात्रा 40% तक पहुँच सकती है।

- 1. अंडा:** एक व्यस्क मादा ब्लैक सोल्जर फ्लाई एक बार में लगभग 200 से 600 अंडे देती है। ये अंडे आमतौर पर किसी दरार या सतह पर रखे जाते हैं, जो सड़े-गले पदार्थ जैसे गोबर या कम्पोस्ट के ऊपर या पास होते हैं।
- 2. लार्वा:** लार्वा अवस्था सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यही अवस्था जैविक कचरे को उपयोगी उत्पादों में बदलने की क्षमता रखती है। लार्वा अवस्था भोजन पर निर्भर करते हुए लगभग 18 से 36 दिन तक रहती है। इसमें भोजन बंद करने के बाद की प्रीयूपल (पूर्व कोशित) अवस्था लगभग 7 दिन तक चलती है। लार्वा सड़े-गले फल, सब्जियाँ, गोबर, खाद और जलीय खरपतवार जैसे पदार्थों को खाकर उनका वजन 50-70% तक कम कर देता है। यही कारण है कि इसे जैविक कचरा प्रबंधन का एक प्रभावी साधन माना जाता है।

लार्वा में उच्च मात्रा में प्रोटीन (40-50%) और लिपिड (30-35%) पाया जाता है, जो पशु, मुर्गी और मछली पालन के लिए उत्तम आहार है। इसके अलावा, लार्वा से प्राप्त उप-उत्पाद जैसे (खाद) मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ाते हैं।

घटक	प्रतिशत (%)	उपयोगिता
प्रोटीन	40-50%	पशु, मछली, मुर्गी आहार
वसा (लिपिड)	30-35%	बायोडीजल, ऊर्जा स्रोत
रेशा	10-15%	पाचन में सहायक



ब्लैक सोल्जर फ्लाई के उप-उत्पाद

जैविक खाद - लार्वा का मल, छोड़ी हुई त्वचा और बिना पचा हुआ भोजन का मिश्रण खाद होता है यह पोषक तत्वों से भरपूर, मिट्टी की उर्वरक क्षमता बढ़ाता है। पर्यावरण अनुकूल जैविक खाद, जिसका कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं होता है।

प्रोटीन युक्त आहार - लार्वा में 40-50% प्रोटीन और 30-35% वसा (लिपिड) होता है। इसका उपयोग पशु, मुर्गी और मछली पालन के लिए उच्च गुणवत्ता वाले आहार के रूप में किया जाता है। कई देशों में इसे मानव भोजन (तलकर या सुखाकर) के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

बीएसएफ ऑयल (तेल) - लार्वा से निकाला गया तेल, जिसमें वसा की उच्च मात्रा होती है। इसका उपयोग बायोडीजल बनाने में किया जाता है। पशु आहार और औद्योगिक उपयोगों में भी सहायक है।



3. कोषस्थ: लार्वा भोजन करना बंद कर देता है और एक कठोर खोल में बदल जाता है। इस अवस्था में यह स्थिर रहता है और धीरे-धीरे व्यस्क मक्खी में परिवर्तित होता है। यह अवस्था लगभग 7-10 दिन तक रहती है।

4. व्यस्क: व्यस्क मक्खी लगभग 5-8 दिन तक जीवित रहती है। यह भोजन नहीं करती, केवल पानी पीती है। इसका मुख्य कार्य प्रजनन होता है। व्यस्क मादा अंडे देती है और जीवन चक्र को पुनः शुरू करती है।



बायोडीजल और बायोगैस - लार्वा से प्राप्त वसा का उपयोग करके बायोडीजल बनाया जा सकता है। जैविक कचरे से उत्पन्न गैस को बायोगैस के रूप में ऊर्जा उत्पादन में प्रयोग किया जाता है।

काइटिन - लार्वा के बाहरी ढाँचे से प्राप्त होता है और दवा उद्योग, कॉस्मेटिक और बायोप्लास्टिक बनाने में उपयोगी होता है। ये पर्यावरण अनुकूल औद्योगिक उत्पादों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

पशु आहार पाउडर - इसके लार्वा को सुखाकर पाउडर बनाया जाता है। यह मछली पालन और पोल्ट्री उद्योग में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है।

ब्लैक सोल्जर फ्लाई से प्राप्त उप-उत्पाद न केवल कृषि और पशुपालन में उपयोगी हैं, बल्कि ऊर्जा उत्पादन, औद्योगिक उपयोग और पर्यावरण संरक्षण में भी अहम योगदान देते हैं।

आज विश्वभर में ब्लैक सोल्जर फ्लाई को भविष्य का सतत समाधान माना जा रहा है, जो न केवल खाद्य सुरक्षा और पशु आहार उद्योग को मजबूत करता है बल्कि पर्यावरण संरक्षण और नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन में भी अहम योगदान देता है।

ब्लैक सोल्जर फ्लाई का मुख्य उपयोग

- **अपशिष्ट प्रबंधन में उपयोग-** ब्लैक सोल्जर फ्लाई के लार्वा जैविक अपशिष्ट को तेजी से विघटित करने की क्षमता रखते हैं। ये भोजन के अवशेष, सब्जियों के छिलके, फल, बचा हुआ खाना, यहाँ तक कि पशुओं का मल भी खा सकते हैं। इस प्रक्रिया से अपशिष्ट का भार 70-80% तक कम हो जाता है। कई नगर निगम और उद्योग अब बीएसएफ आधारित अपशिष्ट प्रबंधन को अपना रहे हैं, जिससे लैंडफिल पर दबाव घटता है और पर्यावरणीय प्रदूषण कम होता है।
- **पशु आहार उत्पादन-** बीएसएफ लार्वा में लगभग 40-45% प्रोटीन और 30-35% वसा होती है। यह पोल्ट्री (मुर्गी पालन), मछली पालन और सूअर पालन के लिए एक उत्कृष्ट आहार है। पारंपरिक फिशमील और सोयाबीन मील की तुलना में बीएसएफ लार्वा अधिक टिकाऊ और सस्ता विकल्प है। इससे पशुपालकों को लागत कम करने और उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलती है।
- **पर्यावरणीय लाभ-** बीएसएफ आधारित अपशिष्ट प्रबंधन से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम होता है। लैंडफिल में जमा होने वाले अपशिष्ट से मिथेन और अन्य हानिकारक गैसें निकलती हैं, जबकि बीएसएफ लार्वा द्वारा अपशिष्ट विघटन से यह समस्या काफी हद तक कम हो जाती है।
- **औषधीय और शोध उपयोग-** हाल के शोधों में पाया गया है कि बीएसएफ लार्वा में एंटीमाइक्रोबियल गुण होते हैं। इससे औषधीय उत्पादों और एंटीबायोटिक विकल्पों के विकास की संभावना है। इसके अलावा, वैज्ञानिक बीएसएफ की आनुवंशिकी पर काम कर रहे हैं ताकि इसकी वृद्धि दर और अपशिष्ट विघटन क्षमता को और बढ़ाया जा सके।
- **आर्थिक और सामाजिक महत्व-** बीएसएफ आधारित उद्योग तेजी से बढ़ रहा है। यूरोप, एशिया और अफ्रीका में कई कंपनियाँ बीएसएफ पालन कर रही हैं। इससे रोजगार के नए अवसर पैदा हो रहे हैं और किसानों को सस्ता पशु आहार उपलब्ध हो रहा है। भारत में भी कई स्टार्टअप बीएसएफ आधारित अपशिष्ट प्रबंधन और पशु आहार उत्पादन पर काम कर रहे हैं।

बीएसएफ के लाभ

- **तेजी से अपशिष्ट निपटान:** कुछ ही दिनों में बड़ी मात्रा में कचरा कम कर देता है।
- **पर्यावरण-अनुकूल:** ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करता है।
- **आर्थिक लाभ:** पशु आहार और जैव ईंधन से आय का स्रोत।
- **सुरक्षित:** मनुष्यों के लिए हानिकारक नहीं।

- **सतत विकास:** पुनर्योजी अपशिष्ट को संसाधन में बदलकर अर्थव्यवस्था को बढ़ावा।

चुनौतियाँ

- **मानकीकरण की कमी:** विभिन्न अपशिष्टों पर लार्वा की वृद्धि दर अलग-अलग होती है।
- **भारी धातु संचय:** यदि अपशिष्ट में धातुएँ अधिक हों तो लार्वा असुरक्षित हो सकते हैं।
- **औद्योगिक स्तर पर विस्तार:** बड़े पैमाने पर बीएसएफ फार्मिंग के लिए तकनीकी और वित्तीय निवेश की आवश्यकता।
- **नियामक ढाँचा:** पशु आहार और खाद के रूप में उपयोग के लिए कानूनी मान्यता जरूरी।

भविष्य की संभावनाएँ

- **शहरी अपशिष्ट प्रबंधन:** महानगरों में बीएसएफ आधारित अपशिष्ट संयंत्र की स्थापना।
- **कृषि में उपयोग:** जैविक खाद और पशु आहार के रूप में व्यापक उपयोग।
- **ऊर्जा क्षेत्र:** बायोडीजल उत्पादन में औद्योगिक स्तर पर प्रयोग।
- **पर्यावरण संरक्षण:** प्रदूषण और रोगजनकों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका।

निष्कर्ष

ब्लैक सोल्जर फ्लाई (बीएसएफ) आज सतत विकास, अपशिष्ट प्रबंधन और वैकल्पिक प्रोटीन उत्पादन की दिशा में एक क्रांतिकारी समाधान के रूप में उभर रही है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके लार्वा जैविक अपशिष्ट को तेजी से विघटित कर उसे उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, वसा और जैविक खाद में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रक्रिया से न केवल लैंडफिल पर दबाव कम होता है, बल्कि ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी घटता है। पशु आहार के रूप में बीएसएफ लार्वा फिशमील और सोयाबीन मील का टिकाऊ विकल्प प्रदान करते हैं, जिससे समुद्री संसाधनों पर दबाव कम होता है और किसानों को सस्ता व पोषक विकल्प मिलता है।

इसके अतिरिक्त, लार्वा से प्राप्त वसा का उपयोग बायोडीजल उत्पादन में किया जा सकता है, जो ऊर्जा क्षेत्र में नवीकरणीय विकल्प प्रस्तुत करता है। वहीं, लार्वा द्वारा छोड़ा गया अवशेष (फ्रास) प्राकृतिक खाद के रूप में मिट्टी की उर्वरता बढ़ाता है और रासायनिक खाद पर निर्भरता कम करता है। औषधीय शोध में भी बीएसएफ से प्राप्त तत्वों के एंटीमाइक्रोबियल गुणों का उपयोग संभावित है।

इस प्रकार, ब्लैक सोल्जर फ्लाई केवल एक कीट नहीं, बल्कि पुनर्योजी अर्थव्यवस्था का आधार स्तंभ है, जो अपशिष्ट को संसाधन में बदलकर पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक लाभ प्रदान करता है। भविष्य में यह वैश्विक जैव-अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकता है।



रतनजोत (जेट्रोफा कर्कस): परिचय और विषाक्तता प्रबंधन

द्वारका¹ एवं निशा चढ़ार²

¹जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)

²महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

भारत सहित विश्व के अनेक उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में रतनजोत एक महत्वपूर्ण बहुउपयोगी पौधे के रूप में जाना जाता है। यह पौधा मुख्यतः “जैव-ईंधन



(बायोडीजल)” उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है, परंतु इसके साथ-साथ औषधीय, पर्यावरणीय एवं औद्योगिक महत्व भी अत्यधिक है। रतनजोत का पौधा सूखा-सहिष्णु, कम उपजाऊ भूमि में उगने वाला तथा सीमांत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माना जाता है। हालाँकि, इसके बीज, पत्तियाँ एवं अन्य भागों में कुछ “विषैले तत्व” पाए जाते हैं, जिनके कारण मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए रतनजोत के सुरक्षित उपयोग एवं इसके अपशिष्टों के प्रभावी प्रबंधन हेतु इसकी “विषाक्तता को कम करने के उपाय” अत्यंत आवश्यक हो जाते हैं।

रतनजोत का परिचय

वानस्पतिक वर्गीकरण

- किंगडम: प्लांटी
- क्लास/वर्ग: डाइकोटिलिडोनी
- फ़ैमिली: यूफ़ोर्बिएसी
- स्पीशीज/प्रजाति: जेट्रोफा कर्कस
- डिविजन: एंजियोस्पर्म
- ऑर्डर: माल्पिघिएल्स
- जीनस/वंश: जेट्रोफा

सामान्य नाम

- हिंदी- रतनजोत, जंगली अरंडी
- अंग्रेजी- फाइसिक नट, बारबोडोज नट
- संस्कृत- कनकबीज
- तमिल- कट्टामनक्कु
- तेलुगु- अमुडम

उत्पत्ति एवं वितरण

रतनजोत की उत्पत्ति मध्य अमेरिका मानी जाती है, परंतु वर्तमान में यह भारत, अफ्रीका, दक्षिण-पूर्व एशिया एवं लैटिन अमेरिका के अनेक देशों में व्यापक रूप से पाया जाता है। भारत में यह राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु में अधिक उगाया जाता है।

पौधे का स्वरूप

- रतनजोत एक “बहुवर्षीय झाड़ी या छोटा वृक्ष” है।

- ऊँचाई लगभग “3-5 मीटर”।
- पत्तियाँ बड़ी, हरी, हथेली के आकार की।
- फूल एकलिंगी, पीले-हरे रंग के।
- फल अंडाकार, तीन खंडों वाला।
- प्रत्येक फल में 2-3 बीज पाए जाते हैं।

रतनजोत का महत्व

- **जैव-ईंधन उत्पादन-** रतनजोत के बीजों में 30-40 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है, जिससे बायोडीजल बनाया जाता है। यह डीजल का पर्यावरण-अनुकूल विकल्प है।
- **औषधीय उपयोग-** त्वचा रोग, सूजन एवं घाव, कब्ज। (हालाँकि बिना प्रसंस्करण के उपयोग खतरनाक हो सकता है)
- पर्यावरणीय महत्व
- भूमि क्षरण रोकता है।
- कार्बन अवशोषण में सहायक।
- बंजर भूमि के उपयोग में सहायक।

रतनजोत की विषाक्तता

विषैले तत्व: रतनजोत में निम्नलिखित विषैले पदार्थ पाए जाते हैं-

1. फोबोल एस्टर्स
2. कर्सिन - एक विषैला प्रोटीन
3. टैनिस
4. सैपोनिन्स
5. फाइटिक एसिड

विषाक्तता के प्रभाव

मानव में प्रभाव-

प्रारंभिक लक्षण (30 मिनट - 3 घंटे में)-

- मुँह में जलन
- मतली एवं उल्टी
- पेट दर्द
- दस्त
- सिर चकराना।

गंभीर लक्षण (3-24 घंटे में)-

- अत्यधिक निर्जलीकरण
- रक्तचाप गिरना,
- बेहोशी,
- यकृत एवं गुर्दे पर प्रभाव,
- बच्चों में दौरे।

पशुओं में प्रभाव-

- भूख न लगना होना।
- दस्त होना।
- कमजोरी होना।
- मृत्यु की संभावना होना।

रतनजोत की विषाक्तता को कम करने के उपाय-

● **भौतिक विधियाँ -**

(1) **उष्मा उपचार-** बीज या खली को अधिक तापमान पर गर्म करने से कर्सिन जैसे प्रोटीन नष्ट हो जाते हैं।

(2) **भूनना -** भूनने से विषैले तत्वों की सक्रियता कम होती है।

● **रासायनिक विधियाँ -**

(1) **क्षारीय उपचार -** सोडियमहाइड्राक्साइड या कैल्सियम-हाइड्राक्साइड के उपयोग से फोर्बोल एस्टर्स की मात्रा कम होती है।

(2) **सॉल्वेंट निष्कर्षण -** मेथनॉल या इथेनॉल से विषैले तत्वों का निष्कासन।

● **जैविक विधियाँ -**

(1) **किण्वन -** सूक्ष्मजीवों द्वारा विषैले तत्वों का अपघटन।

(2) **कम्पोस्टिंग -** रतनजोत खली को गोबर व अन्य जैविक अपशिष्ट के साथ कम्पोस्ट करने से विषाक्तता कम होती है।

♦ **आनुवंशिक एवं प्रजातीय सुधार -** कम विषाक्तता का विकास व चयन एवं संकरण द्वारा सुरक्षित किस्में तैयार करना।

♦ **सुरक्षित उपयोग एवं प्रबंधन -**

● बीज एवं खली को सीधे पशु आहार में प्रयोग न करें।

● प्रसंस्करण के बाद ही उपयोग।

● बच्चों एवं पशुओं की पहुँच से दूर रखें।

रतनजोत खली का सुरक्षित उपयोग- विषाक्तता कम करने के बाद रतनजोत खली का उपयोग

● जैव-उर्वरक के रूप में।

● मृदा सुधारक।

● नियंत्रित पशु आहार (सीमित मात्रा में)।

रतनजोत खाने पर तुरंत क्या करें

सबसे पहला कदम- घबराएँ नहीं, लेकिन बिना समय गवाएं तुरंत नजदीकी अस्पताल या जिला स्वास्थ्य केंद्र पहुँचें।

घर पर तुरंत किए जाने वाले उपाय (यदि अस्पताल दूर हो) - ये उपाय केवल प्राथमिक सहायता हैं, उपचार नहीं।

(1) **मुँह की सफाई-** साफ पानी से मुँह बार-बार कुल्ला कराएँ। बीज या अवशेष मुँह में हों तो निकाल दें।

(2) **उल्टी कराने का प्रयास न करें-** जबरदस्ती उल्टी कराना खतरनाक हो सकता है। इससे विष और अधिक नुकसान पहुँचा सकता है।

(3) **पानी या ओआरएस दें-** थोड़ी-थोड़ी मात्रा में। निर्जलीकरण से बचाव हेतु।

क्या बिल्कुल न करें

● दूध, घी या शराब न दें।

● घरेलू नुस्खे न अपनाएँ।

● नींबू, सिरका या नमक जबरदस्ती न खिलाएँ।

● देरी न करें।

अस्पताल में उपचार

चिकित्सकीय कदम-

● गैस्ट्रिक लैवेज (केवल डॉक्टर द्वारा)।

● एक्टिवेटेड चारकोल विष अवशोषण रोकने हेतु।

● आईवी फ्लूइड्स।

● उल्टी-दस्त की दवाएँ।

● यकृत एवं गुर्दा परीक्षण।

● गंभीर मामलों में आईसीयू देखरेख।

नोट- रतनजोत विषाक्तता का कोई विशिष्ट एंटीडोट उपलब्ध नहीं है।

बच्चों में विषाक्तता से विशेष सावधानी-

● बच्चों में लक्षण तेजी से उभरते हैं।

● थोड़ी मात्रा भी खतरनाक।

● तुरंत अस्पताल ले जाना अनिवार्य।

भविष्य में विषाक्तता से बचाव के उपाय

घर और खेत पर सावधानियाँ-

● रतनजोत के पौधे पर चेतावनी बोर्ड लगाएँ।

● बीज बच्चों की पहुँच से दूर रखें।

● घर में इसके बीज या तेल न रखें।

जन-जागरूकता-

● ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण।

● स्कूलों में बच्चों को जानकारी।

● कृषि विस्तार कर्मियों द्वारा प्रचार।

आपातकालीन स्थिति में याद रखने योग्य बातें

● रतनजोत खाने पर तुरंत अस्पताल जाएँ।

● घरेलू इलाज से बचें।

● समय पर इलाज से मृत्यु दर बहुत कम हो जाती है।

निष्कर्ष

रतनजोत एक अत्यंत उपयोगी, बहुआयामी एवं पर्यावरण-अनुकूल पौधा है, जिसका भविष्य में जैव-ऊर्जा एवं सतत कृषि में महत्वपूर्ण स्थान है। किंतु इसमें उपस्थित विषैले तत्व इसके व्यापक उपयोग में बाधा उत्पन्न करते हैं। उचित “भौतिक, रासायनिक, जैविक एवं आनुवंशिक उपायों” को अपनाकर रतनजोत की विषाक्तता को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है। सुरक्षित प्रसंस्करण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन द्वारा रतनजोत को कृषि, ऊर्जा एवं पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सफलतापूर्वक अपनाया जा सकता है।



मिर्च में काले थ्रिप्स (थ्रिप्स परविसपिनस) का पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन

मोगली रम्मैया¹ एवं अर्चना अनोखे²

¹भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

²भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय: भारत में सबसे अधिक आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण चूषक कीट जो फसल नुकसान का कारण बनते हैं वे थ्रिप्स, एफिड्स, लीफहॉपर्स, स्केल्स, मीलीबग्स और माइट्स हैं। इनमें से थ्रिप्स चूसने वाले कीटों का एक महत्वपूर्ण समूह है। जो कई बागवानी फसलों में कीटों और गंभीर पौधों के वायरस के वाहक के रूप में महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान का कारण बनते हैं। फसल उत्पादन पैटर्न में बदलाव, कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग और जलवायु परिवर्तन के कारण विभिन्न क्षेत्रों में थ्रिप्स जैसे चूसने वाले कीटों के अधिकाधिक प्रकोप की रिपोर्टें हैं। हाल ही में दक्षिणी राज्यों (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तेलंगाना) में विशेष रूप से मिर्च की फसलों पर थ्रिप्स परविसपिनस (थाइसानोटेरा: टेरेब्रेंटिया: थ्रिपिडे) का प्रकोप देखा गया है, जिससे 50-80 प्रतिशत तक नुकसान हुआ है। यह अपने विकसित बाएं जबड़े से पौधे के विभिन्न भागों से रस को चूसकर नुकसान पहुंचाता है। गर्भवती मादाएं एक आरी के आकार वाले अंडकोष की मदद से अंडों को पौधे के ऊतकों में रख देती हैं। परागणकर्ताओं के रूप में उनकी भूमिका को विभिन्न उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय फसलों पर भी प्रकोप दर्ज किया गया है।

ब्लैक थ्रिप्स (थ्रिप्स परविसपिनस): थ्रिप्स परविसपिनस, “थ्रिप्स ओरिएंटलिस समूह” का एक सदस्य है जिसे आमतौर पर तंबाकू थ्रिप्स, ताइवानी थ्रिप्स और दक्षिण पूर्व एशियाई थ्रिप्स कहा जाता है। थ्रिप्स परविसपिनस को थाईलैंड से ऑस्ट्रेलिया तक रिपोर्ट किया गया है, हवाई में पपीता, ग्रीस में गार्डेनिया प्रजाति, तथा अन्य देशों में शिमला मिर्च, हरी फलियाँ, आलू और बैंगन जैसी सब्जियों पर इसका प्रभाव वयस्क मुख्य रूप से फूलों और पत्तियों के नीचे रहते हैं जबकि लार्वा पत्तियों की सतह के नीचे तक ही सीमित रहते हैं। वयस्क और लार्वा दोनों ही पौधों का रस चूसकर और कुतरकर पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। भारी संक्रमण से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है, फूल झड़ जाते हैं, फल लगने और विकास में कमी आती है, जिसके परिणामस्वरूप अंततः उपज में कमी आती है।

क्षति के लक्षण

- फल लगने पर प्रभाव पड़ता है।
- थ्रिप्स बसने (रहने) और भोजन के लिए शिराओं के समीपवर्ती क्षेत्रों को पसंद करते हैं।
- पत्तियों के नीचे की ओर गहरे छेद और खरोंच।
- पत्तियों के निचले भाग पर क्लोरोफिल के छिल जाने तथा कोशिका रस के चूषण के कारण पत्तियों के ऊपरी भाग पर पीलापन तथा धब्बे दिखाई देते हैं।

- पत्तियों की सतह के नीचे लाल-भूरे रंग का विकार।
- विकृत पत्ती पटल, परिगलित क्षेत्र और पीली धारियाँ।
- गंभीर संक्रमण की स्थिति में नया मांस पूरी तरह सूख जाता है या झुलस जाता है।
- थ्रिप्स द्वारा खुरचने के कारण पंखुड़ियों पर भूरे रंग की धारियाँ।
- पराग खाने के कारण परागण प्रभावित हो सकता है।
- फूल का सूखना और मुरझाना।

हाल ही में इसने शिमला मिर्च और मिर्च पर भी हमला करना शुरू कर दिया है। किसान इन ब्लैक थ्रिप्स को लेकर चिंतित हैं और नियमित प्रबंधन पद्धतियों से इनसे छुटकारा पाना उनके लिए मुश्किल हो रहा है।

ब्लैक थ्रिप्स के लिए पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन दृष्टिकोण:

डी.पी.पी.क्यू. एंड आर.एस के अनुसार मिर्च पर ब्लैक थ्रिप्स के प्रकोप पर काबू पाने के लिए निम्नलिखित पर्यावरण अनुकूल प्रबंधन पद्धतियों का सुझाव दिया गया है। बेहतर परिणामों के लिए इन प्रथाओं को व्यापक क्षेत्र/सामुदायिक दृष्टिकोण के तहत अपनाया जाना चाहिए।

मिर्च में समेकित प्रबंधन

1. थ्रिप्स के चरम प्रकोप से बचने के लिए, यदि उपलब्ध हो तो प्रतिरोधी या शीघ्र/अल्पावधि वाली किस्में उगाएं।
2. थ्रिप्स और अन्य कीटों के प्यूपा और अवशिष्ट अवस्थाओं को नष्ट करने के लिए गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।
3. अच्छी तरह से विघटित गोबर की खाद (एफ.वाई.एम.) या कम्पोस्ट 2.5 टन/हेक्टेयर का उपयोग, मेटारिजियम एनीसोप्लाई या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस/ 2 किलोग्राम/टन की अनुशंसित खुराक के साथ गोबर की खाद (25 से 30 टन/हेक्टेयर) के साथ मिट्टी (खेत) में डालें।
4. थ्रिप्स के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करने के लिए 500 किलोग्राम नीम केक और 1.50-2.00 टन वर्मीकम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर मिट्टी (खेत) में डालें।
5. बीज को इमिडाक्लोरिपिड 70 WS /10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।
6. पौध की जड़ों को इमिडाक्लोरिपिड 17.8% SL/0.5 मिली/ली के साथ 30 मिनट के लिए डुबोएं।

7. अनुशंसित दूरी (60 x 30 सेमी या 45 x 45 सेमी) का पालन करें और निकट दूरी से बचें, क्योंकि उच्च घनत्व वाले रोपण से कीटों का प्रकोप और गुणन बढ़ता है।
8. मिट्टी में थ्रिप्स के प्यूपेशन को कम करने के लिए 25-30 माइक्रोन मोटाई की सिल्वर रंग की पॉलीथीन शीट से मल्टिचिंग करें।
9. थ्रिप्स की आवाजाही के लिए अवरोध के रूप में ज्वार/मक्का/बाजरा/चारा घास आदि जैसी लंबी फसलों की 2-3 पंक्तियों के साथ सीमांत फसल (बॉर्डर क्रॉपिंग) की घनी बुवाई करें।
10. प्राकृतिक शत्रु गुणन के लिए अवरोधक और जलाशय फसलों के रूप में मिर्च को मक्का/ज्वार और लोबिया के साथ 10:3:1 अनुपात में अंतरफसल के रूप में बोना चाहिए, जिससे थ्रिप्स पर जैविक नियंत्रण हो सके।
11. मिट्टी में रहने वाले थ्रिप्स के प्यूपा को नष्ट करने के लिए लगातार अंतर-खेती (मिट्टी को ऊपर उठाना/उखाड़ना) क्रियाएं करनी चाहिए।
12. कीटों के प्रबंधन के लिए स्वच्छ खेती और खरपतवार मुक्त मेड़ बनाए रखना महत्वपूर्ण है। खेत की मेड़ों के आस-पास मौजूद खरपतवार जैसे कि *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस*, *क्लियोम विस्कोसा*, *प्रोसोपिस प्रजाति*, *लैंटाना कैमरा*, *कैलोट्रोपिस प्रजाति*, *टेकोमा प्रजाति*, *अबुटिलॉन प्रजाति*, *जंगली सोलनम* प्रजाति आदि को उखाड़कर नष्ट कर दें, जो थ्रिप्स के लिए ऑफ-सीजन और वैकल्पिक मेजबान के रूप में कार्य करते हैं।
13. घास कुल के अनाज/फसल से संबंधित फसलों के साथ फसल चक्रण।

यांत्रिक विधियाँ

- ❖ वानस्पतिक अवस्था में गंभीर रूप से संक्रमित शीर्षस्थ शाखाओं को काटकर नष्ट कर देना चाहिए, ताकि शीर्षस्थ भागों पर रहने वाले थ्रिप्स का नाश हो सके।
- ❖ गंभीर रूप से संक्रमित पौधों को उखाड़कर, दफनाकर या जलाकर यांत्रिक रूप से नष्ट करना चाहिए।
- ❖ कीटों को बड़े पैमाने पर फँसाने के उद्देश्य से फसल की छतरी (क्रॉप कैनोपी) की ऊँचाई पर 65-75 जाल/हेक्टेयर की दर से नीले या पीले या सफेद चिपचिपे जाल (स्टिकी ट्रैप) लगाना तथा निगरानी के उद्देश्य से 20-25 जाल/हेक्टेयर की दर से जाल लगाना चाहिए।
- ❖ फसल की वनस्पति अवस्था के दौरान खेत पर गोंद के साथ नीली त्रिपाल शीट खींचने से कीटों की जनसंख्या का भार कम हो सकता है।
- ❖ बाढ़ सिंचाई के स्थान पर स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली को अपनाना चाहिए, क्योंकि स्प्रिंकलर से पानी का छिड़काव थ्रिप्स की वृद्धि और गुणन को बाधित करता है।

जैविक तरीके

- ❖ जहां तक संभव हो रासायनिक कीटनाशकों के छिड़काव से बचकर देशी प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करना चाहिए।
- ❖ माइक्रोबियल आधारित कीटनाशकों जैसे *ब्यूवेरिया बेसियाना* या *लेकैनीसिलियम लेकानी* का 4.00 ग्राम या मिली/लीटर (बीजाणु भार- 1x10⁸ सीएफयू/जी या मिली), *स्ट्रुडोमोनास फ्लोरोसेंस* - एनबीएआईआरपीएफडीडब्ल्यूडी 20 ग्राम/लीटर या बैसिलस एल्बस-एनबीएआईआर-बीएटीपी / 20 ग्राम/लीटर का छिड़काव पूरे पौधे पर समान रूप से करें। ये सूक्ष्मजीव संवर्धन एनआईपीएचएम, हैदराबाद और जैव नियंत्रण इकाई, रायचूर में उपलब्ध हैं।
- ❖ एन्टोमो-पैथोजेनिक नेमाटोड (ईपीएन), *स्टीनेरनेमा कार्पोकैप्सए* फॉर्मूलेशन का 10 ग्राम/लीटर + 1 ग्राम गीला करने वाले एजेंट का पत्तियों पर छिड़काव करें।
- ❖ मिट्टी में ईपीएन, *स्टीनेरनेमा कार्पोकैप्सए* या *हेटेरोरहैबडाइटिस इंडिका* का 7.50-12.50 किग्रा/हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। इसे 500-750 लीटर पानी में मिलाकर मिट्टी में भिगोया जा सकता है। ईपीएन का इस्तेमाल सुबह जल्दी या देर शाम के समय किया जाना चाहिए क्योंकि वे यूवी और उच्च तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं। अधिकतम धूप वाले घंटों में ईपीएन का छिड़काव करने से बचना चाहिए।

वानस्पतिक/ जैविक विधियाँ

- 5% नीम बीज कर्नेल अर्क (एनएसकेई) या 5% नीम बीज पाउडर अर्क या 0.50% नीम तेल (5 मिली/लीटर), 0.50% पोंगामिया तेल (5 मिली/लीटर), और 5% विटेक्स नेगुंडो अर्क (50 मिली/लीटर) का छिड़काव करें।
- नीम आधारित कीटनाशक (एजाडिरेक्टिन 3000 पीपीएम) के व्यावसायिक फॉर्मूलेशन का 2 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- 2% फिश ऑयल रोसिन सोप (20 मिली/ली.) का अकेले या नीम बीज कर्नेल एक्सट्रैक्ट के साथ संयोजन में (मिलाकर) छिड़काव करें।
- पौधे में थ्रिप्स के गंभीर प्रकोप का सामना करने के लिए प्रतिरोध उत्पन्न करने हेतु समुद्री शैवाल (*कप्पाफाइकस अल्वारेजी*) अर्क का 2 मिली/लीटर की दर से छिड़काव करें।

निष्कर्ष - वर्तमान और निकट भविष्य में, थ्रिप्स परविसपिनस की जैविक नियंत्रण रणनीतियों में उन्नति गैर-रासायनिक दृष्टिकोण हो सकती है। वर्तमान में इस दिशा में अनुसंधान किया जा रहा है ताकि सर्वोत्तम पर्यावरण अनुकूल प्रबंधन पद्धतियों की जांच (स्क्रीनिंग) और उपयोग किया जा सके, जिसका उपयोग फील्ड (क्षेत्रीय) परिस्थितियों में प्रभावी ढंग से किया जा सके। यह सजावटी और सब्जी फसल प्रणालियों में कई कीट समस्याओं को प्रभावी ढंग से हल कर सकता है।



बीज प्राइमिंग: सब्जियों के बीजों के रोपण मूल्य को बढ़ाने के लिए एक कारगर तकनीक

मीनाक्षी ठाकुर

उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

बीज प्राइमिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके दौरान बीजों को बुआई से पहले विभिन्न तरीकों द्वारा पानी के माध्यम से उपचारित किया जाता है जिससे वे नियंत्रित तरीके से जल को ग्रहण करते हैं। इस से बीजों में अंकुरण से पहले की प्रक्रियाएं तेज हो जाती हैं परन्तु बीज पूर्ण रूप से अंकुरित नहीं हो पाते हैं। आसान शब्दों में यह कह सकते हैं कि प्राइमिंग द्वारा बीजों को बुवाई से पहले सुषुप्तावस्था से जगाया जाता है। सुषुप्तावस्था एक ऐसी स्थिति है जहाँ पर्यावरणीय परिस्थितियां बीज अंकुरण के लिए अनुकूल होने पर भी बीज अंकुरित नहीं हो पाते हैं। प्राइमड बीज अंकुरण के चरण के नजदीक होते हैं और जब उन बीजों को बोया जाता है तब उनका अंकुरण जल्दी और एक सामान होता है जिससे कि फसल का बेहतर और तेजी से विकास होता है।

बीज प्राइमिंग के लाभ

उन्नत कृषि पैदावार के लिए अच्छी अंकुरण क्षमता वाले बीजों का होना बहुत ही महत्वपूर्ण है। अच्छी पैदावार के लिए यह जरूरी है कि खेतों में बुवाई के बाद सभी बीज अच्छी तरह से सामान रूप से अंकुरित हों। लेकिन ऐसे कई विषम कारक हैं जैसे कि विषम तापमान, सूखा, लवणता इत्यादि जिनकी वजह से बीजों का अंकुरण अपेक्षाकृत कम या एक सामान नहीं हो पाता है। इस समस्या को दूर करने के लिए किसान प्रायः सामान्य से अधिक बीज दर का प्रयोग करते हैं जिससे खेती की लागत बढ़ जाती है। इसी तरह कुछ किसान समय से पूर्व भी बिजाई करते हैं जिससे फसल के खराब होने की संभावना रहती है। इसके अलावा कई रोगों का प्रसारण भी बीजों द्वारा होता है। कई रोगजनक जीव बीजों कि सतह पर उपस्थित हो जाते हैं और अंकुरण से पूर्व या उसके बाद पौधों में रोग उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार होते हैं। इन सभी समस्याओं को दूर करने के लिए सबसे अच्छा एवं कारगर उपाय है कि बुवाई से पहले बीजों पर प्राइमिंग तकनीक का प्रयोग किया जाए।

बीज प्राइमिंग की विधियाँ

बीजों की प्राइमिंग हेतु विभिन्न विधियां अपनायी जाती हैं। जैसे कि हाइड्रो प्राइमिंग, ओसमो प्राइमिंग, हेलो प्राइमिंग, सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग, बायो प्राइमिंग इत्यादि।

हाइड्रो प्राइमिंग: हाइड्रो प्राइमिंग एक पारम्परिक एवं लागत प्रभावी तकनीक है क्योंकि इसमें किसी अतिरिक्त रसायन कि आवश्यकता नहीं होती है। हाइड्रो प्राइमिंग में बीजों को बुवाई से पहले, फसल और प्रजाति के

गुणानुसार पूर्व निश्चित काल तक पानी में भिगोया जाता है। भिगने का समय पूरा होने पर बीजों को खुली धुप में सूखा दिया जाता है। किसान को यदि बीजों की सुरक्षित सीमा की जानकारी है तो वह स्वयं उनकी हाइड्रो प्राइमिंग कर सकते हैं।

सुरक्षित सीमा की गणना इस आधार पर की जाती है कि बीजों को पानी से अलग कर देने पर इनकी अंकुरण प्रक्रिया जारी न रहे। कई सब्जियों के बीजों की हाइड्रो प्राइमिंग की जा सकती है।

1. करेले के बीजों की हाइड्रो प्राइमिंग करने के लिए बीजों को गीले मखमल के कपड़े में लपेट कर 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 48 घंटों तक रखें।
2. मटर के बीजों की हाइड्रो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें पानी में सामान्य तापमान पर 12 घंटों के लिए रखें।
3. भिंडी के बीजों की हाइड्रो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें पानी में 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 20 घंटों के लिए रखें।

ओसमो प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में बीजों को एक बर्तन में रख कर पॉलीइथाइलीन ग्लाइकोल, ग्लिसरॉल, सोर्बिटोल, मेनिटोल इत्यादि के घोलों में भिगोया जाता है। बीजों के अकार और पौधों की प्रजातियों के आधार पर, उन्हें 2-7 दिनों के लिए एक स्थिर तापमान पर रखा जाता है। प्राइमिंग प्रक्रिया का समय पूरा होने पर बीजों को इस घोल से निकाल कर, पानी से धोया जाता है और सुखा दिया जाता है।

- करेले के बीजों की ओसमो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें मेनिटोल रसायन में 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 3 दिनों के लिए भिगोएं।
- टमाटर के बीजों की ओसमो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें पॉलीइथाइलीन ग्लाइकोल में 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 6 दिनों के लिए भिगोएं।

हेलो प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में बीजों को एक निश्चित समय के लिए लवणीय घोल में भिगोया जाता है। उदाहरण के लिए हेलो प्राइमिंग में पोटैशियम नाइट्रेट, कैल्शियम नाइट्रेट और मैग्नीशियम नाइट्रेट के 10-30 मिली मोलर घोल का प्रयोग किया जाता है। भिगोने का समय पूरा होने पर बीजों को घोल से निकाल कर सुखा लिया जाता है।

- टमाटर के बीजों की हेलो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें पोटैशियम नाइट्रेट (15 मिली मोलर) घोल में 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 20 घंटों के लिए भिगोएं।

सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में 100 ग्राम बीज की मात्रा को 200 ग्राम सॉलिड मैट्रिक्स कैरियर जैसे की वरमीक्यूलाइट और 250 मिली लीटर पानी में भिगोया जाता है। वरमीक्यूलाइट और बीजों को अच्छी तरह से मिला कर एक थैली में बंद कर के एक निश्चित समय के लिए रख दिया जाता है। इन्क्यूबेशन काल की समाप्ति के बाद बीजों को छान कर सुखा लिया जाता है। प्राइमिंग प्रक्रिया के बाद बीजों को बोया जा सकता है। बुवाई में विलम्ब होने पर, प्राइमड बीजों को कई दिनों तक सूखे स्थान पर संचित किया जा सकता है।

- करेले के बीजों की सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग करने के लिए उन्हें वरमीक्यूलाइट में 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 48 घंटों के लिए रखें।
- भिंडी के बीजों की सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग करने के लिए उन्हें वरमीक्यूलाइट में 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 20 घंटों के लिए रखें।
- मिर्च के बीजों की सॉलिड मैट्रिक्स प्राइमिंग करने के लिए उन्हें वरमीक्यूलाइट में 20 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 48 घंटों के लिए रखें।

बायो प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में बीजों को पौधे की वृद्धि बढ़ाने वाले राइजोबैक्टेरिया जैसे की एजोटोबैक्टर, सूडोमिनाज, बैसिलस और एग्रोबैक्टीरियम इत्यादि के साथ उपचारित किया जाता है। इस प्राइमिंग तकनीक से न केवल बीजों का अंकुरण तीव्रता एवं एक सामान तरीके से होता है बल्कि बीजों में प्रतिकूल वातावरणीय कारकों एवं रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ जाती है।

- मटर के बीजों की बायो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें ट्राइकोडर्मा के साथ 24 घंटों के लिए उपचारित करें।

- मिर्च के बीजों की बायो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें सूडोमिनाज के साथ 12 घंटों के लिए उपचारित करें।
- टमाटर के बीजों की बायो प्राइमिंग करने के लिए उन्हें ट्राइकोडर्मा के साथ उपचारित करें।

न्यूट्री प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में बीजों को पोषक तत्वों (फॉस्फोरस, पोटैशियम, मॉलीब्डेनम, मैंगनीज, कॉपर, जिंक इत्यादि) के घोल में भिगोया जाता है। इससे बीजों को हाइड्रो प्राइमिंग का भी लाभ मिलता है साथ ही साथ पोषक तत्वों का पोषण भी मिलता है। यह एक सरल एवं लागत प्रभावी प्राइमिंग तकनीक है।

- गाजर के बीजों की न्यूट्री प्राइमिंग करने के लिए उन्हें पोटैशियम के घोल में 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 24 घंटों के लिए रखें।
- पालक के बीजों की न्यूट्री प्राइमिंग करने के लिए उन्हें जिंक के घोल में 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 24 घंटों के लिए रखें।

हार्मोनल प्राइमिंग: इस प्रक्रिया में बीजों को विभिन्न हॉर्मोन्स जैसे की काइनेटिन, सैलिसिलिक एसिड, जिबरलिन, इथाइलीन और पोलिअमीन के घोलों में भिगोया जाता है जिससे बीजों के अंकुरण में तीव्रता आती है। शोध के दौरान यह पाया गया है कि हार्मोनल प्राइमिंग द्वारा फसलों की पैदावार खारी मिटटी में भी अच्छी तरह से हो जाती है।

- सरसों के बीजों की हार्मोनल प्राइमिंग करने के लिए उन्हें जिबरलिन के घोल में 8 घंटों के लिए रखें।

अतः अंत में यह कहा जा सकता है कि प्राइमिंग द्वारा बीज, बुवाई के उपरांत न केवल तीव्रता एवं एक सामान तरीके से अंकुरित होते हैं, बल्कि विषम वातावरणीय परिस्थितियों में भी इनका अंकुरण संभव हो जाता है।



**आलू, गन्ने मे हो खरपतवार।
मेट्रीब्यूजिन से करे उपचार॥**

**खरपतवारों से सोयाबीन का करें बचाव।
इमाजेथापडर का 20 दिन पर करें छिड़काव॥**

बदलते जलवायु परिदृश्य में जलवायु-अनुकूल किस्मों का भविष्य

आर.एस. उपाध्याय

सुहागी, आधारताल, जबलपुर (म.प्र.)

पादप प्रजनन के नवीन दृष्टिकोण एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की भूमिका : वैश्विक जलवायु परिवर्तन आज कृषि और खाद्य सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बन कर उभरा है। बेमौसम बारिश, तापमान में अचानक वृद्धि और सूखे की बढ़ती आवृत्ति ने पारंपरिक कृषि प्रणालियों को बुरी तरह से प्रभावित किया है। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, जहां बहुसंख्यक आबादी आजीविका के लिए सीधे तौर पर खेती पर निर्भर है, वहां बदलती जलवायु के कारण फसल उत्पादन में भारी अनिश्चितता आ गई है। इस परिदृश्य में जलवायु-अनुकूल किस्मों का विकास केवल एक वैज्ञानिक आवश्यकता नहीं, बल्कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा की अनिवार्यता बन गया है। आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों के समन्वित प्रयासों से इस दिशा में एक नई क्रांति का सूत्रपात हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन का फसल कार्यिकी पर प्रभाव: “अंतस्थ ताप प्रतिबल” की चुनौती : तापमान में वृद्धि का सबसे विनाशकारी प्रभाव रबी की फसलों, विशेषकर गेहूं पर देखा जा रहा है। बिलंबित बुवाई की स्थिति या मौसम के अनपेक्षित बदलाव के कारण, फसल के दाना भरने की अवस्था के दौरान अक्सर तापमान में अचानक वृद्धि हो जाती है। अत्यधिक तापमान के कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की दर धीमी हो जाती है, पत्तियों का समय से पहले सूखना शुरू हो जाता है, और स्टार्च के संचय में कमी आती है। इसके परिणामस्वरूप दाने का आकार सिकुड़ जाता है और समग्र उपज में भारी गिरावट दर्ज की जाती है। इसी प्रकार, खरीफ की फसलों में अनियमित मानसून के कारण बाढ़ और सूखे का तनाव फसल के विकास चक्र को बाधित करता है। इन अजैविक तनावों से निपटने के लिए आनुवंशिक रूप से मजबूत किस्मों की आवश्यकता होती है।

पारंपरिक किस्मों को मुख्यतः अधिक उत्पादन और संवेदी गुणवत्ता को ध्यान में रखकर विकसित किया गया था, उस दौर में जब मानसून का व्यवहार कुछ हद तक अनुमानित था। वर्तमान जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में परिस्थितियां अत्यधिक अस्थिर हो चुकी हैं। फूल आने और दाना भरने की नाजुक अवस्था में अचानक तापमान बढ़ना या लगातार दस-पंद्रह दिन बारिश ना होना, परंपरागत किस्मों की जड़ संरचना और जल-प्रबंधन क्षमता पर भारी पड़ता है। नतीजा सीधा उपज में गिरावट और किसान की आमदनी में कटौती के रूप में दिखता है। इन अजैविक तनावों के शमन हेतु, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और इससे जुड़े संस्थान बीज उत्पादन और प्रजनन की दिशा में बड़े पैमाने पर काम कर रहे हैं। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसी जलवायु-अनुकूल और तनाव-सहिष्णु किस्मों का विकास एवं प्रसार करना है, जो परिवर्तित जलवायु परिस्थितियों के प्रति उच्च आनुवंशिक अनुकूलन क्षमता प्रदर्शित कर सकें। “आधुनिक कृषि केवल उपज बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह बदलते मौसम के प्रति पौधों की कार्यिकीय और जैव-रसायनिक सहनशीलता को सृढ़ करने का विज्ञान बन चुका है।” जनवरी 2026 में केंद्रीय कृषि मंत्री शिवराज सिंह चौहान ने 25 फसलों की

184 नई सुधारित किस्मों को जारी करने की घोषणा की। इनमें से कई किस्मों में सूखा, बाढ़, खारापन सहन करने की क्षमता और प्रमुख कीट-रोगों के प्रति प्रतिरोध जैसे विशेष गुण शामिल किए गए हैं, जिससे किसान बदलते मौसम के बावजूद उत्पादन को स्थिर रख सकें। पिछले एक दशक में संस्थान ने 2,900 से अधिक किस्मों का विकास किया है, जिनमें लगभग 2,661 किस्में जैविक और अजैविक तनाव यानी कीट-रोग के साथ-साथ सूखा, गर्मी और खारेपन दोनों को सहने में सक्षम हैं। इनमें से 537 किस्में खासतौर पर अत्यधिक जलवायु परिस्थितियों के लिए सटीक फेनोटाइपिंग तकनीकों के सहारे तैयार की गई हैं।

जलवायु अनुकूल बीजों का विकास: जलवायु अनुकूल बीजों का विकास एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में कई उन्नत वैज्ञानिक सूचकांकों और सांख्यिकीय प्रतिरूपों का उपयोग किया जा रहा है:

- **कार्यिकीय फेनोटाइपिंग और वनस्पति सूचकांकों का उपयोग:** तनाव की स्थिति में पौधों के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए अब गैर-विनाशकारी तकनीकों का व्यापक उपयोग हो रहा है। इसमें सामान्यीकृत अंतर वनस्पति सूचकांक सबसे प्रमुख है। यह सूचकांक प्रकाश परावर्तन के आधार पर पौधों की छतरी के हरेपन और कुल जैविक भार का सटीक अनुमान लगाता है।
- **तनाव सहनशीलता सूचकांक:** विभिन्न प्रजातियों के प्रदर्शन का सटीक मूल्यांकन करने के लिए “ताप संवेदनशीलता सूचकांक” और “तनाव सहनशीलता सूचकांक” जैसे मापदंडों का उपयोग किया जाता है।
- **जीन प्रवेशन और जीन समूहन:** वैज्ञानिक जंगली और स्थानीय प्रजातियों देशी किस्मों में मौजूद तनाव-सहनशील जीनों की पहचान कर रहे हैं। आणविक चिन्ह सहायक चयन के माध्यम से इन विशिष्ट जानों को अधिक उपज देने वाली व्यावसायिक किस्मों में स्थानांतरित किया जा रहा है।

गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन और प्रसार की चुनौती : बीज उत्पाद श्रृंखला-प्रजनक बीज, आधार बीज और प्रमाणित बीज में सख्त आनुवंशिक शुद्धता बनाए रखना अनिवार्य है। बदलते मौसम के कारण बीज उत्पादन भूखंडों में कीटों और बीमारियों का प्रकोप बढ़ सकता है, जिससे बीज की जीवनक्षमता और ओज प्रभावित होती है। इसलिए, ‘सहभागी बीज उत्पादन’ और बीज ग्राम जैसी योजनाओं के माध्यम से किसानों को सीधे उन्नत बी उत्पादन से जोड़ा जा रहा है। पादप प्रजनन में ‘स्मार्ट बीजों’ का विकास-जो उन्नत वैज्ञानिक मापदंडों की कसौटी पर खरे उतरते हों और जिनमें तनाव-सहनशील जीन समाहित हों वही भविष्य की खाद्य सुरक्षा की कुंजी है। भाकूअनुप के नेतृत्व में विभिन्न संस्थान न केवल अत्याधुनिक शोध कर रहे हैं, बल्कि इन शोधों को प्रयोगशाला से निकालकर खेत तक पहुंचाने का भी प्रयास कर रहे हैं। नीति निर्माताओं, वैज्ञानिकों और किसानों के सम्मिलित प्रयासों से ही हम अपनी कृषि प्रणाली को सुरक्षित रख सकेंगे।



रजनीगंधा की व्यवसायिक उत्पादन तकनीक

प्रीति चौहान¹ एवं ओमप्रकाश भारती²

¹कृषि महाविद्यालय गंज बासौदा, जे.एन.के.वी.वी., जबलपुर (म.प्र.)

²कृषि विज्ञान केन्द्र हरदा, जे.एन.के.वी.वी., जबलपुर (म.प्र.)

प्रस्तावना

रजनीगंधा, ट्यूबरोज सुगंधराज लिली।

वानस्पतिक नाम - पालीएन्थस ट्यूबरोजा,

लिनियस कुल - एमारिलिडैसी।

रजनीगंधा का अन्य भाषाओं में नाम - हिन्दी, बंगाली-रजनीगंधारय उर्दू-गुज-ए-शाबूरय कन्नड़-सुगन्धराज लिलीरय तेलगु-नेलासमपेनोरय तमिल-सेपेंगीरय मलयालम-निशीगंधारय मराठी-निशीगंधा।

उपयोगिता- रजनीगंधा अत्यंत सुगंधित पुष्प है। इसकी सुगंध रात के समय अधिक तीव्र हो जाती है। इसी कारण से इसे रजनीगंधा अर्थात् रात्रि में सुगंध फैलाने वाला पुष्प कहा जाता है। इसका सुगंधित तेल और पुष्प निर्यात किया जाता है। इसे कटपुष्प गमले, क्यारियों और पट्टियों में उगाया जाता है। इसे अरोमा थैरेपी में भी उपयोग किया जाता है। पुष्पों से माला आदि तैयार की जाती है। एल्कोहल रहित पेय पदार्थों में 0.26 पीपीएम, आइस्क्रीम 0.46 पीपीएम, मिठाईयां 1.5 पीपीएम, भूरे में 1.7 पीपीएम उपयोग होता है।

सुवासिनी- एकल और दोयम किस्मों के संकरण से विकसित संकर किस्म है। यह दोयम, बहुपुष्पीय, बड़े मजबूत, शुद्ध सफेद पुष्पों वाली किस्म है। पुष्प लम्बे स्पाइक में लगते हैं। पुष्पों की संख्या भी अधिक होती है। कट फ्लावर के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

औषधीय गुण - पुष्प मूत्रल वामक होते हैं। बच्चों के लाल घनौरियो में कंद को हल्दी और मक्खन के साथ मिलाकर लगाया जाता है। सूखे कंदों का चूर्ण सूजाक में उपयोगी होता है।

इसे मैक्सिको, मध्य अमेरिका, इटली, फ्रांस, दक्षिण अफ्रीका और भारत में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। भारत में रजनीगंधा की खेती लगभग 20000 हेक्टेयर में होती है।

राज्यों के अनुसार रजनीगंधा उगाने वाले क्षेत्र इस प्रकार हैं -
कर्नाटक- बेंगलूर, मैसूर, कोलार, बेलगाम, चित्रदुर्ग, शिमोगा, तुमकर, धारवार, बेलारी; **महाराष्ट्र-** पुणे, नासिक, अहमदनगर, सतारा, सांगली, कोल्हापुर, शोलापुर, धुले, जलगांव; **पश्चिमी बंगाल-** देयूलिया, पंस्कुरा, कटवा नाडिया, कोलघाट, पूर्णनगर, हरिनघाट, कंचरापारा, राजघाट, शान्तिपुर, कृष्णानगर; **राजस्थान-** उदयपुर, अजमेर, जयपुर; **गुजरात-** नवसारी, वलसाड; **तमिलनाडु-** कोयम्बटोर, मदुरैय उत्तरप्रदेश-लखनऊ; **पंजाब-** लुधियाना, चंडीगढ़।

मध्य प्रदेश में रजनीगंधा की व्यावसायिक खेती प्रमुख रूप से की जा रही है और यह राज्य पुष्प उत्पादन में भारत में तीसरा सबसे बड़ा उत्पादक बन गया है।

क्षेत्रफल: 2024-25 के आंकड़ों के अनुसार, मध्य प्रदेश में रजनीगंधा (ट्यूबरोज) लगभग 263 हेक्टेयर क्षेत्र में लगाया जाता है।

कुल पुष्प क्षेत्र: प्रदेश में फूलों की कुल खेती लगभग 42,978 हेक्टेयर में होती है, जिसमें रजनीगंधा एक महत्वपूर्ण सुगंधित फसल है।

उत्पादन: यह फूल मुख्य रूप से छिंदवाड़ा, भोपाल, और मंदसौर जैसे जिलों में उगाया जाता है, जहां अच्छी सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हैं। रजनीगंधा (ट्यूबरोज) की खेती 1 हेक्टेयर में बहुत ही लाभदायक है, जहाँ किसान पारंपरिक फसलों की तुलना में कई गुना ज्यादा मुनाफा कमा सकते हैं। एक हेक्टेयर में रजनीगंधा की खेती से 4 से 6 लाख रुपये तक का शुद्ध मुनाफा (खर्च काटकर) आसानी से हो सकता है।

एक हेक्टेयर (लगभग 2.5 एकड़) में कमाई और लागत का विवरण:

कुल लागत (1 हेक्टेयर): लगभग 1.5 से 2 लाख रुपये।

पैदावार (1 हेक्टेयर): पहले साल ही लगभग 90 से 100 क्विंटल फूल प्राप्त हो जाते हैं।

शुद्ध मुनाफा: 4-5 लाख रुपये सालाना।

आय के मुख्य स्रोत (1 हेक्टेयर):

कट फ्लावर (स्टिक): लगभग 4-5 लाख स्टिक प्रति हेक्टेयर सालाना मिल सकती हैं।

लूज फ्लावर: 10-15 टन लूज फूल।

कंद: 2-3 साल बाद कंद भी बेचे जा सकते हैं, जिससे अतिरिक्त आय होती है।

ध्यान देने योग्य बातें

फसल की अवधि: एक बार कंद (बल्ब) लगाने पर, यह फसल 2 से 3 साल तक मुनाफा देती है।

बिक्री: फूल मंडियों, शादी-ब्याह के आयोजनों, और होटल/मंदिरों में इसकी बहुत मांग रहती है।

सरकारी सहायता: भारत सरकार के “अरोमा मिशन” और राज्य के उद्यान विभाग की ओर से इस खेती पर सब्सिडी (अनुदान) भी मिलती है।

वर्गीकरण व उन्नत किस्में

रजनीगंधा की विभिन्न किस्मों को चार प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है।

- **एकल (सिंगल) किस्में-** इस किस्म के पुष्पकों में पंखडियों की एक पंक्ति होती है। इन किस्मों के फूल दोहरी (डबल) किस्मों की तुलना में अत्यधिक सुगंधित होते हैं। इसलिये यह किस्में विच्छिन्न पुष्प तथा सुगंधित तेल (0.1%) के निष्कर्षण के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं।
उदाहरण : कलकत्ता सिंगल, मैक्सिकन सिंगल, प्रज्जल, श्रंगार (आई.आई.एच.आर.) रजत रेखा (एन.बी.आर.आई)।



- **दोहरी (डबल) किस्में-** इस किस्म के पुष्पकों में पंखडियों की तीन या तीन से अधिक पंक्तियाँ होती हैं, इसके पुष्पकों की चोंच पर हल्की गुलाबी आभा पायी जाती है जबकि शेष पुष्पक सफेद होता है। कर्तित पुष्प (कट-फ्लावर) के रूप में इस किस्म का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। उदाहरण: कलकत्ता डबल, पर्ल डबल, विभावा सुवासिनी (आई.आई.एच. आर.), स्वर्ण रेखा (एन. बी. आर.आई)।



- **अर्धदोहरी (सेमी डबल) किस्में-** इस किस्म के पुष्पकों में पंखडियों की दो तीन पंक्तिया होती हैं। इसे कर्तित पुष्प (कट-फ्लावर) के रूप में उपयोग किया जाता है।



- **शबलित (वेरिगेटेड) किस्में-** इस किस्म के पुष्पकों का विन्यास एकल किस्म की तरह होता है, परंतु इनकी चोंच पर हल्का गुलाबी रंग मौजूद रहता है। इन पौधों की पत्तियों के किनारों पर सुनहरी पीली धारियाँ पायी जाती हैं जो देखने में बहुत आकर्षक लगती हैं। व्यावसायिक पुष्प उत्पादन के अलावा भूदृश्य निर्माण व गमला संवर्धन में भी इस किस्म का महत्वपूर्ण योगदान है।



भूमिवजलवायु

रजनीगंधा को बलुई-दोमट से लेकर चिकनी-दोमट मिट्टी में उगाया जा सकता है। कम से कम 5 सें.मी. गहरी, समुचित जल-निकास वाली भुरभुरी कार्बनिक पदार्थों व पोषक तत्वों से भरपूर अत्यधिक नमी वाली मृदायें इसकी सफल खेती के लिए अच्छी मानी जाती हैं। मृदा का पी. एच. मान 6.5 से 7.5 के बीच होना चाहिये, इसकी खेती के लिए अधिक आर्द्रता व मध्य तापमान (20 से 30 डिग्री सेल्सियस) उपयुक्त होता है। बहुत अधिक (40 डिग्री सेल्सियस) अथवा बहुत कम (10 डिग्री सेल्सियस) तापमान कणिशो (स्पाइक्स) की लंबाई व पुष्पकों (फ्लोरेट) के वजन व गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। गमलों में इसे मिट्टी, गोबर की खाद व पत्तियों की खाद को 2:1:1 के अनुपात में मिलाकर लगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

रजनीगंधा की खेती करने के लिए ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिये जहां पर सूर्य की खुली धूप आती हो व पानी का अच्छा निकास हो

ऐसी जगह पर शुरू में गहरी जुताई करके भूमि को कुछ दिनों के लिए खुला छोड़ देना चाहिये जिससे खरपतवार व कीड़े-मकोड़े नष्ट हो जाये, इस समय गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद 50 टन/हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलनी चाहिये।

प्रवर्धन

रजनीगंधा का लैंगिक (बीज) व अलैंगिक (वानस्पतिक) दोनों विधियों द्वारा प्रवर्धन किया जाता है। बीज से प्रसारण मुख्यतः पादप प्रजनकों द्वारा नई-नई, किस्मों को विकसित करने के लिए किया जाता है। सामान्यतः इसे इसके भूमिगत भाग, जिन्हें शल्ककन्द (बल्व) शल्ककन्दिका (बल्वलेट्स) से प्रवर्धित किया जाता है। इनके एक गुच्छे से 4-8 शल्ककन्द व 10-12 शल्ककन्दिकाएं प्राप्त हो जाती हैं चूंकि रजनीगंधा एक बहुवर्षीय कन्द्रीय पुष्पीय पौधा है, अतः इसकी एक बार रोपाई करने के बाद 2-3 वर्ष तक लगातार अच्छी फसल ली जा सकती है।

कन्दों का चुनाव

अच्छे गुणों वाले कर्तन पुष्प (कट-फ्लावर) उत्पादन के लिए रोग रहित परिपक्व व अच्छी गुणवत्ता के 2 से 2.5 से.मी. आकार के कन्दों (50-60 ग्राम) का चुनाव करना चाहिये निरोपाई से पूर्व कन्दों को बैविस्टीन या ब्लाइटॉक्स (0.1%) घोल में 30 मिनट तक डुबोने के बाद अच्छी तरह से छायादार स्थान पर सुखाना चाहिये।

कन्द की रोपाई व फूल आने का समय

क्षेत्र	रोपाई का समय	फूल आने का समय
मैदानी क्षेत्र	फरवरी-अप्रैल	अप्रैल-सितम्बर
निचली पहाड़ी	सितम्बर-अक्टूबर	जनवरी-फरवरी
मध्य पहाड़ी	जनवरी-मार्च	मई-जुलाई
ऊंची पहाड़ी	अप्रैल-मई	सितम्बर-नवम्बर
पश्चिम बंगाल	पूर्ण वर्ष	पूर्ण वर्ष
बैंगलोर	पूर्ण वर्ष	पूर्ण वर्ष

सस्य क्रियायें

अच्छी तरह से तैयार क्यारियों में शल्ककन्दों (बल्व) की रोपाई 30 से.मी. पंक्ति से पंक्ति 20 से.मी. शल्ककन्द से शल्ककन्द की दूरी पर 3 से 6 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिये रोपाई के पश्चात् शल्ककन्दों को मिट्टी से अच्छी तरह से ढककर क्यारियों को समतल कर देना चाहिये। जब पौधे लगभग 30 सें.मी. ऊंचे हों कणिश (स्पाइक) निकलने वाली हो, तब पौधों पर मिट्टी चढ़ाये और 2-3 सप्ताह बाद पुनः मिट्टी चढ़ाकर इसकी ऊंचाई 15 से. मी. तक करें।

अन्य फसलों की तरह खरपतवार रजनीगंधा की खेती में एक बड़ी समस्या है। इनके नियंत्रण के लिए प्रत्येक सिंचाई के बाद 15 दिन के अन्तराल पर निंदाई-गुड़ाई करना चाहिये। इसके अतिरिक्त खरपतवारों के

अंकुरण के पूर्व एट्राजिन (1-2 कि./हे.)

पैण्डीमिथीलीन (1.5-2 कि./हे) अंकुरण के पश्चात् पैराक्वाट (1.5 कि./हे) ग्लाइफॉस्फेट (1 कि./हे) आदि खरपतवारनाशी दवाओं का उपयोग करके भी इनका नियंत्रण किया जा सकता है। 1 है. क्यारियों में पौधों को बांस या लकड़ी की डण्डियों से सहारा दें, ताकि कणिश (स्पाइक) न गिरे।

खाद एवं उर्वरक

रजनीगंधा की अच्छी खेती के लिये 5 कि. गा. गोबर की खाद के अतिरिक्त 30 ग्राम नाइट्रोजन 20 ग्राम फॉस्फोरस व 10 ग्राम पोटेशियम प्रति वर्ग मीटर की दर से आवश्यक होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा (15 ग्राम) व फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेती की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाई जाती है, जबकि शेष आधी नाइट्रोजन कणिश (स्पाइक) निकलने के पूर्व खेत में बिखेर दें। ध्यान रखें की खाद और शल्ककन्द (बल्व) का सम्पर्क न हो, क्योंकि इससे शल्ककन्दों के सड़ने की सम्भावना रहती है।

सिंचाई

किसी फसल में सिंचाई की मात्रा व अवधि मौसम और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। रजनीगंधा के शल्ककन्दों को अंकुरण के लिये मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। रजनीगंधा के शल्ककन्दों के अंकुरण के लिये मिट्टी में उपर्युक्त नमी होना आवश्यक होती है अतः रोपाई के पूर्व पर्याप्त सिंचाई करनी चाहिये और फिर शल्ककन्दों के अंकुरण तक सिंचाई रोक देनी चाहिये अंकुरण के पश्चात् गर्मी के दिनों में सप्ताह में 2-3 बार, वर्षा व शीत ऋतु में 10-15 दिन के अंतराल से सिंचाई करनी चाहिये।

प्रमुख कीट एवं रोग व उनका नियंत्रण

रजनीगंधा की फसल में सामान्यतः- ग्राँसहॉपर (डायमेटोएंटा 0.1 प्रतिशत) विविल (मेथाइपारथियोन। मि.ली./ली.) एफिड्स एवं थ्रिप्स (मेटासिस्टॉक्स 0.75-2.00 मि.ली./ली.) वे रेड स्पाइडर माइट्स (कैलाथियान) आदि कीटों का प्रकोप होता है इन्हें उपरोक्त दवाओं के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

मूल विगलन (स्टेम रॉट) - एकैलेरोसियम रायफसी, बोट्राइटिस ब्लाइट-बोटाइटिस इलिपटिका, पुष्प पुंज अंगमारी (ब्लोसम ब्लाइट) फ्यूजेरियम डक्क्यूसेटी इसके प्रमुख फफूंद-जनित रोग हैं। जो कि इसे काफी नुकसान पहुँचाते हैं। स्टेम रॉट की रोकथाम प्रभावित पौधों के चारों ओर कारबेन्डाजिन (0.1-0.2 प्रतिशत) के घोल का ड्रिचिंग कर बोटाइटिस ब्लाइट को 15 दिन के अंतराल पर पौधों पर आर्थो-हाइड्रॉक्सी डाइफिनायल के सोडियम सॉल्ट के (1:200) घोल का छिड़काव कर व ब्लोसम ब्लाइट को खड़ी फसल पर कारबेन्डाजिन (0.1-0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव कर नियंत्रित किया जा सकता है।

मल गांठ सूत्रकृमि (रूट-नॉट निमेटोड) भी इसकी एक बड़ी समस्या है। इनका नियंत्रण एल्डीकार्ब (20 मि.ग्रा./पौधा) या कारबोपथूरॉन (2 ग्रा./पौधा) से फसल की रोपाई के समय पौधे को उपचारित कर देने से सम्भव होता है।

फूलों की कटाई: रजनीगंधा में फूलों की कटाई रोपाई के 3 से 5 माह बाद प्रारम्भ होती है। पौधों पर पुष्पीय अवस्था 9-12 दिन तक होती है। कर्तित पुष्प (कट-फ्लावर) के लिये रजनीगंधा में कणिश (स्पाइक) को सबसे नीचे के 1-2 जोड़े पुष्पकों के खिलने की अवस्था में काटा जाता है। कणिश को तेज चाकू/सिकेटियर से भूमि से 4 से 6 सेमी. की ऊँचाई पर काटा जाता, काटने के तुरंत बाद कणिशों को पानी की बाल्टी में 15-20 सेमी. भाग डुबोते हुये रखना चाहिये।

विच्छन पुष्प (लूज फ्लावर) अथवा सुगन्धित तेल निकालने के लिये परिपक्व पुष्पकों को ही तोड़ा जाता है। औसतन एक कणिश (स्पाइक) में 19-24 पुष्पक (फ्लोरेट) आते हैं। 4-5 व्यक्ति 2-3 घंटे में समान्यतः 50-60 किलो विच्छन पुष्प तोड़ लेते हैं।

कणिश/पुष्पकों की कटाई/तुड़ाई ठण्डे समय में सुबह अथवा शाम के दौरान ही करनी चाहिये। अगर पुष्पकों को सुगन्धित तेल के निष्कर्षण के लिये उपयोग करना है, तो इनकी तुड़ाई सुबह 6 से 8 बजे तक अवश्य कर लेनी चाहिये।

फूलों की सस्योत्तर देखभाल: कणिशों (स्पाइक्स) को पौधों से काटने के तुरन्त बाद पानी की बाल्टी में रखते रहना चाहिये। इन कणिशों को 8 प्रतिशत सुक्रोज व 200 पी. पी.एम., 8 एच.क्यू.सी. के विलयन में 24 घंटे

तक रखने से कणिशों की पात्र आयु (वेस लाइफ) बढ़ जाती है। कणिशों को 4-7 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 5 दिन तक भण्डारित किया जा सकता है।

पैकिंग: कणिशों (स्पाइक्स) को उनकी लम्बाई पुष्पीय भाग की लम्बाई (रैचिस लैथ) व उनकी गुणवत्ता के आधार पर छंटनी कर 100-100 कणिशों के गुच्छे में बांधा जाता है। कणिशों के तने वाले भाग को गीले अखबार से लपेटा जाता है और फिर पूरे गुच्छे को किसी भी प्रकार की हानि से बचाने के लिये सफेद टिश्यू पेपर से लपेटा जाता है। तत्पश्चात इन गुच्छों को गते के डिब्बों में रखकर व विच्छन पुष्पों (लूज फ्लावर्स) को बॉस की बनी टोकरियों में रखकर, जिसमें 10 से 15 किलो फूल आ जाते हैं, विपणन हेतु बाजार भेजा जाना चाहिये।

कन्दों की खुदाई व उनका भण्डारण: जब कणिशों (स्पाइक्स) में पुष्पकों का आना बन्द हो जाये तो समझना कि इस समय कन्द पूर्णतः सुप्त अवस्था में है। इस अवस्था में रजनीगंधा की फसल को सिंचाई देना बन्द कर देते हैं और मिट्टी को सूखने देते हैं। मिट्टी के पूर्णतः सूखते ही पत्तियों को भूमि की सतह से काट कर कन्दों की खुदाई की जाती है। अब कन्दों को छाया व हवादार स्थान पर सुखाया जाता है और इसमें से कटे-सड़े हुये कन्दों व मिट्टी के अवशेषों को दूर किया जाता है। तत्पश्चात कन्दों को बैवस्टीन (0.1 प्रतिशत) घोल में 60 मिनट तक डुबाकर पुनः छायादार स्थान पर सुखाकर बांस या लकड़ी की पेटियों में पहाड़ी क्षेत्रों में खुले कमरे व मैदानी क्षेत्रों में 4 से 7 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर शीत भण्डारित किया जाता है। ध्यान रखें कि कन्दों को पुनः खेत में लगाने से पूर्व कम से कम इन्हें 4 से 6 सप्ताह तक अवश्य भण्डारित करें।



हिन्दी में राष्ट्रीयता बनने की पूरी क्षमता है।

- राजा राममोहन राय

सरकारी कामकाज में सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग होना चाहिए। हिन्दी एक जानदार भाषा है वह जितनी ही बढ़ेगी, देश का उतना ही कल्याण होगा।

- पं. जवाहर लाल नेहरू

कोई देश विदेशी भाषा के द्वारा न तो उन्नति कर सकता है और न ही राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति।

- डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

सरसों की उन्नत खेती से आय बढ़ाये

आर एस सेंगर, शालिनी गुप्ता, एवं वर्षा रानी

सरदार वल्लभभाई पटेल, कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

सरसों की खेती दोमट या बलुई दोमट भूमि जिसकी जल धारण क्षमता तथा जल निकास अच्छा हो उपयुक्त होती है। बुवाई से पूर्व खेत को 2-3 बार अच्छी तरह जुताई कर पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरा कर लेना चाहिये।

बीज की मात्रा - 4-5 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टर की दर से बुवाई हेतु प्रयोग करना चाहिये।

बीजोपचार - फफूंद जनक रोगों से बचाव हेतु कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिये।

क्र.	किस्म का नाम	पकने की अवधि (दिन)	उपज किंवा/हे.	विशेषताएं
1	जे.एम.-1	125-127	20-21	बीज का रंग काला-भूरा असिंचित तथा सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त, फली चटकने के प्रति अवरोधक
2	जे.एम.-2	135-138	15-25	बीज का रंग काला-भूरा असिंचित तथा सिंचित क्षेत्र के लिए उपयुक्त, तेल प्रतिशत 40.0 सफेद गेरूआ रोग प्रतिरोधक
3	जे.एम.-3	130-135	20-25	बीज का रंग काला-भूरा, सफेद गेरूआ रोग प्रतिरोधक
4	पुसा बोल्लड	120-130	16-20	बड़ा दाना फली चटकने के प्रति अवरोधक, तेल प्रतिशत 43.2
5	वरूणा	115-125	15-20	बड़ा दाना तेल प्रतिशत 40.0
6	कांति	130-140	15-22	देर से बुवाई हेतु उपयुक्त, तेल प्रतिशत 40.0
7	रोहिणी	125-127	13-18	बड़ा दाना तेल प्रतिशत 40.0

बुवाई का समय

सितम्बर के द्वितीय सप्ताह से अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक सरसों की बुवाई कर देनी चाहिये। समय पर बुवाई करने से फसल रोग एवं कीटों से कम प्रभावित होती हैं।

बुवाई का तरीका

बुवाई देशी हल से सरता बांधकर कतारों में या सीड-ड्रिल द्वारा करना चाहिये। कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. तथा पौधों से पौधों की दूरी 10 से.मी. एवं बीज 2-3 से.मी. की गहराई पर बुवाई करना चाहिये। अधिक गहराई पर बुवाई करने से बीज का अंकुरण कम होता है।

उर्वरक की मात्रा

सरसों की अच्छी पैदावार के लिए उर्वरकों की मात्रा मिट्टी परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर प्रयोग करना चाहिये। सामान्यतः असिंचित अवस्था में उर्वरक की मात्रा 30 कि.ग्रा. नत्रजन, 20 कि. ग्रा. स्फुर, 10 कि. ग्रा. पोटाश तथा 20 कि.ग्रा. सल्फर/हे. तथा सिंचित अवस्था 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 40 कि.ग्रा. स्फुर, कि.ग्रा. पोटाश तथा 20 कि.ग्रा. सल्फर/हे. की दर से प्रयोग करना चाहिये। असिंचित अवस्था में खाद की 20 पूरी मात्रा

बुवाई के समय तथा सिंचित अवस्था में नत्रजन की आधी मात्रा तथा स्फुर, पोटाश एवं सल्फर की पूरी मात्रा बुवाई के समय तथा शेष बची हुई नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के 25-30 दिनों के बाद प्रथम सिंचाई के समय देना चाहिए।

सिंचाई

सरसों की फसल में प्रथम सिंचाई बुवाई के 25-30 दिन बाद एवं दूसरी सिंचाई बुवाई के 55-60 दिन बाद करना चाहिये।



खरपतवार नियंत्रण

जिन क्षेत्रों में खरपतवार का अधिक प्रकोप होता है, वहां पर बुवाई के 25-30 दिन बाद निंदाई करना चाहिये या खरपतवार नाशक दवा पेण्डीमिथिलीन 0.75-1.00 कि.ग्रा./हे. सक्रिय तत्व (2.25-3 कि.ग्रा./हे. व्यापारिक मात्रा) का छिड़काव फसल की बुवाई के तुरंत बाद (फसल अंकुरण के पूर्व) भूमि पर छिड़काव करना चाहिये। बुवाई के 30-35 दिनों पश्चात् खरपतवारों की अधिक समस्या होने पर क्युजालोफॉस दवा 50 ग्राम सक्रिय तत्व की मात्रा प्रति हे. की दर से पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिये।

प्रमुख कीट नियंत्रण

- **माहू** - इस कीट से सरसों में सबसे अधिक हानि होती है। इसकी संख्या में वृद्धि नम एवं बदली वाले मौसम में अधिक होती है। इसके नियंत्रण हेतु डायमथोएट 30 ई.सी. 1.5-2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- **आरा मक्खी** - यह प्रारम्भिक अवस्था में फसल की पत्तियों के किनारे खाकर नुकसान पहुंचाती है। इस कीट के लार्वा की पहचान यह है कि इसे स्पर्श करने पर शीघ्र ही अपने शरीर की क्वाइल (रिंग) बना लेता है। इसके नियंत्रण हेतु क्विजालोफॉस 36 ई.सी. 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी की दर से पौधों पर छिड़काव करें। पेन्टेड बग (कदरा कीट) इसके नियंत्रण हेतु क्विनालफॉस 36 ई.सी. या क्लोरपायरीफॉस 2 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी की दर से पौधों पर छिड़काव करें।

प्रमुख रोग नियंत्रण

पावडरी मिल्ड्यू रोग इस रोग से पौधों की आखिरी अवस्था में तने,

पत्तियों एवं हरी फलियों पर सफेद चूर्ण जैसी फफूंद दिखती है, जिसे पावडरी मिल्ड्यू रोग के नाम से जाना जाता है। इसके नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

आल्टरनेरिया ब्लाइट - इसे झुलसा रोग के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग से राई सरसों की उपज में कमी के साथ-साथ दाने में तेल की मात्रा भी कम हो जाती है। इसके नियंत्रण हेतु डायथेन एम-45 की 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

सफेद रतुआ रोग: सामान्यतः इस रोग के लक्षण राई सरसों की पत्तियों की नीचली सतह से शुरू होते हैं। बाद में फफोले तने तथा फल्लियों पर भी सफेद रंग के दिखाई देते हैं। ये धब्बे गर्म-नम एवं अधिक आर्द्रता वाले अनुकूल मौसम पाकर बड़े होते जाते हैं और पत्तियों का काफी भाग नष्ट कर देते हैं। इनके नियंत्रण हेतु डायथेन एम. 45 की 2 ग्राम दवा का 1 प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव 10-15 दिन पर किया जाना चाहिये।



**हिन्दी एक जीवन्त भाषा है। इसमें बड़ी सुनम्यता और उदारता है।
हिन्दी के यही गुण हैं जो इसे दूसरी भाषाओं के शब्दों और रूपों को
आत्मसात करने की असीम क्षमता प्रदान करते हैं।**

- के. आर. नारायण

**शायद संसार में भारत ही एक देश है, जिसकी अपनी कौमी जबान नहीं है।
आज एक बलवान केन्द्रीय शासन के सिवा हमें एकता में बांधने वाली क्या
चीज है। धर्म में शक्ति नहीं, वह चीज राष्ट्रभाषा ही हो सकती है।**

- प्रेमचंद

खण्ड-ग

खरपतवार दोहा

एस.आई. कुवरदादरा, दसारी श्रीकांत,
दीपक पवार एवं चंद्रकांत सिंह

भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

माटी भीतर सोंवतें, बीजन के भंडार।
काल-संकेत पावतें, फूटत बारंबार।।
दस-दस वर्षन बीज रही, जीवन साज सँभाल।
धरती-माता की गोदान में, सुरक्षित उनका हाल।।
एकी बीज जड़ें सौ जन्म लें, फल-फूलें तत-काल।
पीढ़ी बदले कुछ महीनन में, यही उत्क्रांति की जाल।।
राइजोम, कंद, लता जुड़े, नया तना होय सुरू।
वनस्पति की शक्ति छुपे, बढ़े बिना गुरू।।
भूमि पसारी फैलें के, घेरे चारो ओर।
फसलन को जगह न मिले, जमें वही भरजोर।।
ऊँची पत्ती तना फैलाए के, सूरज रोशनी खींच।
फसल रहें अधियार में, अपना जीवन सींच।।
जड़ बढ़ी भीतर धंसते, पोषक छीनत जाय।
धरती मां का हर रसपान, पहले वही उठाय।।
फसल सम रूप धरि, आंखन दे छल-छाय।
कतई न पहचानत कोई, खेतन में छुटी जाय।।
धूप बढ़े तन लंब होय, छोंव मिले झुक जाएँ।
रूप बदले हर काल में, संकट जीवन मिटाए।।
शीत-उष्ण सब ताप संग, ढलि जाएँ पलमाही।
धरती-धाम बदले चाहे, यह बदले हर चाही।।
धरती झाड़ी सब खेतन में, तुरत जमत इनके पाँव।
जहँ अवसर मिलत दिखे, वहीँ रचे अपन गाँव।।
बीज-बीज में रूप बहु, जीनन भेद अपार।
बदले पलक झपकाय के, रच दे नव संसार।।
नव-नव धर्मन जीन लें, संगम करे मिलाप।
किस्म सुहागे बढ़त चलें, प्रकृति की चतुर हिसाब।।
दवा पड़े, जीनन बदले, लक्ष बचे हर बार।
प्रतिरोध का खेल यही, जीवन पाए बारंबार।।
उपज घटे, श्रम बढ़ि चले, बढ़ जाएँ खर्च अपार।
सब संसाधन लुटे, किसान होए लाचार।।
हानि सही पर लाभन भी, है जीनन की दरबार।
कठिन तनाव सहें, बनें भावी फसल सुधार की आधार।।

निदेशालय महिमा गीत

एस. आई. कुवरदादरा, नीलम राजपूत
एवं पी.के. सिंह

जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
शोध संस्थान टिकाऊ खरपतवार प्रबंधन की
यह रणनीतिक अनुसंधान विविध फसल प्रणालियों की
वैज्ञानिक विधि, खरपतवार प्रबंधन की
शोध नवाचार, नव तकनीकी, बदलते जलवायु परिवर्तन की
शोध अनुसंधान फसल खरपतवार अंतःक्रिया की
जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
यहाँ सर्वे-अध्ययन शाकनाशी प्रतिरोधों की
मूल्यांकन, खरपतवार-जनित खतरों की
आधार भावी कृषि नवाचारों की
खरपतवार जर्मप्लाज्म संरक्षण की
आक्रामक विदेशी खरपतवार प्रबंधन की
जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
यहाँ गहन विवेचन, शोध-नवाचार
खरपतवार यंत्रिकी उन्नति की
श्रम-भार और लागत न्यूनीकरण की
जैविक नियंत्रण उपायों की
जैव एजेंटों के मूल्यांकन की
जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
नए आयाम, खरपतवारों के उपयोगों की
अनुसंधान, संरक्षण और शमन उपायों की
शाकनाशियों के पर्यावरणीय प्रभावों की
जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
शोध संस्थान टिकाऊ खरपतवार प्रबंधन की
यह संस्थान तृण प्रबंधन तकनीकों के प्रचार-प्रसार की
सामाजिक-आर्थिक प्रभावों के मूल्यांकन की
आशा-अभिलाषाएँ खाद्य-पोषण सुरक्षा की
ध्येय रणनीतिक शोध सफलताओं की
जय जय खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की
शोध संस्थान टिकाऊ खरपतवार प्रबंधन की

वापस लौट रही होगी, धरती

बलराम गुमास्ता

नबीबाग, भोपाल (म.प्र.)

कृषि प्रधान देश भारत के लिए
धान की खेती और पशुपालन
मुख्य भोजन और आर्थिक आधार है
अंतरराष्ट्रीय मंचों पर, हिदायत दी जाती रहीं हैं
कि धान के पौधे और पशुओं के गोबर से
निकलने वाली क्लोरोफ्लोरोकार्बन गैस
ग्लोबल वार्मिंग और पर्यावरण के लिए घातक है
भारत धान की खेती और पशुपालन को कम करें
जिस पर निर्भर है देश की अर्थव्यवस्था
अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगठित होकर
भारत के खिलाफ रची जा रही इस साजिश में
शामिल हैं वही, हथियारों के सौदागर
कथित विकसित देश
जो आये दिन करते हैं, युद्ध अभ्यास
रचे जाते हैं आभासी भय, लड़ाये जाते हैं देश
इस तरह तैयार बाजार में, बेचे जा रहे होते
नए-नए हथियार,
देश के दुश्मनों
अगर गोबर और धान की खेती से निकलती है
खेतीक्लोरोफ्लोरोकार्बन, तो क्या ?



आए दिन दागी जा रही, जहर उगलती मिसाइलें
फोड़े जा रहे विध्वंसक, आग उगलते बमों
मड़रा रहे, लाखों टन धुंआ उगलते
लड़ाकू विमानों से
ऑक्सीजन निकलती है ?
तोपों के गोलों से दहलती धरती
आणविक और मिसाइलों के परीक्षणों से
खौलते समुद्रों में, मारे जा रहे जीव-जंतु
मानवीय लालच की शिकार धरती
अंतिम सांसें ले रही है,
उसका शरीर छलनी है,
वनस्पतियां, पेड़ -पौधे
जीवन के नाना स्वरूप और संसाधन
समाप्त होने होने-होने को है,
हथियारों के सौदागरों
मानवीय लालच ने, रचा है
यह जहरीला पर्यावरण,
अभी भी समय है, अगर बचाना है
मानवता को
तो कराहती पृथ्वी मां की पुकार
ध्यान से सुनो
“अलबत्ता जहां सुनी जा सकेगी
मां के पुकारे जाने की आवाज
खट-खटाती, एक एक बीज का द्वार
वहां-हरापन होगा
पीक रहा होगा, एक नन्हा सा पौधा
जिसकी जड़ों के आस-पास
वापस लौट रही होगी, धरती”

(कविता सूने तखत का एक अंश)



खरपतवार गीत

जी.आर. डोंगरे

सुहागी, अधारताल, जबलपुर (म.प्र.)

हरी भरी फसल में उगे
कुछ ऐसे पौधे खरपतवार,
जिनकी उपस्थिती से होता फसल पर वार।
चुरा लेते थे, जो फसल का आहार
खनिज पानी और मिट्टी का सार।
घटा देते हैं फसल की बढ़वार,
फसल से करते प्रतिस्पर्धा अपार।
फसल से तेज होती है, इनकी बढ़वार
घटा देते हैं फसल की पैदावार।
खेती को बना देते हैं घाटे का व्यापार,
कुछ होते हैं समस्या कारक तो,
कुछ होते हैं आक्रामक खरपतवार।
निर्जन स्थानों तक में इसका प्रसार,
विदेशों से आकर इन्होंने किया है,
भारत के बड़े भू-भाग पर प्रहार।
जैव विविधता घटने के आधार,
इनमें भी कुछ है परजीवी खरपतवार,
जो करते हैं आधार पौधे का जीना दुस्वार।
कुछ हैं रोग कारक खरपतवार,
कीट, कवक, पतंगों को देते आधार,
फसल शत्रु कीटों का करते उद्धार।

हर मौसम में फूले-फले, करते अपना खुब प्रसार।
थल पर ही क्या जल में भी है इनकी मार,
नदी, झील, तालाबों में इनकी भरमार,
इनकी रोकथाम नहीं आसान।
इनसे फसलों को होता, 37 प्रतिशत का नुकसान।
इनको रोकने खरपतवारनाशी का छिड़काव,
है एक अच्छा समाधान।
कुछ यांत्रिक विधि भी है महान,
कुछ के लिए जैविक नियंत्रण समाधान,
कुछ को क्रांतिक अवस्था में उखाड़कर,
कर सकते हैं उचित समाधान।
एकीकृत प्रबंधन का सबसे अच्छा ज्ञान,
जिसे अपनाकर कृषक हो जाता धनवान।
दिन प्रतिदिन आ रहे हैं नव अनुसंधान,
नींदा नियंत्रण अब हो गया है आसान।
ड्रोन छिड़काव से भी समाधान,
नवीन एआई तकनीक का भी होने लगा है मान।
जिससे अन्नदाता की बड़ी है शान,
और भारत देश की बड़ी है आन।
कृषि उत्पादों का होने लगा है कल्याण,
जिससे देश बन गया है कृषि प्रधान।



**दलहन में यदि हो खरपतवार।
पेंडीमेथालिन से करें उपचार ॥**

भारत के सूखाग्रस्त (शुष्क) होने के कई दुष्परिणाम

पंकज शुक्ला

भाकृअनुप - खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

जैसे-जैसे अल नीनो (El Nino) का गहरा असर हो रहा है, चिंता न केवल खरीफ बल्कि रबी फसलों के लिए भी है। देश के 40% जिलों में सिंचाई व्यवस्था कमजोर होने के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था खतरे में है। और 166 प्रमुख जलाशयों में पानी अपनी क्षमता का केवल 26% ही बचा है।

भारत में वर्षा ऋतु (जुलाई-अगस्त) के अपने सबसे महत्वपूर्ण चरण में जो न केवल देश में मिलने वाली अधिकतम मानसूनी बारिश के समय से मेल खाता है, बल्कि खरीफ (गर्मी) की बुवाई के चरम कार्य के साथ भी मेल खाता है। चिंता की बात यह है कि ये जलवायु संबंधी घटनाएं इन दोनों आयोजनों को कैसे प्रभावित करेंगी।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग का पूर्वानुमान उत्साहजनक नहीं है। इसके 'सामान्य से कम' बारिश के अनुमान ने, जिसके कम (कमजोर) रहने की 60% संभावना है, सूखे का डर पैदा कर दिया है। यदि ऐसा होता है, तो इससे केवल कृषि क्षेत्र को ही नुकसान नहीं होगा, बल्कि जल जलाशयों, भूजल पुनर्भरण (ग्राउंडवाटर रिचार्ज) और जलविद्युत (हाइड्रोपावर) उत्पादन पर भी संकट आ जाएगा।

जून के अंत तक, देश में बारिश की 43% कमी दर्ज की गई थी। मध्य भारत, जिसमें 'मानसून कोर जोन' (वह वर्षा आधारित क्षेत्र जहां खेती मुख्य रूप से मौसमी बारिश पर निर्भर करती है) का अधिकांश हिस्सा शामिल है, में सबसे अधिक 56% की कमी दर्ज की गई। हाँ, जुलाई-अगस्त में यह कमी थोड़ी कम होगी। लेकिन यह अपने आप में भारत को सूखे वर्ष के दुष्परभावों से नहीं बचा पाएगा, क्योंकि जून-सितंबर के मानसून सीजन के दौरान कुल कमी 10% से अधिक होने की संभावना है।

मानसून की बारिश में बदलाव को नियंत्रित करने वाले दो प्रमुख कारक-अल नीनो (El Nino) और हिंद महासागर द्विध्रुव - शायद मदद न कर पाएं। अल नीनो एक प्राकृतिक जलवायु पैटर्न है जिसमें मध्य और पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर की सतह का पानी सामान्य से अधिक गर्म हो जाता है- यह भारत में कमजोर मानसून और अधिक भीषण गर्मी से जुड़ा है।

हिंद महासागर द्विध्रुव, जो उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर के पश्चिमी और पूर्वी हिस्सों के बीच समुद्र की सतह के तापमान में अंतर को दर्शाता है, मजबूत मानसूनी हवाएं बनाने में मदद करता है। सकारात्मक (पॉजिटिव) हिंद महासागर द्विध्रुव एक मजबूत अल नीनो के प्रभाव को कम करने में मदद करता है। दुर्भाग्य से, यह जलवायु कारक वर्तमान में

तटस्थ (न्यूट्रल) है, और इसलिए यह उस अल नीनो के प्रभाव को संतुलित नहीं कर पाएगा जो उस पूरी अवधि के दौरान बना रहेगा जब खेती अपने महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश करेगी।

पिछले कुछ वर्षों में, भारत ने अपने सिंचाई क्षेत्र का विस्तार किया है। लेकिन मौसमी बारिश की अनिश्चितताओं के खिलाफ खुद को सूखा-सुरक्षित करने से पहले इसे अभी लंबा सफर तय करना है। कृषि मंत्रालय ने हाल ही में लगभग 315 जिलों (देश के कुल जिलों का 40%) को कम बारिश और सिंचाई की कमी के अधिक जोखिम वाले क्षेत्रों के रूप में वर्गीकृत किया है। इनमें से अधिकांश जिले 12 राज्यों में आते हैं- मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, झारखंड, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और ओडिशा। राजस्थान और आंध्र प्रदेश को छोड़कर, ये सभी राज्य 30-80% बारिश की कमी की रिपोर्ट कर रहे हैं।

ज्यादातर राज्यों में बुवाई का काम धीमा बना हुआ है। यदि यही स्थिति बनी रही, तो इसका असर खाद्यान्न उत्पादन पर निश्चित रूप से महसूस किया जाएगा, विशेष रूप से तब जब किसान पहले से ही ईरान युद्ध के कारण बढ़ती लागत (जैसे कि उर्वरक और डीजल) से जूझ रहे हैं। हो सकता है कि सरकार लागत के मोर्चे पर विभिन्न तरीकों से मदद कर रही हो। लेकिन बारिश की कमी बिल्कुल अलग तरह की चुनौती है।

इसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाली अनिश्चितता का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर सीधा असर पड़ता है। और कृषि क्षेत्र में मंदी की स्थिति अंततः समग्र अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। यही कारण है कि (पूर्व वित्त मंत्री) प्रणब मुखर्जी ने प्रसिद्ध रूप से मानसून सीजन (जून-सितंबर) को भारत का वास्तविक वित्त मंत्री बताया था।

खाद्यान्न उत्पादन पर खराब मानसून के प्रभाव को अच्छी तरह से प्रलेखित (डॉक्यूमेंट) किया गया है। उदाहरण के लिए, 2023 में भाकृअनुप-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान के एक अध्ययन से पता चलता है कि पिछले अल नीनो वर्षों (2002, 2004 और 2009) ने देश भर के विभिन्न राज्यों के क्रमशः 77 और 65 जिलों में धान और मक्के जैसी प्रमुख खरीफ फसलों के उत्पादन को 10% से अधिक कम कर दिया था।

हालाँकि 2023 भी एक अल नीनो वर्ष था, लेकिन उस समय एक सकारात्मक हिंद महासागर द्विध्रुव ने इसके प्रभाव को काफी हद तक संतुलित कर दिया था, जिससे भारत को सामान्य के करीब मौसमी बारिश प्राप्त करने के साथ-साथ खाद्यान्न का रिकॉर्ड उत्पादन करने में मदद मिली

थी। हालाँकि, 2015-16 में देश इतना भाग्यशाली नहीं था। 2015 में गंभीर अल नीनो के कारण कुल खाद्यान्न उत्पादन में 5% की गिरावट दर्ज की गई थी।

इसका प्रभाव केवल खरीफ सीजन तक ही सीमित नहीं रहता है। चूँकि कम बारिश के कारण देश के प्रमुख जलाशयों में पानी कम हो जाता है और मिट्टी में नमी की मात्रा कम हो जाती है, इसलिए यह नवंबर-फरवरी की अवधि के दौरान रबी (सर्दियों में बोई जाने वाली) फसलों को भी प्रभावित करता है। केंद्रीय जल आयोग द्वारा निगरानी किए जाने वाले 166 प्रमुख जलाशयों की वर्तमान स्थिति चिंताजनक है। 25 जून तक, इन जलाशयों की कुल भंडारण क्षमता का केवल 26% पानी ही जीवित भंडारण (लाइव स्टोरेज) के रूप में बचा है।

यदि मानसून सीजन के शेष तीन महीनों के दौरान पर्याप्त बारिश नहीं होती है, तो पीने के पानी की उपलब्धता पर असर पड़ेगा, विशेष रूप से बड़े शहरों में जो पीने और अन्य उपयोगों के लिए सीधे पानी की आपूर्ति पर निर्भर हैं। चूँकि उपरोक्त जलाशयों में से 20 जलाशय जलविद्युत परियोजनाओं में शामिल हैं, इसलिए जलविद्युत (हाइड्रोपावर) उत्पादन पर भी असर पड़ेगा। यह देश के ऊर्जा क्षेत्र के लिए एक प्रकार की दोहरी मार होगी, जो पश्चिम एशिया संकट के कारण पहले से ही दबाव में है।

जब अल नीनो मानसून को नुकसान पहुँचा रहा हो और हिंद महासागर द्विध्रुव से कोई जलवायु राहत न मिल रही हो, तो किसानों को जमीन पर कई आपातकालीन उपायों की मदद की आवश्यकता होगी। दीर्घकालिक रूप से, उन्हें कहीं अधिक उन्नत मौसम-आधारित कृषि-सलाहकार सेवाओं और कुशल जल प्रबंधन की आवश्यकता है। उन्हें सूखा-सहिष्णु फसलों की किस्मों की भी आवश्यकता है। कई किसानों को पानी की अधिक खपत करने वाले धान और गन्ने की खेती को छोड़कर, कम पानी की खपत वाले बाजरा (मोटे अनाज) और दालों को अपनाने में सहायता की आवश्यकता है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग (IMD) का पूर्वानुमान उत्पादक नहीं है। इसके 'सामान्य से कम' बारिश के अनुमान ने, जिसके कमजोर रहने की 60% संभावना है, सूखे का डर पैदा कर दिया है। यदि ऐसा होता है, तो इससे केवल कृषि क्षेत्र को ही नुकसान नहीं होगा, बल्कि जल जलाशयों, भूजल पुनर्भरण (ग्राउंडवाटर रिचार्ज) और जलविद्युत (हाइड्रोपावर) उत्पादन पर भी संकट आ जाएगा।

मध्य भारत, जिसमें 'मानसून कोर जोन' (वह वर्षा आधारित क्षेत्र जहां खेती मुख्य रूप से मौसमी बारिश पर निर्भर करती है) का

अधिकांश हिस्सा शामिल है, में सबसे अधिक 56% की कमी दर्ज की गई। हाँ, जुलाई-अगस्त में यह कमी थोड़ी कम होगी। लेकिन यह अपने आप में भारत को सूखे वर्ष के दुष्प्रभावों से नहीं बचा पाएगा, क्योंकि जून-सितंबर के मानसून सीजन के दौरान कुल कमी 10% से अधिक होने की संभावना है।

मानसून की बारिश में बदलाव को नियंत्रित करने वाले दो प्रमुख कारक-अल नीनो (El Nino) और हिंद महासागर द्विध्रुव-शायद मदद न कर पाएं। अल नीनो एक प्राकृतिक जलवायु पैटर्न है जिसमें मध्य और पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर की सतह का पानी सामान्य से अधिक गर्म हो जाता है- यह भारत में कमजोर मानसून और अधिक भीषण गर्मी से जुड़ा है।

हिंद महासागर द्विध्रुव, जो उष्णकटिबंधीय हिंद महासागर के पश्चिमी और पूर्वी हिस्सों के बीच समुद्र की सतह के तापमान में अंतर को दर्शाता है, मजबूत मानसूनी हवाएं बनाने में मदद करता है। सकारात्मक (पॉजिटिव) हिंद महासागर द्विध्रुव एक मजबूत अल नीनो के प्रभाव को कम करने में मदद करता है। दुर्भाग्य से, यह जलवायु कारक वर्तमान में तटस्थ (न्यूट्रल) है, और इसलिए यह उस अल नीनो के प्रभाव को संतुलित नहीं कर पाएगा जो उस पूरी अवधि के दौरान बना रहेगा जब खेती अपने महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश करेगी।

पिछले कुछ वर्षों में, भारत ने अपने सिंचाई क्षेत्र का विस्तार किया है। लेकिन मौसमी बारिश की अनिश्चितताओं के खिलाफ खुद को सूखा-सुरक्षित करने से पहले इसे अभी लंबा सफर तय करना है। कृषि मंत्रालय ने हाल ही में लगभग 315 जिलों (देश के कुल जिलों का 40%) को कम बारिश और सिंचाई की कमी के अधिक जोखिम वाले क्षेत्रों के रूप में वर्गीकृत किया है। इनमें से अधिकांश जिले 12 राज्यों में आते हैं - मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, कर्नाटक, बिहार, झारखंड, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश और ओडिशा। राजस्थान और आंध्र प्रदेश को छोड़कर, ये सभी राज्य 30-80% बारिश की कमी की रिपोर्ट कर रहे हैं।

ज्यादातर राज्यों में बुवाई का काम धीमा बना हुआ है। यदि यही स्थिति बनी रही, तो इसका असर खाद्यान्न उत्पादन पर निश्चित रूप से महसूस किया जाएगा, विशेष रूप से तब जब किसान पहले से ही ईरान युद्ध के कारण बढ़ती लागत (जैसे कि उर्वरक और डीजल) से जूझ रहे हैं। हो सकता है कि सरकार लागत के मोर्चे पर विभिन्न तरीकों से मदद कर रही हो। लेकिन बारिश की कमी बिल्कुल अलग तरह की चुनौती है।



यदि भारतीय लोग कला, संस्कृति और राजनीति में एक रहना चाहते हैं तो इसका माध्यम हिन्दी ही हो सकता है।

- चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

वर्ष 2025-26 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की गतिविधियों एवं उपलब्धियों का संक्षिप्त प्रतिवेदन

निदेशालय में राजभाषा हिंदी के प्रभावी क्रियान्वयन, उसके व्यापक प्रचार-प्रसार तथा राजभाषा संबंधी प्रावधानों के अनुपालन की सतत समीक्षा एवं प्रगति के मूल्यांकन हेतु राजभाषा कार्यान्वयन समिति का गठन किया गया है। समिति द्वारा समय-समय पर किए गए प्रभावी प्रयासों के परिणामस्वरूप निदेशालय के समस्त अनुभागों में हिंदी के प्रयोग के प्रति सकारात्मक वातावरण विकसित हुआ है तथा कार्यालयीन कार्यों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग में उल्लेखनीय वृद्धि परिलक्षित हुई है।

राजभाषा हिंदी के प्रभावी क्रियान्वयन एवं उसके उत्कृष्ट प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में निदेशालय द्वारा किए गए सराहनीय कार्यों के फलस्वरूप नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जबलपुर (कार्यालय क्रमांक-02) की 16वीं बैठक (दिनांक 31 जुलाई, 2025) में वर्ष 2024 के दौरान राजभाषा हिंदी में उत्कृष्ट सरकारी कार्य निष्पादन एवं उल्लेखनीय प्रचार-प्रसार के लिए निदेशालय को राजभाषा ट्रॉफी (द्वितीय पुरस्कार) से सम्मानित किया गया। यह उपलब्धि निदेशालय की राजभाषा के प्रति प्रतिबद्धता एवं सतत प्रयासों का प्रत्यक्ष प्रमाण है।



दिनांक 31 जुलाई, 2025

वर्ष 2025-26 के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के प्रभावी प्रयासों से निदेशालय में कार्यालयीन कार्यों में राजभाषा हिंदी में हुई प्रगति एवं गतिविधियों का विवरण इस प्रकार है-

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठकें

वर्ष 2025-26 के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठकों का नियमित एवं व्यवस्थित आयोजन किया गया। समिति की बैठकों का आयोजन निम्नानुसार किया गया-

- प्रथम तिमाही (अप्रैल-जून, 2025) : 27 जून, 2025
- द्वितीय तिमाही (जुलाई-सितम्बर, 2025) : 02 सितम्बर, 2025
- तृतीय तिमाही (अक्टूबर-दिसम्बर, 2025) : 29 दिसम्बर, 2025
- चतुर्थ तिमाही (जनवरी-मार्च, 2026) : 13 मार्च, 2026

उक्त सभी बैठकों का आयोजन निदेशालय के सभागार में निदेशक महोदय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ, जिसमें सभी अनुभाग प्रभारी, समिति के पदाधिकारियों एवं सदस्यों की सक्रिय सहभागिता रही।

बैठकों में राजभाषा कार्यान्वयन से संबंधित विभिन्न विषयों पर विस्तृत विचार-विमर्श किया गया तथा पूर्व बैठकों के कार्यवृत्त की पुष्टि एवं अनुपालन की समीक्षा की गई। राजभाषा प्रभारी द्वारा गत तिमाही की प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा 3(3) के अनुपालन की स्थिति से अवगत कराया गया। इसके अतिरिक्त पिछली तिमाहियों के अंतर्गत जारी तिमाही प्रतिवेदनों, पत्राचार, कार्यालयीन प्रकाशनों, टिप्पणियों, ज्ञापनों तथा अन्य राजभाषा संबंधी कार्यों की प्रगति की समीक्षा की गई। बैठकों में माननीय संसदीय राजभाषा समिति की अनुशंसाओं, राजभाषा विभाग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा समय-समय पर जारी निर्देशों, आदेशों एवं मार्गदर्शी प्रावधानों के अनुपालन की भी समीक्षा की गई। साथ ही, राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक निर्णय लिए गए तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए संबंधित अनुभागों को आवश्यक निर्देश प्रदान किए गए।

त्रैमासिक हिन्दी प्रतिवेदन का संकलन

भारत सरकार, गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित तिमाही प्रगति प्रतिवेदन के अद्यतन प्रपत्र के अनुसार निदेशालय के विभिन्न अनुभागों में संपादित हिन्दी कार्यों की प्रगति तथा हिन्दी पत्राचार संबंधी आँकड़ों को समेकित कर त्रैमासिक हिन्दी प्रतिवेदन तैयार किया गया। उक्त प्रतिवेदन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जबलपुर (कार्यालय क्रमांक-02) तथा क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, भोपाल को निर्धारित समयावधि में प्रेषित किया गया। प्राप्त समीक्षाओं में दिए गए सुझावों एवं टिप्पणियों के अनुरूप आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित की गई तथा संबंधित अनुभागों को आवश्यक निर्देश एवं पृष्ठांकन प्रदान किया गया।

राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम का क्रियान्वयन

भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुरूप निदेशालय में राजभाषा हिन्दी के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा जारी राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम में निहित निर्देशों के अनुसार आवश्यक कार्यवाही सुनिश्चित की गई। इस उद्देश्य से सभी अनुभागों को समय-समय पर राजभाषा संबंधी नियमों, अधिनियमों एवं निर्देशों से अवगत कराया गया तथा उनके अनुरूप शासकीय कार्य संपादित किए जाने हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश जारी किए गए।

हिन्दी पखवाड़ा का आयोजन

निदेशालय में राजभाषा कार्यान्वयन समिति के तत्वावधान में दिनांक 15 सितम्बर, 2025 से 29 सितम्बर, 2025 तक हिन्दी पखवाड़ा आयोजित किया गया। हिन्दी दिवस के अवसर पर निदेशालय के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राजभाषा प्रतिज्ञा दिलाई गई तथा माननीय

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान का संदेश वाचन किया गया। हिन्दी पखवाड़ा का शुभारंभ दिनांक 15 सितम्बर, 2025 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. पंकज कुमार, ए.जी.एम., बी.आर.बी.आर.ए.आई.टी.सी., जबलपुर उपस्थित रहे।

हिन्दी पखवाड़ा के दौरान अधिकारियों एवं कर्मचारियों में हिन्दी के प्रयोग को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। साथ ही, राजभाषा प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत वर्षभर शासकीय कार्य हिन्दी में संपादित करने तथा 20,000 से अधिक हिन्दी शब्दों का लेखन करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय नगद पुरस्कार प्रदान किए गए तथा उत्कृष्ट कार्य करने वाले अनुभागों को चल शील्ड से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को समापन समारोह के अवसर पर प्रशस्ति-पत्र एवं पुरस्कार प्रदान किए गए।

आयोजित प्रतियोगिताओं का विवरण निम्नानुसार है-

क्र.सं.	प्रतियोगिता का नाम	दिनांक	समूह/वर्ग
1.	तात्कालिक निबंध	16.09.2025	समूह अ एवं ब
2.	कम्प्यूटर पर यूनिकोड पर टाइपिंग	17.09.2025	समूह अ एवं ब
3.	हिन्दी शुद्ध लेखन	18.09.2025	समूह अ एवं ब
4.	आलेखन एवं टिप्पण	19.09.2025	समूह अ एवं ब
5.	अंताक्षरी	23.09.2025	सभी के लिए
6.	वाद-विवाद	24.09.2025	सभी के लिए
7.	प्रश्न मंच	25.09.2025	सभी के लिए

समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह

हिन्दी पखवाड़ा का समापन एवं पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 29 सितम्बर, 2025 को निदेशालय के सभागार में आयोजित किया गया, जिसमें निदेशालय के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने सहभागिता की। समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में श्री राजीव कुमार शुक्ल, अतिरिक्त महानिदेशक (सेवानिवृत्त), प्रसार भारती, नई दिल्ली उपस्थित रहे।

अपने उद्बोधन में मुख्य अतिथि ने कहा कि किसी भी भाषा की वास्तविक सुंदरता उसके वैविध्य एवं समावेशी स्वरूप में निहित होती है। हिन्दी स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही देश की संपर्क भाषा रही है, जिसके परिणामस्वरूप इसे राजभाषा के रूप में अंगीकृत किया गया। उन्होंने कहा कि भारत की विकास यात्रा में हिन्दी ने एक समृद्ध एवं सशक्त भाषा के रूप में “वसुधैव कुटुम्बकम्” की भावना को सुदृढ़ किया है। भाषा परस्पर

संवाद, प्रेम एवं सांस्कृतिक एकता का माध्यम है तथा विभिन्न भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं। वर्तमान समय में वैश्विक व्यापार, अर्थव्यवस्था, विधि, चिकित्सा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सहित विभिन्न क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है तथा इसके महत्व को व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है। उन्होंने सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी पखवाड़ा की शुभकामनाएँ देते हुए प्रतियोगिताओं में सहभागिता करने वाले सभी प्रतिभागियों का उत्साहवर्धन किया।

इस अवसर पर निदेशालय द्वारा प्रकाशित वार्षिक हिन्दी पत्रिका “तृण संदेश” (बीसवाँ अंक), “खरपतवार समाचार” (द्विभाषी), “भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ 2024-25” तथा “रबी फसलों में खरपतवार प्रबंधन” (हिन्दी विस्तार पत्रक) का विमोचन मुख्य अतिथि एवं मंचासीन अधिकारियों द्वारा किया गया।



राजभाषा वार्षिक पत्रिका के बीसवें अंक का प्रकाशन

निदेशालय द्वारा प्रकाशित 'तृण संदेश' राजभाषा वार्षिक पत्रिका के बीसवें अंक (अप्रैल, 2024 से मार्च, 2025) का सफलतापूर्वक प्रकाशन किया गया। इस अंक में खरपतवार प्रबंधन से संबंधित महत्वपूर्ण लेखों के साथ-साथ सामान्य कृषि एवं अन्य ज्ञानवर्धक विषयों पर आधारित लेखों को भी समुचित स्थान प्रदान किया गया। पत्रिका को महापुरुषों के प्रेरणादायी कथनों से प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाया गया।

हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा वर्ष 2025 के दौरान निदेशालय के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। इन कार्यशालाओं का उद्देश्य राजभाषा हिन्दी के प्रभावी क्रियान्वयन को प्रोत्साहित करना तथा कार्यालयीन कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देना था। कार्यशालाओं का विवरण निम्नानुसार है-

क्र.सं.	दिनांक	विषय	वक्ता का नाम
1	30 मई, 2025	शासकीय कार्य में हिन्दी पत्राचार	श्री जी.आर. डोंगरे, मुख्य तकनीकी अधिकारी, खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर
2	05 जून, 2025	प्लास्टिक मुक्त ग्रह की ओर वैश्विक अभियान	डॉ. हिमांशु महावर, वैज्ञानिक, खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर
3	15 सितम्बर, 2025	मन ही औषधि	डॉ. पंकज कुमार रॉय, ए.जी.एम. बी.आर.बी.आर.ए.आई.टी.सी., जबलपुर
4	16 सितम्बर, 2025	स्वास्थ्य जागरूकता	डॉ. जयदेव तिवारी एवं डॉ. प्रीति तिवारी मिशन हेल्दी वेल्दी इंडिया, जबलपुर
5	31 अक्टूबर, 2025	सर्तकता हमारी साझा जिम्मेदारी	डॉ. शोभा सौंधिया, प्रधान वैज्ञानिक, खरपतवार अनुसंधान निदेशालय
6	13 मार्च, 2026	iGOT कर्मयोगी प्लेटफार्म के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रशिक्षण	डॉ. दीपक पवार, वैज्ञानिक, खरपतवार अनुसंधान निदेशालय



दिनांक 30.05.2025 को आयोजित कार्यशाला



दिनांक 15.09.2025 को आयोजित कार्यशाला



दिनांक 16.09.2025 को आयोजित कार्यशाला



दिनांक 31.10.2025 को आयोजित कार्यशाला

निदेशालय की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों के नाम

- | | |
|--------------------------------|---------------------------------|
| 1. डॉ. जे.एस. मिश्र, अध्यक्ष | 4. डॉ. योगिता घरडे, सदस्य |
| 2. डॉ. पी.के. सिंह, सह-अध्यक्ष | 5. श्री राजेन्द्र हाड़गे, सदस्य |
| 3. डॉ. विजय कुमार चौधरी, सदस्य | 6. श्री राजीव कुलश्रेष्ठ, सदस्य |
| | 7. श्री मुकेश कुमार मीणा, सदस्य |



एक पेड़ मा के नाम



हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

**भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय
जबलपुर (म.प्र.) - 482004**

फोन / Phones: +91-761-2353001, 23535101, 23535138, 2353934, फैक्स / Fax: +91-761-2353129

ई-मेल / Email: director.dwr@icar.org.in वेबसाइट / Website: <https://dwr.org.in/>

फेसबुक लिंक : <https://www.facebook.com/ICAR-Directorate-of-Weed-Research-101266561775694>

ट्विटर लिंक : <https://twitter.com/Dwricar>

यू-ट्यूब लिंक : <https://www.youtube.com/channel/UC9WOjNoMOttJalWdLfumMnA>

इंस्टाग्राम : <https://www.instagram.com/icardwr/>

लिंक्डिन : <https://www.linkedin.com/in/icar-directorate-of-weed-research-jabalpur-ab27824131>

ISBN : 978-81-985626-2-3

